उदयनग्रन्थावलिः

(पञ्चमो भागः)

आचार्योदयनप्रणीता

लक्षणावली

शेषशार्ङ्गधर प्रणीतन्यायमुक्तावली
विश्वनाथझा शर्मप्रणीतप्रकाशाभिध
व्याख्याभ्यां संवलिता।

सम्पादकः

किशोर नाथ झा

पूर्वप्रवाचकः

गङ्गानाथ झाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
इलाहाबाद

(२०११ ई०)

श्रीवल्लभविद्यापीठ श्री विट्ठलेश प्रभुचरण आ०हो० ट्रस्ट वैभव को-औपरेटिभ सोसाइटी, पूना बङ्गलोर रोड, कोल्हापुर ४१६००८ के सम्पूर्ण अनुदान से प्रकाशित

प्रकाशक

किशोरनाथ झा

ग्रा० बिट्ठो,

पो० सरिसब-पाही

जिला – मधुबनी ८४७४२४ (बिहार)

प्रतियाँ : ५०० (२०११ ई०)

मुद्रक :

रमा आर्ट्स

४ चुनाबाला इण्डस्ट्रियल एस्टेट कोंडिविटा

अन्धेरी (पूर्व) मुम्बई ४०००५१

मूल्य – ३००/-

टाइप सेटिङ

एकेडेमी प्रेस, दारागञ्ज, इलाहावाद २११००६

(उत्तर प्रदेश)

आमुख

परम पिता परमेश्वर के अनुग्रह तथा गुरुजनों के शुभाशीर्वाद से उदयन ग्रन्थावली का यह पाँचवा भाग सुधीजनों के करकमलों में अर्पित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

उक्त ग्रन्थावली के इस अन्तिम भाग में दो दुर्लभ व्याख्याओं के साथ लक्षणावली के प्रकाशन का संकल्प पूरा होने पर मेरा आत्म सन्तोष होना स्वाभाविक है।

उदयनाचार्य की अन्वर्थनामा यह कृति वैशेषिक पदार्थों के प्रभेद एवं लक्षण कथन में मर्यादित है। वैशेषिक दर्शन के जिज्ञासु विद्यार्थी को सुलभता से पदार्थों का परिचय इसके द्वारा अवश्य हो जाएगा – इसी उद्देश्य से इसकी रचना की गयी है।

इसकी सबसे प्राचीन व्याख्या न्यायमुक्तावली –शेष शार्ङ्गधर की उपलब्ध है। क्वीन्स कौलेज वाराणसी के प्रोफेसर सुरेन्द्रलाल गोस्वामी ने इण्डिया औफिस लाइब्रेरी लण्डन में संरक्षित एकमात्र हस्तलेख का संग्रह करके उसके आधार पर इस न्यायमुक्तावली का सामीक्षिक संपादन कर पहिलीवार पण्डित पत्रिका में प्रकाशित किया था। उसी का ग्रन्थाकार पुनर्मुद्रण १९०० ई० में काशी में हुआ, जो जीर्णतम रूप में सम्मान्य मित्रमणि गोस्वामी श्रीश्याम मनोहर जी के द्वारा मुझे उपलब्ध हुआ। उसका सावधानी से फोटो प्रति कराकर प्रेस को मुद्रण हेतु मैंने दिया। संपादक ने यहाँ परिश्रम पूर्वक शुद्धपाठ प्रस्तुत करने के प्रयास में पूरी सफलता पायी है, जो उत्तर साधक हम लोगों के लिए सौभाग्य की बात है। मैंने यथावत् उसको यहाँ प्रस्तुत किया है।

इस न्यायमुक्तावली के प्रणेता शेषशार्ङ्गधर का परिचय हम लोगों को ज्ञात नहीं है। अन्त: साक्ष्य के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि

इनका समय ख्रीष्टिय सोलह शताब्द रहा होगा। तत्त्वप्रदीपिकाकार चित्सुखाचार्य, दशश्लोकी विडम्बन, अमलानन्द कृत वेदान्त कल्पतरु तथा मीमांसा के अधुनालुप्त तर्कसंग्रह के पद्यों का उल्लेख यहाँ अनेक स्थलों पर हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि शार्ङ्गधर पद्धति के प्रणेता से यह शेषशार्ङ्गधर (न्यायमुक्तावलीकार) भिन्न तथा अर्वाचीन है। शेष अनन्त कृत पदार्थचन्द्रिका को हस्तलेख प्रतिलिपि १६५८ संवत् की उपलब्ध है, उसमें शशधराचार्य प्रणीत न्यायसिद्धान्तदीप के प्रभाव्याख्याकार के रूप में अपने गुरु शेषशार्ङ्गधर का उल्लेख इस प्रकार किया है–

सोऽयं शशधराचार्यकृतिव्याकृतिकैतवात्।
शेषः शार्ङ्गधरादिष्टपुष्टधीरुपतिष्ठते।।

इस प्रसङ्ग में इतनी जानकारी प्रो० सुरेन्द्र लाल गोस्वामी ने विब्लियोग्राफिकल नोट्स के रूप में दिया है। हम लोगों को न तो इनका पारिवारिक परिचय ही ज्ञात है न ही इनके देश का निश्चय ही ज्ञात है। यथा संभव प्रयास करने पर भी विफलता ही हाथ लगी। व्याख्या के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनकी दृष्टि वैशेषिक सिद्धान्तों पर समागत शास्त्रान्तरों के आक्षेपों के निराकरण में अधिक रही है। वैशेषिक दर्शन के आचार्य वादीन्द्र या वादीश का भी उल्लेख इन्होंने अपने पक्ष के समर्थ में किया है। वादीन्द्र न्यायसारविचार के प्रणेता राघव भट्ट के गुरु तथा कणादसूत्रनिबन्धवृत्ति के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

व्याख्या करते समय व्याख्याकार की दृष्टि तीन बातों पर अवश्य रहती है। १. अपनी व्याख्या के माध्यम से व्याख्येय विषयों का पाठक को हृदयङ्गम कराना। २. सम्प्रदाय (गुरुपरम्परा) सम्मत विषयों का प्रचार करना तथा ३. प्रवल युक्तियों के वल पर विपक्षियों के आक्षेपों का निराकरण करना। इस न्यायमुक्तावली में इन व्याख्यागुणों का समन्वय विशदरूप में हुआ है। इसकी भाषा सरल तथा शास्त्र के अनुरूप है।

तात्पर्य टीकाकार वाचस्पति मिश्र के निवास स्थान के रूप में प्रसिद्ध मधुवनी (विहार) जनपद के ठाढी ग्राम के निवासी सोदरपुर महियामूलक अवदात कुल सम्भूत भवानीपति के पौत्र तथा तारापति के पुत्र प्रख्यात नैयायिक

विश्वनाथ झा ने ख्रीष्टिय उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लक्षणावली की प्रकाश व्याख्या का प्रणयन किया तथा १९०१ ई० में वह प्रकाशित हुई। जीर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होने के कारण इसके सम्पादक तथा प्रकाशक का परिचय मुझे प्राप्त नहीं हो सका।

विश्वनाथ झा ने मधुबनी जनपद के ही चकौती ग्रामवासी–नव्यन्याय के विवेचनाकार ऋद्धिनाथझा के श्रीचरणों में बैठकर सम्पूर्ण न्यायशास्त्र का अध्ययन किया। पश्चात् नव्यन्याय के केन्द्ररूप में प्रसिद्ध नदिया शान्तिपुर (पश्चिमवङ्ग) जाकर नव्यन्याय के क्रोडपत्र के प्रणेता के रूप में प्रख्यात गोलोक न्यायरत्न से पुनश्च उनके दिवङ्गत हो जाने पर प्रसन्न तर्करत्न से न्याय शास्त्र के परिष्कार में अभिज्ञता अर्जित की। कृतविद्य होने पर महाराज दरभंगा का आश्रय पाकर ऋषिऋण से मुक्ति के साधन विद्या के अध्यापन तथा शास्त्र की व्याख्या के प्रणयन में संलग्न हुए।

लक्षणावली प्रकाश के उपसंहार में दो पद्यों में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

आसीत् सोदरपूरमूल महियाग्रामो भवानीपति–
र्यो ब्रह्मैकविचारनिर्मलमतिः ख्यातोऽखिलैः सद्गुणैः।
तत्पुत्रो मतिमद्वरोऽखिलगुणप्रख्याततारापति–
स्तारानाथविभूषणाङ्घ्रियुगलक्षीरोत्थसत्षट्पदः।।

तत्सूनुरेनं मिथिलामहीशस्याज्ञामवाप्यौदयनीप्रकाशम्।
श्री विश्वनाथः कृतवान् प्रयत्नान्मुदे वुधानां विमलप्रकाशम्।।

प्रो० दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य ने अपनी कृति 'मिथिला में नव्यन्याय का इतिहास' में लिखा है कि १८९१ में संस्कृत कौलेज कोलकाता के प्रधान आचार्य महेश न्यायरत्न ने मिथिला आकर संस्कृत विद्यालय दरभंगा में अध्यापक विश्वनाथ झा से आठ छात्रों को न्यायशास्त्र का अध्ययन करते देखा था।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है इनके दो अन्तेवासियों की, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र धर्मदत्त (बच्चा) झा तथा लोकनाथ झा की – शिष्य परम्परा भारत के प्रत्येक प्रान्त में न्याय विद्या का प्रसार कर रही है। यथा धर्मदत्त (बच्चा) झा के पाँच साक्षात् शिष्य सहदेव झा (चकौती), शशिनाथ झा (राँटी), लक्ष्मीनाथ झा

(सीमा), षष्ठीनाथ मिश्र (लालगञ्ज) तथा औरस पुत्र एवं शिष्य जगदीश झा (नवानी) की शिष्य उपशिष्य परम्परा आज वर्तमान वर्धमान हैं तथा न्यायशास्त्र का भारत भर में प्रचार कर रही हैं। इसी तरह लोकनाथ झा के तीन प्रधान शिष्य – महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्र, गोयनका संस्कृत विद्यालय काशी के न्यायाध्यापक राधाकान्त झा तथा पदवाक्य रत्नाकर के व्याख्याकार यदुनाथ मिश्र की शिष्य परम्परा भारत भर में परिव्याप्त होकर न्यायशास्त्र की अभिवृद्धि में संलग्न हैं।

इसी विश्वनाथ झा की अपर कृति नव्यन्याय के कठिन ग्रन्थ व्यधिकरण की व्याख्या 'सिद्धान्तसार' नाम से प्रसिद्ध है। लक्षणावली की यह प्रकाश व्याख्या नव्यन्याय की दृष्टि से लिखी गयी है। इन्होंने वैशेषिक पदौर्थों के लक्षणों का नव्यन्याय की दृष्टि से परिष्कार किया है। तेजस्त्व के लक्षण के प्रसङ्ग में इन्होंने प्रसिद्ध पण्डित्य शंकर मिश्र के लक्षण का खण्डन किया है।

शंकर मिश्रकृत वादिविनोद में आकाश का जो लक्षण किया गया है उसका खण्डन भी इस प्रकाश में देखा जाता है। किन्तु खण्डन हेतु इन्होंने कोई युक्ति नहीं यहाँ दिखायी है। केवल 'तच्चिन्त्यम्' कहा है।

विश्वनाथपञ्चानन ने न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में पृथिवी का लक्षण गन्धवत्त्व कहा है, उसका खण्डन इस प्रकाश में यह कहकर किया गया है कि पाषाण में गन्ध नहीं रहने से अव्याप्ति होती है। इसका समाधान यद्यपि विश्वनाथपञ्चानन ने स्वयं किया है कि पाषाण के भस्म में गन्ध की उपलब्धि होने से अनुद्भूत गन्ध का अस्तित्व पाषाण में मान्य है तथापि इन्होंने उसी लक्षण के खण्डन में दूसरी युक्ति यह दी है कि गन्ध की अनेक विधता होने से लक्ष्यतावच्छेदक पृथिवीत्व की व्यापकता की अनुपपत्ति होगी, अनेकत्व की आपत्ति होगी तथा व्यवहार की अनुपपत्ति होगी। जगदीश भट्टाचार्य को इन्होंने अपने पक्ष के समर्थन में यथास्थान उद्धृत किया है।

गुणनिरूपण के पश्चात् तथा कर्म निरूपण के पहले इन्होंने स्वतन्त्र रूप से बुद्ध्यात्मक गुण का प्रभेद दिखाते हुए नव्यन्यायसम्मत चार प्रमितियों एवं प्रमाणों का – प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति तथा शाब्दबोध एवं इनके करणों का विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष रूप प्रमिति

तथा प्रमाण एवं अनुमिति और अनुमान दो ही प्रमाण मान्य हैं। तथापि अपने संप्रदाय के संरक्षण में तत्पर व्याख्याकार प्रतितन्त्र सिद्धान्त का यहाँ समावेश किया है।

दोनों व्याख्याओं में एक स्थूल भेद स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि न्यायमुक्तावली में शास्त्रान्तरों के आक्षेपों के निराकरण में सत्तर्क एवं प्रबल प्रमाण प्रस्तुत हुआ है। तथा उदयन की पंक्तियाँ सरल भाषा में विशदता के साथ व्याख्यात हुई हैं। और प्रकाश व्याख्या में नव्यन्याय की शैली में लक्षणों का परिष्कार, चिन्तन का स्वातन्त्र्य तथा नव्यन्याय के अनुकूल प्रमाण चतुष्टय का संक्षेप में परिचय प्रसंग उठाकर किया गया है। यहाँ सम्प्रदाय की रक्षा तथा उसके प्रसार पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रकाश व्याख्याकार के शिष्य लोकनाथ झा ने प्रकाश के विषम स्थलों की टिप्पणी की है उसका भी यहाँ १–२ चिह्न देकर समावेश हुआ है।

यद्यपि धर्मदत्त (बच्चा) झा के साक्षात् शिष्य त्रितलावच्छेदकतावाद स्वरूप मौलिक ग्रन्थ के प्रणेता विद्यावाचस्पति शशिनाथ झा कृत एक और व्याख्या लक्षणावली की इस बीसवीं शताब्दी के तृतीय चरण में मिथिला संस्कृत शोध संस्थान दरभंगा से प्रकाशित हुई है। तथापि इस ट्रस्ट द्वारा दुर्लभ व्याख्या के प्रकाशन का संकल्प रहने से उसका यहाँ समावेश नहीं किया गया।

यहाँ श्री वल्लभ विद्यापीठ श्री विट्ठलेश प्रभुचरण आ०हो० ट्रस्ट वैभव को औपरेटिह्व सोसाइटी कोल्हापुर के सदस्यों के, विशेषतः प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन के अभिज्ञ मानीय मित्रमणि गोस्वामी श्री श्याम मनोहर जी के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इन्होंने न केवल इस ग्रन्थावली के पाँच भागों के प्रकाशन का सम्पूर्ण व्यय भार उठाया है अपितु भारत के न्यायशास्त्र के रसिकों के पास अपने व्यय से रजिस्टर्ड डाक द्वारा इन ग्रन्थावलियों को उपहृत कर सुधीजनों का सम्मान तथा न्यायशास्त्र के प्रचार में सहयोग किया है।

एकेडेमी प्रेस इलाहाबाद के स्वामी सम्मान्य श्री सुरेन्द्रमणि त्रिपाठी ने अपने सहयोगियों के साथ पूरा धैर्य के साथ इन ग्रन्थावलियों के अक्षर संयोजन में निरन्तर सहयोग किया है तथा रमा आर्ट्स (अन्धेरी) मुम्बई ने आकर्षक

मुद्रण कर पुस्तक की सुन्दर आकृति दी है, अतः इन दोनों का भी मैं आभार मानता हूँ। सुधीपाठकों से मेरी प्रार्थना है कि भ्रम, प्रमाद तथा मतिमान्द्यजन्य मेरा मानव सुलभ त्रुटियों का गजनिमीलनकर शिव की तरह केवल गुण का ग्रहण कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

गुणदोषौ वुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति।।

व्यासपूर्णिमा १५।७।२०११ ई०
विट्ठो, मधुवनी (विहार)

सुधीजनों के सनेहाधीन
किशोरनाथ झा

मुक्तावलीव्याख्योपेतायाः लक्षणावल्याः
विषयसूची

विषयः	पृष्ठसंख्या
मङ्गलाचरणम्	१
भावलक्षणम्	२
भावविभागः	२
पदार्थलक्षणम्	२
द्रव्यलक्षणम्	२
द्रव्यस्य द्वितीयलक्षणम्	४
द्रव्यस्य तृतीयलक्षणम्	५
द्रव्यस्य चतुर्थलक्षणम्	५
द्रव्यविभागः	७
तमसो द्रव्यत्वविचारः	८
तमसो द्रव्यत्वनिराकरणम्	११
पृथिव्याः प्रथमलक्षणम्	१२
पृथिव्याः द्वितीयलक्षणम्	१३
पृथिव्याः विभागः	१३
नित्यपृथिवीसिद्धिः	१४
पृथिवीत्वजातिसिद्धिः	१५
सत्ताजातौ प्रमाणम्	१५
द्रव्यत्वजातौ प्रमाणम्	१५

पार्थिवशरीरलक्षणम्	१९
इन्द्रियलक्षणम्	२०
विषयलक्षणम्	२०
अपरोक्षत्वलक्षणम्	२०
जललक्षणम्	२०
जलीयविषयविभागः	२१
जलीयशरीरसिद्धिः	२१
रसनेन्द्रियसिद्धिः	२१
रसनस्य जलीयत्वसिद्धिः	२१
करकायाः जलत्वसिद्धिः	२१
तेजसो लक्षणम्	२१
विद्युतः तैजसत्वसिद्धिः	२१
सुवर्णस्य तैजसत्वसिद्धिः	२१
तेजसो विभागः	२१
नित्यतेजसः सिद्धिः	२१
अनित्यतेजसो विभागः	२१
चक्षुषस्तैजसत्वसिद्धिः	२२
वायुलक्षणम्	२२
वायुविभागः	२२
वायुसिद्धिः	२२
नित्यवायुसिद्धिः	२२
अनित्यवायुविभागः	२२
वायवीयविषयविभागः	२२
वायवीयशरीरसिद्धिः	२२

त्वगिन्द्रियसिद्धिः	२३
आकाशलक्षणम्	२३
आकाशसिद्धिः	२६
काललक्षणम्	२६
कालसिद्धिः	२९
दिशो लक्षणम्	२९
दिशः सिद्धिः	३०
आत्मनो लक्षणद्वयम्	३०
आत्मविभागः	३०
आत्मसिद्धिः	३०
ईश्वरसिद्धिः	३०
जीवे प्रमाणं तस्य नानात्वञ्च	३१
मनसो लक्षणम्	३३
मनसः सिद्धिः	३४
विशेषगुणलक्षणम्	३४
गुणलक्षणम्	३४
गुणविभागः	३४
गुणत्वसिद्धिः	३४
रूपस्य लक्षणद्वयम्	३५
रूपविभागः	३५
रूपत्वसिद्धिः	३५
रूपग्राहकेन्द्रियसिद्धिः	३५
नीलत्वसिद्धिः	३५
रसलक्षणं तद्विभागश्च	३६

गन्धलक्षणम् ३६
गन्धस्य जलादिगुणत्वनिराकरणम् ३६
स्पर्शलक्षणम् ३७
स्पर्शस्य विभागः ३७
अनुष्णाशीतस्पर्शस्य विशेषगुणत्वकथनम् ३७
संख्यालक्षणम् ३८
द्वित्वोत्पत्तिप्रक्रिया ३८
परिमाणलक्षणम् ४०
पृथक्त्वलक्षणम् ४१
संयोगलक्षणम् ४१
अस्य लक्षणान्तरम् ४२
विभागलक्षणम् ४२
परत्वलक्षणम् ४२
अपरत्वलक्षणम् ४२
बुद्धिलक्षणम् ४२
सुख दुःखयोर्लक्षणम् ४२
इच्छाद्वेषयोर्लक्षणम् ४२
प्रयत्नगुरुत्वयोर्लक्षणम् ४२
द्रवत्वलक्षणम् ४२
असमवायिकारणलक्षणम् ४३
स्नेहलक्षणम् ४३
संस्कारलक्षणम् ४३
धर्माधर्मयोर्लक्षणम् ४४
शब्दलक्षणम् ४४

कर्मलक्षणं तद् विभागश्च ४४
सामान्यलक्षणं ४४
विशेषलक्षणम् ४५
समवायलक्षणम् ४६
समवायस्य द्वितीयलक्षणम् ४६
अभावलक्षणविभागौ ४६
अत्यन्ताभावलक्षणम् ४६
अन्योन्याभावलक्षणम् ४६
प्रागभावलक्षणम् ४६
ध्वंसलक्षणम् ४६

न्यायमुक्तावल्यां समागतविषयाणामनुक्रमणी

द्रव्यप्रथमलक्षणे तत्त्वप्रदीपिकाकारमतं तन्निरासश्च ३
जातिलक्षणस्य समवेतत्वासमवेतत्वविचारः ५
अजसंयोगनिरासः ६
शब्दस्य द्रव्यत्वनिरासः ७
तमसो द्रव्यत्वनिरासः ८
तमसो द्रव्यत्वसिद्धौ तर्कसंग्रहकारमतं तन्निरासश्च १०
तमसो द्रव्यत्वसिद्धौ चित्सुखाचार्यमतं तन्निरासश्च ११
तमसो द्रव्यातिरिक्तत्वसाधनं ११
गन्धस्य जलादिवृत्तित्वे तर्कसंग्रहकारमतम् तन्निरासश्च १२
गन्धस्य पृथिवीमात्रगुणत्वसाधनम् १३
सत्तायां प्रमाणम् १४
सत्ताजातौ वेदान्तिमतम् १४

नित्यपृथिवीसिद्धौ तर्कसंग्रहकारकृतबाधकाभिधानम् तन्निरासश्च १४
एतन्मतनिरासः १४
त्रसरेणोरनित्यत्वे बाधकनिराकरणम् १५
त्रसरेणोरनित्यत्वे वादीन्द्रमतम् १६
त्रसरेणोरनित्यत्वे वल्लभाचार्यमतम् १६
शरीरस्य पाञ्चभौतिकत्ववादखण्डनम् १७
पृथिवीत्वजातिसिद्धौ युक्तिः १८
चित्ररूपसिद्धिः १८
इन्द्रियलक्षणम् २०
इन्द्रियलक्षणे वादीशमतम् २०
वादिवागीश्वरकृत शरीरलक्षणम् २०
शरीरविभागः २०
अयोनिजशरीरसिद्धिः २०
अतीन्द्रियत्वलक्षणम् २०
वायोः पृथिवीभिन्नत्वे भाष्यमतम् २२
शब्दस्य गुणत्वे वल्लभमतम् २३
आकाशनित्यतासिद्धिः २४
आकाशनित्यत्वे वेदान्तिमतनिरासः २४
आकाशानिर्वचनीयत्ववादितर्कसंग्रहकारमतं तन्निरासश्च २६
कालास्वीकर्तृतर्कसंग्रहकारमतं तन्निरासश्च २८
ईश्वरसाधकप्रमाणम् ३०
अभेदवादखण्डनम् ३१
मनसो मूर्तत्वसाधनम् ३४
विशेषगुणलक्षणम् ३४

द्वित्वैकत्वसाधनप्रकारः ३९
द्वित्वस्यापेक्षाबुद्धिजत्वसाधनम् ४०
द्वित्वस्यैकत्वजन्यत्वसाधनम् ४०
सामान्यलक्षणम् ४४
विशेषलक्षणम् ४५
विशेषसाधनम् ४५
समवायसाधनम् ४५
समवायसाधने वल्लभाचार्यमतम् ४५

प्रकाशव्याख्योपेतायाः लक्षणावल्याः विषयसूची

मङ्गलाचरणम् १
पदार्थलक्षणम् १
भावलक्षणम् २
भावपदार्थाभिधानम् २
अनित्यद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषनिरूपणम् ४
नित्यद्रव्यसमवायाभावनिरूपणम् ४
द्रव्यगुणकर्मणां समवायसंबन्धावच्छिन्न
वृत्तिताश्रयवत्त्वाभिधानम् ४
सामान्यविशेषसमवायाभावानां तद्भिन्नत्वाभिधानम् ४
द्रव्यस्य लक्षणम् ५
द्रव्यस्य द्वितीयलक्षणम् ६
द्रव्यस्य तृतीयलक्षणम् ७
द्रव्यस्य विभागः ९
तमसः द्रव्यत्वनिराकरणम् ९

पृथिव्या: लक्षणम् ११
पृथिव्या: विभागाभिधानम् १४
नित्यपृथिव्या: सिद्धि: १४
पृथिवीत्वजातिसिद्धि: १६
सत्ताजातौ प्रमाणम् १६
द्रव्यत्वजातौ प्रमाणम् १६
कार्यपृथिव्या: प्रकाराभिधानम् १७
पार्थिवशरीरलक्षणम् १७
इन्द्रियलक्षणम् १८
अपरोक्षत्वलक्षणम् २०
अतीन्द्रियत्वलक्षणम् २१
विषयलक्षणम् २१
जललक्षणम् २२
जलीयविषयविभाग: २३
जलीयशरीरसिद्धि: २३
रसनस्य जलीयत्वसिद्धि: २४
जलीयविषयनिरूपणम् २४
करकाया: जलत्वसिद्धि: २४
तेजसो लक्षणम् २५
विद्युतस्तैजसत्वसिद्धि: २६
सुवर्णस्य तैजसत्वसिद्धि: २६
तेजसो विभाग: २७
नित्यतेजस: सिद्धि: २७
अनित्यतेजसो विभाग: २७

चक्षुषस्तैजसत्त्वसिद्धि: २९
वायुलक्षणम् ३०
वायुविभाग: ३१
वायुसिद्धि: ३१
त्वगिन्द्रियसिद्धि: ३१
प्राणलक्षणम् ३२
आकाशलक्षणम् ३२
आकाशसिद्धि: ३२
काललक्षणम् ३५
कालसिद्धि: ३६
दिशो लक्षणम् ३६
दिश: सिद्धि: ३६
आत्मनो लक्षणम् ३७
जीवात्मनो लक्षणम् ३८
शरीरातिरिक्तात्मसिद्धौ युक्ति: ३८
आत्मविभाग: ४१
ईश्वरसिद्धियुक्ति: ४१
जीवलक्षणम् तस्य नानात्वं च ४३
मनसो लक्षणम् ४३
मनस: सिद्धि: ४३
विशेषगुणलक्षणम् ४३
मनस: अन्त:करणत्वसिद्धि: ४४
गुणलक्षणम् ४४
गुणत्वसिद्धि: ४५

गुणविभागः	४५
रूपस्य लक्षणद्वयम्	४५
रूपग्राहकेन्द्रियस्य चक्षुषः सिद्धिः	४६
रूपत्वसिद्धिः	४६
नीलत्वजातिसिद्धिः	४६
रसलक्षणं तद्विभागश्च	४७
गन्धलक्षणम्	४७
गन्धस्य जलादिगुणत्वनिराकरणम्	४७
स्पर्शलक्षणम् तद्विभागश्च	४८
अनुष्णाशीतस्पर्शस्य विशेषगुणत्वकथनम्	४८
संख्यालक्षणम्	५१
द्वित्वोत्पत्तिप्रक्रिया	५२
परिमाणलक्षणम्	५२
पृथक्त्वलक्षणम्	५३
संयोगलक्षणम्	५४
अस्य लक्षणान्तरम्	५५
विभागलक्षणम्	५५
परत्वापरत्वयोर्लक्षणम्	५६
बुद्धिलक्षणम्	५६
सुखदुःखयोर्लक्षणम्	५६
द्वेषप्रयत्नयोर्लक्षणम्	५६
गुरुत्वद्रवत्वस्नेहानां लक्षणम्	५६
संस्कारलक्षणम्	५८
धर्मलक्षणम्	५८

अधर्मलक्षणम्	५९
शब्दलक्षणम्	५९
कर्मणो लक्षणं विभागश्च	१११
सामान्यस्य लक्षणम्	११३
विशेषस्य लक्षणम्	११७
समवायलक्षणम्	११८
अभावस्य लक्षणं विभागश्च	११८

प्रकाशव्याख्यायां समागता विषयाः

शक्तिसादृश्ययोः पदार्थातिरिक्तत्वशङ्का	३
तन्निरासः	४
प्रतियोगितात्त्वानुयोगितात्त्वादीनां पृथक् पदार्थत्वनिरासः	४
वादिविनोदे शंकरमिश्रकृतद्रव्यलक्षणस्य चिन्त्यत्वाभिधानम्	९
शंकरमिश्रकृताकाशलक्षणमुद्धृत्य तस्य चिन्त्यत्वाभिधानम्	३५
वादिविनोदे शंकरमिश्रकृतरसलक्षणम्	४७
कस्मिनं द्रव्ये कति के च गुणा इत्यत्र वृद्धसम्मतिमाह कारिकया	५९
कारणत्वलक्षणम् तद्विभागश्च	६१
अन्यथासिद्धलक्षणं तद्विभागश्च	६२
पृथक्त्वान्योन्याभावयोरतिरिक्तत्वे युक्तिः	६२
संयोगस्य प्रकारद्वयेन विभागः	६३
विभागस्य त्रैविध्याभिधानम्	६३
संयोगनाशेन विभागोऽन्यथासिद्ध इति गौडमतम्	६४

बुद्धेर्द्वैविध्याभिधानम्	६४
प्रत्यभिज्ञायाः स्मृतिजन्यत्वम्	६४
स्मृतेश्च संस्कारजन्यत्वम्	६४
बुद्धेः ख्यातिपर्यायत्वाभिधानम्	६४
अनुभवलक्षणम्	६४
अनुभवस्य चातुर्विध्यम्	६४
प्रत्यक्षानुभवकरणयोर्विचारः	६५
अनुमितितत्करणयोर्विचारः	७०
उपमितितत्करणयोर्विचारः	१०२
शाब्दबोधतत्करणयोर्विचारः	१०२
सामान्यविचारे सौगतमतनिराकरणम्	११३
सामान्यविचारे जातिबाधकसंग्रहः	११५

□□

उदयनाचार्यविरचिता

लक्षणावली

प्रणम्य पार्वतीनाथं नित्यविज्ञानमीश्वरम्।
द्रव्यादिसर्वमेयानां करिष्ये लक्षणावलीम्।।

शेषशार्ङ्गधरविरचिता

न्यायमुक्तावली

आनन्दरूपमुन्मीलन्नीलनीरजलोचनम्।
वन्दामहे भवध्वान्तध्वंसिनं रुक्मिणीपतिम्।।

हृद्यस्वादितमदिरावैभवमाद्यद्द्विलोचनां बालाम्।
बालारुणकरभासुरवसनां कमलासनां वन्दे।।

विपक्षाक्षेपसत्पक्षपरिक्षेपपुरन्दरान्।
नमस्यामो गुरून्न्यायसहस्रकिरणान् वयम्।।

शिष्टाचारानुमितकर्तव्यताकं चिकीर्षितप्रकरणपरिसमाप्तिप्रचयपरिपन्थिविघ्नविघातकं नमस्कारलक्षणं मङ्गलमाचरितं दर्शयति **प्रणम्येति**। इह यद्यपि बहुलं विप्रतिपत्तीरुद्भाव्य साधकबाधकप्रमाणे अभिधीयेते तथापि इदमत्र निपुणतरं निरूपयतु भवान्।

कर्मनिर्मितवैचित्र्यमनीशं यदि गीयते।
जगत् ततो जगत्कर्तृकथापि प्रथते कथम्।।

भवेदेतदेवं यद्यचेतनप्रवृत्तेः चेतनाधिष्ठानपूर्वकत्वेन नियमे प्रयोजकान्तरमुपलभ्येत न त्वेतदस्ति योग्यस्यानुपलम्भबाधितत्वात्। अयोग्यप्रयोजकशङ्कायाः शङ्क्यमानप्रयोजकप्रतिक्षेपकत्वेनैव दूरापास्तत्वात्। निरुपाधिकस्य च साध्यपरित्यागे स्वभावपरित्यागप्रसङ्गात्। यदि चानधिष्ठितमेव

प्रवर्तेत अचैतन्यं न स्यात्। न चाचेतनस्य चेतनाधिष्ठानमन्तरेणाप्रवृत्तौ त्रैकालिकव्यभिचाराभावस्य विमर्शशीलेनापि भवता निर्णेतुमशक्यत्वाद्-व्यभिचारशङ्कायां प्रतिबन्धासिद्धिराशङ्कनीया। भाविशङ्काबाधकवैधुर्यस्य विमर्शशीलेनापि भवता निर्णेतुमशक्यत्वात्। तथा च कथं प्रतिबन्धासिद्धिः। भाविबाधकाभावानिर्णयेन व्यभिचारशङ्काया एवानुदयादिति यत्किञ्चिदेतत्। विस्तरस्त्वन्यत्र।

अभिधेयः पदार्थः। स द्विविधः। भावाभावभेदात्। तत्र नञर्थविषयत्वरहितप्रत्ययविषयो भावः। स च षोढा द्रव्यादिभेदेन। तत्रानित्यद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषाः समवेताः। नित्यद्रव्यसमवायाभावाः समवेतत्वरहिताः। द्रव्यगुणकर्माणि समवेतवन्ति। सामान्यविशेषसमवायाभावाः समवेतरहिताः।

अभिधेय इति स्वरूपसङ्कीर्तनं न तु लक्षणम्। अभिधेयत्वस्य केवलान्वयित्वेन लक्षणत्वानुपपत्तेः। लक्षणत्वे वा केवलान्वयित्वानुपपत्तिः। केवलव्यतिरेकी हेतुर्विशेषो लक्षणमिति स्वत एवाभिधानात्। धर्मिस्वरूपज्ञापकत्वस्यापि प्रयोजनस्य सत्त्वात् लक्षणत्वमिति **केचित्**। कश्चायं भावो नाम विधिविषयो वा निषेधाविषयो वा। प्रथमेऽपि यद्यस्तीतिधीविषयत्वं विधिविषयत्वं तर्ह्यभावो ऽस्तीत्यस्तिप्रत्ययविषयत्वादभावस्यापि भावत्वापत्तिः। न चैतदभिलापमात्रं भावेऽपि तथात्वप्रसङ्गात्। अबाधात्तत्प्रमात्वं नात्रापि दण्डवारितमिति सन्तोष्टव्यम्। अथानञ्पूर्वकप्रयोगविषयत्वम्, तन्न। प्रलयविनाशादिषु व्यभिचारात्। नापि द्वितीयः। इहाभावो नास्तीति निषेधविषयत्वेनासम्भवित्वा-दित्याशङ्कयानाकलितपराभिसन्धेरियं वाचो युक्तिरित्याह **नञर्थेति**। न च नञर्थानिरुक्तिः प्रस्तावे निरूपयिष्यमाणत्वात्।

तत्र गुणात्यन्ताभावानधिकरणं द्रव्यम्।

द्रव्यलक्षणमाह **तत्रेति**। उत्पन्नं द्रव्यं क्षणमगुणं तिष्ठतीत्यङ्गीकारे समुत्पत्त्यनन्तरक्षणे द्रव्यतया विवक्षितस्य घटादेर्घटादिकार्यतया घटादिगुणानां कार्यकारणभावस्य नियतपौर्वापर्यरूपत्वात् समसमयमेवानुत्पत्तेरुत्पत्त्यनन्तरं लब्धस्वरूपेण घटादिना जन्यत्वात् गुणप्रागभावाधिष्ठानस्य गुणवत्त्वाभावात्

लक्ष्यद्रव्यैकदेशे लक्षणावृत्तिलक्षणाव्याप्तिः स्यात्। तां परिहर्तुमत्यन्ता-भावानधिकरणत्वमुक्तम्। ननूत्पन्नं द्रव्यं क्षणमगुणं तिष्ठतीत्युक्तावुत्पत्त्यनन्तरक्षणस्य द्रव्यविशेषणत्वोपलक्षणत्वपक्षयोः प्रथमे समवायाभावव्यतिरिक्त-वस्तुविशेषणविशेष्यभावस्य सम्बन्धान्तरपुरःसरत्वस्यास्मत्पक्षेऽवश्या-श्रयणीयत्वात्। सम्बन्धनिरूपणे कार्ये क्षणद्रव्ययोश्च निरूप्यमाणे सम्बन्धे परस्परासमवेतत्वात् तयोः समवायसम्बन्धाभावात्। संयोगेऽवश्योद्भाव्ये द्वितीयेऽप्यसम्बन्धस्यानुपलक्षकत्वात् सम्बन्धे निरूप्ये प्राचीनवैपरीत्या संयोगेऽवश्योद्भाव्येक्षणसंयोगलक्षणगुणाधिकरणत्वात्, तस्य तत्र कुतोऽव्याप्तिरिति चेत् उदारान्तःकरणोऽसि यदालोच्यापि कार्यकारणभावहानिं न व्यथसे इत्यलमव्याप्तिपरिहारगवेषणया। यत्त्वत्र **तत्त्वप्रदीपिका**कारेणोत्पत्त्यनन्तरक्षणे अव्याप्तिमुद्भाव्य गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वे च परिहारमाशङ्क्योत्पत्त्य नन्तरक्षणविशिष्टे कदाचिदपि गुणानुदयात् पुनरव्याप्तेः तदवस्थत्वान्नैवमिति परिहृतम्। तत् कलशपुरः सरप्रासादनिर्माणतुल्यम्। तत्र यस्मिन् विशिष्टे ऽव्याप्तिरुद्भाव्यते तत् किमिदं विशिष्टं नाम। किं युष्मत्सिद्धं पदार्थान्तरम्। उतास्माकीनमेकबुद्ध्यारूढविशेषणविशेष्यतत्सम्बन्धस्वरूपानतिरिक्तं विवक्षितम्। प्रथमे तावदनङ्गीकारपराहतिरेव। द्वितीये चैवंविधस्यालक्ष्यत्वादेव नाव्याप्तिः। न ह्यस्माभिरपि क्षणतत्सम्बन्धसहितस्य स्वरूपस्य द्रव्यत्वमङ्गीक्रियते शुद्धस्य तथात्वात्। तत्र चाव्याप्तिपरिहारस्योक्तत्वात्। यदपि **तत्त्वप्रदीपिका**कारेण प्रजगल्भे गुणवत्त्वात्यन्ताभाव एकोऽनेको वा। एकश्चेत्तर्हि स्वस्य स्वाधिकरणत्वे स्वाश्रयदोषः प्रादुःष्यादिति। गुणवत्त्वात्यन्ताभावोऽपि गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरण-तयैवाङ्गीकार्यो भवद्भिरिति, हा हन्त स्वपोषितमेव द्रव्यलक्षणम्। अनेकश्चेत्तदपि सर्वगुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वं कियद्गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वं वा द्रव्यलक्षणम्। न द्वयमपि गुणवत्त्वात्यन्ताभावस्य स्वानधिकरणत्वेन सर्वगुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वकियद्गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्व-लक्षणलक्षणयोगित्वादतिव्याप्तिरिति। तदपि न चेतसि चमत्कारमाधत्ते। सर्वपदेन दूषयिता किं समुदायं विवक्षति उत प्रतिप्रतीकं, गुणवत्त्वात्यन्ताभावात्। आद्योऽस्मदवज्ञोपहतः। द्वितीये दोषकलामपि न कलयामहे। गुणवत्त्वात्यन्ताभावे तदतिरिक्तगुणवत्त्वात्यन्ताभाववृत्तेरभ्युपगमात्। प्रतिप्रतीकापेक्षानधिकरणत्वाभावात्। अस्तु वैकत्वपक्षविवक्षा तथापि न नः किञ्चिदपचीयते। गुणवत्त्वात्यन्ताभावस्य स्वानधिकरणत्वानभ्युपगमात्। न चैवमात्माश्रयदोषापत्तिः शङ्कनीया।

उत्पत्तिज्ञप्त्योरप्रतिबन्धात्। अन्यथा केवलान्वयिभङ्गप्रसङ्गात्। नन्वेवमपि गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वस्य गुणवत्त्वात्यन्ताभावात्यन्ताभावरूपत्वात् तस्य चाभावस्य हि योऽभावो भाव एव विशिष्यत इति न्यायेन गुणवत्त्वातिरिक्तित्वाभावात् सैवाव्याप्तिः स्यादिति चेत्, न। तस्य गुणवत्त्वातिरिक्तत्वाभ्युपगमात्। अतिरिक्तत्वाभिधानं न युक्तिमत् तत्त्वे तन्नियतत्वस्यैव वक्तव्यत्वात् पुनरव्याप्तिरिति चेत्, मैवं वोचः। गुणप्रागभावाधिकरणे गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वसत्त्वेऽपि गुणवत्त्वाभावेन तन्नियतत्वानुपपत्तेरिति सर्वं सुस्थम्।

शिष्यव्युत्पादनाय लक्षणान्तरमाह

मूर्त्तत्वरहितसमवेतसमवेतत्वरहित मूर्त्तत्वरहितामूर्त्तत्व-रहितसमवेतजातिमद्वेति।

नन्वत्र मूर्त्तत्वरहिते यत् समवेतं तत्र समवेतत्वरहितत्वं विवक्षितं, मूर्त्तत्वरहितं यत् समवेतं तत्र वा। नाद्यः, कर्मण्यतिव्याप्तेः। तस्या असिद्धावस्यासिद्धिरिति चेत्, न। कर्म कर्मवृत्तिघटव्यावृत्तत्वरहित-कर्मवृत्तिगुणवृत्तित्वरहितजातिमत् जातिमत्त्वात् गगनवदिति जातिसिद्धौ तत्सिद्धेः। ननु गगननिष्ठायाः जातेः कर्मवृत्तिघटव्यावृत्तत्व रहितत्त्वं किं कर्मवृत्तित्वे सत्यपि घटव्यावृत्तत्वरहितत्वाद्वा भवेत् घटव्यावृत्तत्वे सत्यपि कर्मवृत्तित्वरहितत्वाद्वा भवेत्। तत्र प्रथमे तावत् न सा सत्ता गुणवृत्तित्वरहितपदेन तस्या निरस्तत्वात्। तत्र विशिष्टव्यावृत्तिः कर्मावृत्तित्वेनेति चेत्, न। कर्मवर्तिन्याः कर्मव्यावृत्तत्वानुपपत्तेः, कर्मव्यावृत्तत्वेनापि तस्या निरस्तत्वाच्च। द्रव्यत्वमपि न सा तस्याः कर्मावृत्तित्वात्। जात्यन्तरस्य शङ्कितुमप्यशक्यत्वादित्यप्रसिद्धविशेषणत्वात्। नापि द्वितीयः। घटकर्मनिष्ठगगननिष्ठजात्यसिद्धौ दृष्टान्तस्य साध्यविकलत्वादिति चेत्, न। कर्मावृत्तिघटव्यावृत्तत्वरहितद्रव्यत्वजात्या साध्यप्रसिद्धेः। एवं गुणेषु गुणत्वेन साध्यप्रसिद्धिर्द्रष्टव्या। नापि द्वितीयः, गुणे कर्मणि चातिव्याप्तेः। कथं मूर्त्तत्वरहितामूर्त्तत्वरहितसमवेतसत्तावत्त्वेनेति ब्रूमः। गुणकर्मसमवेतजातौ विशेषणं निरवकाशमिति चेत्, न। जात्याद्यवृत्तित्वेन सावकाशत्वात्। अत्रोच्यते।

अमूर्त्ते समवेतं यत्तत्राभावो विवक्ष्यते।
न च कर्मण्यतिव्याप्तिः तज्जातौ मानहानितः।।

मूर्त्तत्वरहिते यत् समवेतं तत्समवेतत्वरहितत्वस्याभ्युपेतत्वात्। न च कर्मण्यतिव्याप्तिः, गुणनिष्ठत्वरहितघटनिष्ठाया जातेः कर्मनिष्ठत्वे मानाभावात्। न चोक्तं मानं कर्म गुणावृत्तिघटनिष्ठजातिरहितं द्रव्यत्वानधिकरणत्वात् सम्मतवदिति सत्प्रतिपक्षग्रस्तत्वात्। न च केवलान्वयित्वेन सत्प्रतिपक्षत्वासम्भवः। केवलान्वयित्वस्यैवात्रासम्भवात्। दशश्लोकीविडम्बने तदनिरुक्तरुक्तत्वाच्च।

अमूर्त्ते समवेतं यत्तत्र वा तन्निषिध्यते।
न गुणादावतिव्याप्तिर्व्यवच्छित्तेर्विशेषणात्।।

मूर्त्तत्वरहितं यत् समवेतं तत्र वा समवेतत्वं प्रतिषिध्यते। न च गुणादावतिव्याप्तिः। अमूर्त्तसमवेतमात्रनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य मूर्त्तत्वरहितसमवेतसमवेतत्वरहितशब्दार्थत्वेन तयोर्व्यवच्छिन्नत्वादिति सर्वं सुस्थम्। गुणत्वेन गुणादावतिव्याप्तिपरिहारार्थं **अमूर्त्तत्वरहितसमवेतपदम्**। एवमपि सत्तया तत्रैवातिव्याप्तिस्तदर्थं प्रथमम्। मूर्त्तत्वरहितविशेषणं तु न लक्षणशरीरानुप्रवेशि व्यावर्त्याभावात्। ननु पृथिवीत्वादीनामपि लक्षणत्वप्रसक्तावव्यप्तिः। न, तद्योगिनोऽपि द्रव्यत्वात् न तु तद्योगिन एव। एवंविधद्रव्यत्वस्यापि सम्भवात्। न च लक्षणे सामान्यशब्दः क्वापि विना बाधं विशेषपरो भवति।

गन्धासमवेतगगनारविन्दसमवेतजातिमद्द्रव्यमिति।

द्रव्यलक्षणं निगदव्याख्यातम्। अरविन्दविशेषणं तु न लक्षणशरीरानुप्रवेशि व्यावर्त्याभावात्।

समवेतसमवेतसमवेतं वा इति।

समवेतं समवेतं यत्र तत् समवेतसमवेतं समवेतसमवेतं समवेतं यत्र तत् समवेतसमवेतसमवेतमिति द्रष्टव्यम्। नन्वनुपपन्नमेतत् गुणादावतिव्याप्तेः। तस्य समवेतवत्सामान्यसमवायित्वात्। अस्ति हि सामान्यलक्षणस्य द्रव्यत्वानधिकरणत्वे सति समवायान्यभावत्वेन समवेतत्वम्। अर्थस्यैव समवेतवत्त्वं नानर्थस्येति चेत्, न। तस्य तदसमवायित्वे तल्लक्षणस्य तत्त्वानुपपत्तिः। सामान्यस्वरूपव्याघातश्चासमवायित्वे वा नियमानुपपत्तिः। अभावः स इति चेत् कोऽसाविति निरुच्य वक्तव्यम्। ध्वंसप्रागभावयोरन्यतरः स इति चेत्, न। तन्नित्यत्वेनैव तयोरपहस्तितत्वात्। अस्तु तर्हि अन्योन्याभाव इति चेत्, नैतदपि साधीयः।

तत्र वृत्त्यवृत्तिभ्यां व्याघातात् अत्यन्ताभावत्वाभ्युपगमे नोक्तो दोष इति

चेत् सत्यमेतत्। तत्समानाधिकरणत्वस्यापरस्यैव सम्भवात्। तथाहि

जात्यत्यन्ताभाववत्त्वं जातित्वे चेत् प्रयोजकम्।
जात्यत्यन्ताभाव एव जातित्वं ते प्रसज्यते।।

नैव जातेर्लक्षणं हि जातिमत्त्वेन सम्मतम्।
स्वात्यन्ताभाववत्यां स जातौ तादृश इष्यते।।

जात्यत्यन्ताभाववत्त्वं नान्यथा लक्षणं भवेत्।
स्वात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यं ततो भवेत्।।

अधिकव्याप्तेश्च। भावोऽप्यसमवेत एवेति चेत्, न। नित्यद्रव्य-समवाययोरन्यतरत्वप्रसङ्गात्। ओमिति ब्रुवतस्तल्ल-क्षणत्वानुपपत्तिर्बाधिका। प्रथमेऽसम्भवित्वं द्वितीये ऽतिव्यापकत्वमित्यस्त्वेतत्। अत्रोच्यते।

लक्षणं यद्यजन्यं स्यात् सर्वाभावः कथं भवेत्।
अथ जन्यत्वमिष्येत तद्वृत्तित्वं कथं भवेत्।।

जातिलक्षणस्याजन्यभावत्वे प्रलयो न स्यात्। तथाहि नित्यानेकसमवेतत्वं जातिलक्षणमिष्यते। तत् यदि नित्यं भवेत् घटादिभाव एव भवेत्, न हि घटाद्यभावे घटत्वादीनामनेकसमवेतत्वमुपपद्यते। तथा च कथं प्रलयः सिद्ध्येदिति। तदसत्त्वे वा तदजन्यत्वं न स्यात्, न हि नित्यस्यासत्त्वमुपपद्यते नित्यत्वव्याघातात्। अथ जातिलक्षणं जन्यमित्युच्येत जातिसमवेतत्वं न स्यात्, जातेः कार्यानाश्रयत्वात्। कार्याश्रयत्वोपपत्तौ जातित्वं न स्यात् तदसमवाये च कथं जातेः समवेतवत्त्वम्। कोऽसौ पदार्थेष्विति चेत् औपाधिकं सामान्यमिति ब्रूमः। अभाव एवेति **केचित्**।

न च प्रागुक्तो दोषः। जात्यभावत्वस्यानङ्गीकृतत्वात्। कस्तर्हि प्रतियोगी न कश्चित्। कस्तर्हि अनयोः सम्बन्ध इति चेत् विशेषणविशेष्यभाव एवेति गृहाण। तथापि प्रलयदशायामेवाव्याप्तिः परिहर्तुं न शक्येति चेत् नित्यानेकसमवेतत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वादिति मूकीभव। सत्यमेवमतिव्याप्तिपरिहारः स्यादतिव्याप्तिरेव तु दुरभिधाना। समवेतं समवेतं यत्र तत्समवेतं यत्रेति हि लक्षणार्थो वर्णितः। न चासौ युज्यते समवेतशब्दयोरर्थभेदाभावेन सामानाधिकरण्यानुपपत्तेः। समवेतशब्दस्य सप्तमीतत्पुरुषेण समवेतसमवेतशब्देन बहुव्रीहिरप्यशक्याश्रयणः। घटसमवेते रूपे समवेतं रूपत्वं रूपे समवेतमित्यतिव्याप्तेरिति। तन्न। यत्समवेते समवेतं

समवेतमिति निरुच्य समवेतस्वसमवेतसमवेतत्वस्य लक्षणस्याभ्युपगमात्।

तच्च नवधा भिद्यते पृथिव्यादिभेदेन।

द्रव्यलक्षणमभिधायेदानीं तन्नियममाह **तच्चेति**। शब्दस्य द्रव्यान्तरत्वान्नायं नियम इति चेत्, न। तत्र मानाभावात्। श्रोत्रं नित्यद्रव्यग्राहकं निरवयवेन्द्रियत्वात् मनोवदित्यस्ति मानमिति चेत्, न। मूर्त्तेन्द्रियत्वेन सोपाधित्वात्। श्रोत्रमात्मत्वानधिकरणाजन्यद्रव्यग्राहकं न भवति निरवयवेन्द्रियत्वात् मनोवदिति विपर्ययव्याप्तत्वेन विरुद्धत्वाच्च। शब्दो द्रव्यं मूर्त्तप्रत्यक्षानाश्रितत्वे सति प्रत्यक्षत्वात् आत्मवदिति चेत्, न। अश्रोत्रत्वेन सोपाधिकत्वात्। शब्दो द्रव्यं न भवति श्रोत्रग्राह्यत्वात् शब्दत्ववदिति सत्प्रतिपक्षत्वाच्च। आत्मत्वेनानैकान्तिकत्वमिति **केचित्**। तन्न। मूर्त्तानाश्रितत्वप्रत्यक्षानाश्रितत्वयोरभिधानात्। अस्तु तर्हि मूर्त्तपदानर्थक्यमिति चेत्, न। वायुस्पर्शव्यभिचारनिवृत्त्यर्थत्वात्। अपि च जन्यद्रव्यतायां सावयवानित्यत्वे स्याताम्। अजन्यद्रव्यतायामपि चेत् मूर्त्तत्वमणुतयैन्द्रियकत्वं न स्यात्, अमूर्त्तत्वमपि न श्रोत्रप्रत्यक्षत्वानुपपत्तेरेव। नन्वात्मनोऽमूर्त्तद्रव्यत्वेऽपि मनोवेद्यत्वमिव श्रोत्रप्रत्यक्षत्वमस्याविरुद्धम्। अपरथा नात्मा मानसप्रत्यक्षः अमूर्त्तद्रव्यत्वादाकाशवदित्यपि स्यात्। नैतत्। सम्बन्धासम्भवात्। न ह्यर्थासम्बन्धमिन्द्रियमर्थं गृह्णातीति दृष्टचरम्। कुतोऽसम्बन्ध इति चेत् नित्यद्रव्यतया समवायासम्भवात् अजयसंयोगस्तु नेष्यते। नन्वजानां संयोगो नेष्यते उताजः संयोगः। नाद्यः, अपसिद्धान्तप्रसङ्गात्। न द्वितीयः। आकाशमात्मसंयोगि द्रव्यत्वात् घटवदिति प्रमाणसिद्धतया तस्यावश्याभ्युपेयत्वात्। उच्यते। अजः संयोगो नेष्यत इति। न चायं प्रमाणसिद्धतया शक्यापह्नव इति वाच्यम्। मूर्त्तत्वोपाधिग्रस्ततया तत्प्रामाण्यस्यैवानभ्युपगमात्। तथात्मसंयोगित्वस्यात्मनिष्ठसंयोगाधिकरणत्वसाधने बाधात्। आत्मनिष्ठस्वसंयोगाधिकरणत्वसाधने साध्यविकलो दृष्टान्तः। आत्मसंयोगित्वसिद्धेः पूर्वमात्मनि स्वसंयोगित्वस्याप्रसिद्धत्वेन अप्रसिद्धविशेषणता च दुर्वारा। आकाशं नैतदात्मसंयोगाधिकरणं विभुत्वादाकाशवदिति सत्प्रतिपक्षग्रस्तत्वाच्च। आकाशेन सह संयोगस्याकाशे प्रतिषिध्यमानत्वान्न[१] साध्यविकलो दृष्टान्तः। न चाकाशाभिन्नत्वमुपाधिः रूपादौ साध्याव्याप्तेः। अपि चैवं वदता विभागोऽपि स्वीकर्तव्यः। द्रव्यत्वहेतोरविशिष्टत्वात्। सोऽप्यस्त्विति चेत् कथं तर्हि न संयोगाजन्यव्याघात इति मूकीभव। विस्तरस्त्वन्यत्रेत्युपरम्यते।

अस्तु तर्हि तमसो द्रव्यत्वं तथाहि

अस्ति तावत् तमो नीलमिति धीर्न च साऽप्रमा।
प्रमात्वे बाधकाभावात् पीते नीलप्रतीतिवत्।।१।।

क्षितिर्न विषयस्तस्याः सति तेजोविरोधिनि।
नियतं जायमानत्वात् तेजोभावप्रतीतिवत्।।२।।

अबादिविषया सेति वचनं न मनोहरम्।
सम्यङ्नीलप्रतीतित्वान्नीले नीलप्रतीतिवत्।।३।।

न चाविषयता युक्ता धीत्वाद्रूपादिबुद्धिवत्।
गुणादिविषयत्वं तु शङ्कितुं नैव शक्यते।।४।।

तस्मात्तदाश्रयो द्रव्यमिति तावत् प्रतीयते।
तदाश्रयत्वादेवं यत्तदेवं सम्मतं यथा।।५।।

स्यादेतत् यदि नीलधीरबाधिता स्यात्। तदेव तु असिद्धं तमसो नीलत्वे नीलरूपाश्रयत्वे वा आलोकानपेक्षचक्षुर्ग्राह्यतैव न सिद्ध्येदिति चेत्, तत् किमालोकसापेक्षचक्षुर्ग्राह्यता नीलत्वे नीलरूपाश्रयत्वे वा प्रयोजिकेति मन्यसे। ओमिति ब्रुवन् किं विषयातिरिक्तालोकापेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वं प्रयोजकमुत विषयभूतालोकापेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वमाहोस्विदन्यदेवेति विकल्प्य प्रष्टव्यः। प्रथमे ऽप्यालोकग्रहे चक्षुरालोकान्तरमपेक्षते न वा? प्रथमे कथमालोकाभावश्चाक्षुषः आलोकसत्त्वे स एव नास्तीति धर्म्यभावादेवाचाक्षुषत्वम्। असत्त्वे सहकारिवैधुर्यादचाक्षुषत्वमिति दुरुत्तरं व्यसनम्। कथमालोकस्य तद्ग्रहे सहकारित्वमिति चेत् यद्ग्रहे हि यदपेक्षं चक्षुस्तदभावग्रहेऽपि तदपेक्षत इति भवद्भिरेवाभिधानात्। नापेक्षत इति पक्षे कथमालोकस्यापि चाक्षुषत्वमिति विविच्य वक्तव्यम्। एवमेव चेत् तमसैव किमपराद्धमिति यत्किञ्चिदेतत्। नापि द्वितीयः। आलोकव्यतिरिक्तचाक्षुषाणामचाक्षुषत्वप्रसङ्गात्। अथ घटादिग्रहे विषयव्यतिरिक्तमालोकमपेक्षते, आलोकग्रह एव नातिरिक्तं केवलस्यैव तत्र सामर्थ्यादिति मन्यसे। तन्न। नियामकाभावात्। तस्यापि रूपिमहत्तया घटादिवद्विषयातिरिक्तालोकापेक्षचक्षुर्ग्राह्यताया एव वक्तव्यत्वाच्च। न चात्र तदन्यत्वं प्रयोजकमिति वाच्यम्। आलोकाभावे नियमासिद्धेः। विषमव्याप्तिरेवायमित्युक्तेऽपि न निस्तारः। तमस्तोमावृतानां सुवर्णादीनामतिरिक्तालोकापेक्षचक्षुर्ग्राह्याणां तदन्यत्वानवगमात्। अथापि स्यात् सामर्थ्यभेदः अत्रापि किं न स्यात्। बाधादिति

चेत्, न। तस्योभयत्रापि समानत्वात्। अथ द्रव्यत्वेऽद्रव्यं यदि तर्हि रूपवतो मूर्त्तिनान्तरीयकतया निरवयवद्रव्यस्य परमाणुतयैन्द्रियकत्वं न स्यात्। नाप्यनेकद्रव्यं स्पर्शरहितत्वेन अनारब्धत्वात् मनोवत्। ततः कथं द्रव्यत्वमपि द्रव्यत्वे रूपवत्त्वं चेति मन्यसे। तन्न, रूपवतोऽपि गगनादेर्भाट्टैरमूर्त्तत्वाभ्युपगमात्। तस्यापि रूपवत्त्वे बाधकं वक्ष्यत इति चेत्, न। तदपि तेन न निरस्यत इति कुतोऽवगतम्। अस्तु वानेकद्रव्यत्वम्। स्पर्शरहितद्रव्यत्वान्न तदुत्पद्यत इति चेत्, न। स्पर्शरहितस्यापि घटादेरुत्पत्तिदर्शनात्। न च ते स्पर्शवन्त एवोत्पद्यन्त इति साम्प्रतम्। क्षणमगुणं तिष्ठतीत्यभ्युपगमविरोधात्। अथ स्पर्शरहितद्रव्यत्वान्न तदुत्पद्यत इति यदि ब्रूयां तदा स्यादेवैष दोषः, न त्वेवं ब्रवीमि। अपि तु स्पर्शरहितद्रव्यत्वान्न तदवयवास्तदारम्भका इति मन्यसे। तन्न,

धर्मिग्राहकबाध्यत्वं सिद्धास्ते धर्मिणो यदि।
धर्मित्वं यद्यसिद्धानामाश्रयासिद्धिरुद्भटा।।१।।

परसिद्धस्य धर्मित्वमङ्गीकर्तुं न शक्यते।
एवमन्यतरासिद्धेर्लोप एव प्रसज्यते।।२।।

किं च

परसिद्धिः प्रमाणं चेत् तया बाधः प्रसज्यते।
यदि सा न प्रमाणं स्यादाश्रयासिद्धिरेव ते।।३।।

किञ्च रूपितया स्पर्शो यदा तत्रानुमीयते।
तदापि साधनासिद्धिरिति सर्वं समञ्जसम्।।४।।

तस्मान्नवत्वनियमो नैव सिद्धिमुपाश्नुते।
तमसो दशमत्वस्य संसिद्धेर्मानयुक्तितः।।५।।

अत्राभिधीयते। कथमिह तमसो द्रव्यत्वमभिधीयते तत्र मानाभावात्। न चाबाधितनीलधीविषयत्वं मानम्। आलोकानपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वस्यैव बाधकत्वात्। न चात्र विकल्पावकाशः, विषयातिरिक्तत्वानतिरिक्तत्वयोरन्यतरत्वस्याभ्युपेतत्वात्, सर्वथालोकापेक्षाया दुर्वारत्वात्। न चात्रोभयथापि तदपेक्षा सम्भाविनीति स्वरूपासिद्धिरेव पर्यवस्येत्। न चालोकाभावस्य तद्व्यञ्जकत्वाङ्गीकारात् आलोकानपेक्षचक्षुर्ग्राह्यतेति साम्प्रतम्। तस्य तद्व्यञ्जनीयत्वे मानाभावात्। रूपवच्चाक्षुषत्वेनालोकापेक्षचक्षुर्ग्राह्यताया एव वक्तव्यत्वाच्च। न चैवमालोकेऽपि

विषयातिरिक्तालोकापेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वमनुमातुं शक्यं गौरवात्। अपि च तमसोऽजन्यत्वं जन्यत्वं वाभ्युपेयेत। न प्रथमः, अप्रत्यक्षतापत्तेः रूपवदजन्यत्वस्य अप्रत्यक्षत्वेन व्यभिचारानुपलब्धेः। अजन्यरूपवतोऽपि गगनादेः प्रत्यक्षत्वान्नैवमिति चेत्, न। अजन्यरूपवत्त्वे प्रत्यक्षत्वानुपपत्तेः। अजन्यरूपवतोऽपि प्रत्यक्षत्वे को दोष इति चेत्, न। रूपवत्त्वे विभुत्वानुपपत्तेः, रूपवच्चाक्षुषत्वे वाजन्यत्वानुपपत्तेः। न च वियदधिकरणन्यायेन जन्यत्वमेवास्त्विति साम्प्रतम्। प्रस्तावे निराकरिष्यमाणत्वात्। व्यभिचाराभावे निरनुयोज्यानुयोगप्रसङ्गाच्च। नापि द्वितीयः, स्पर्शरहितद्रव्यत्वात्। न च विशेष्यवैयर्थ्यम्, रूपादिव्यभिचारपरिहारार्थत्वात्। न चैवमपि घटादौ व्यभिचारः[३]। द्रव्यत्वे सति स्पर्शात्यन्ताभावाधिकरणत्वस्य हेतुत्वात्। न च रूपवत्त्वेन स्पर्शवत्त्वानुमानात् स्पर्शरहितद्रव्यत्वमसिद्धमिति वाच्यम्। रूपवत्त्वे मानाभावात्।

तर्कसङ्ग्रहकारास्तु मनस्त्वं स्पर्शवदवृत्तिवेगवद्वृत्तिजातेरन्यत् जातित्वात् गोत्ववदिति तमसो द्रव्यत्वे प्रमाणमाहुः। तदप्रमाणम्। स्पर्शवदमूर्त्तान्यतरवृत्तिजातित्वोपाधिग्रस्तत्वात्। न च गगनादौ साध्याव्याप्तिरिति साम्प्रतम्। जातित्वविशेषणावच्छिन्नसाध्यव्यापतेरिष्टत्वात्। न चेतरोपाधितुल्यन्यायत्वे सत्यप्यवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वादयमनुपाधिरिति शक्यं वक्तुम्। अपरथा सर्वत्रोपाधिविलयप्रसङ्गात्[३]। मनस्त्वं स्पर्शवदवृत्तिवेगवद्वृत्तिजात्यन्यजातिर्न भवति स्पर्शवदमूर्त्तान्यतरवृत्तिजातित्वरहितत्वात्। यत् स्पर्शवदमूर्त्तान्यतरवृत्तिजातित्वरहितं तत् स्पर्शवदवृत्तिवेगवद्वृत्तिजात्यन्यजातिर्न भवति यथा गगनादि। या पुनः स्पर्शवदवृत्तिवेगवद्वृत्तिजात्यन्यजातिः न सा स्पर्शवदमूर्त्तान्यतरवृत्तिजातित्वरहिता यथा गोत्वादिजातिरित्यन्वयव्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्षत्वाच्च। मनस्त्वमस्पर्शवदवृत्तित्वरहितामूर्त्तत्वरहितवृत्तित्वरहिताया एव मनस्त्वान्यजातिमदाश्रयव्यावृत्तजातेरन्यज्जातित्वाद् गोत्ववदिति विपर्ययव्याप्तत्वेन विरुद्धत्वाच्च। अत्र च मनस्त्वे मनस्त्वान्यजातिमदाश्रयव्यावृत्त-जात्यन्यत्वमेवंविधजात्यन्यत्वेनैवेति नियमस्य साध्यमानत्वान्नानेवंविधसत्ताद्यन्यत्वेन नियमासिद्धिराशङ्कनीया। नापि मनस्त्वान्यत्वेन गोत्वे। न च सत्तान्यत्व इव तमस्त्वान्यत्वेऽपि नियमोऽर्थवान् भवितुमर्हति तस्यैतादृक्त्वेनावयोर-सम्प्रतिपन्नत्वात्। अनेवंविधसत्तादेस्तु जातिमदाश्रयव्यावृत्तविशेषणेन व्युदस्तत्वात्। अत्र च विशेषणविशेष्यान्यतरव्यतिरेकेण साध्यपर्यवसानमवगन्तव्यम्।

उभयव्यतिरेकस्तु न सम्भवत्येवेत्यलं दूषणगवेषणया।

चक्षुः प्रकाशनाजन्यरूपवद्वीक्षणक्षमम्।
रूपिग्राहीन्द्रियत्वेन यथैव स्पर्शनेन्द्रियम्।।१।।

इति यच्चित्सुखाचार्यैरुक्तं तन्न मनोहरम्।
अरूपीन्द्रियता तत्र यतः साध्यप्रयोजिका।।२।।

न च रूपवदग्राहकत्वं व्यतिरेके प्रयोजकमिति साम्प्रतम्। उपाधिप्रतिरोधौ तु क्व नामातीवदुर्वचावितिन्यायेन प्राक्तनस्यैवोपाधेरेतद्विपर्ययेऽपि वक्तुं शक्यत्वात्। न चात्मादिषु साध्याव्याप्तिः। रूपीन्द्रियत्वरहितत्वस्यारूपीन्द्रियत्वशब्दार्थत्वात्। यदपि **तत्त्वप्रदीपिकाकारै**र्वैयर्थ्योपाधिग्रस्ततया तमोऽवयवानारम्भकाः स्पर्शरहितत्वान्मनोवदिति न मानमित्युक्तम्[४]। तदपि न, किमत्र द्रव्यसमवायिकारणत्वनिषेधं साध्यार्थमभिप्रेत्योपाधेरुद्भावनम्, अजनकत्वमात्रं वा। न प्रथमः, अदृष्टादिषु साध्यसत्त्वेऽपि उपाधेरदर्शनात्। न द्वितीयः। साध्योपाधिनियमे निदर्शनाभावाद् यस्य कस्यापि यत्किञ्चिज्जनकत्वात्। मास्तूपाधिः प्राचीनदोषानुषङ्गस्तु स्यादेवेति चेत्, न स्यात्। तमसोऽवयवत्वेन शङ्क्यमानानां धर्मित्वाभ्युपगमेनोक्तदोषानुषक्तेरेवोक्तदोषानुषङ्गप्रसङ्गात्। शङ्क्यमानासत्त्वे कथमाश्रयासिद्धमनुमितमुदयमासादयेदिति चेत् शङ्क्यमानासत्त्वे ऽनुपयुक्तत्वेनानुमानानुदयस्यास्माभिरप्यङ्गीकारात्। साधनीयस्य शङ्क्यमानाभावस्य भवतैवाभ्युपगतत्वात्। शङ्क्यमानसत्त्वे धर्मिग्राहकप्रमाणवाध इति चेत्, न। शङ्क्यमानसाधकत्वेन भवता शङ्क्यमानस्यास्माभिः प्रमाणत्वानङ्गीकारात्। अस्तु वा एवमारम्भप्रतिषेधः, स्पर्शवत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणं द्रव्यारम्भकं न भवति स्पर्शवत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वान्मनोवदिति। तदेवं साधकमानाभावान्न तमसो द्रव्यत्वमिति सिद्धम्। तथाप्यद्रव्यत्वे किं मानमिति चेत् तमो द्रव्यं न भवति द्रव्यत्वसमानाधिकरणद्रव्यत्वावान्तरजातिरहितत्वे सति चाक्षुषत्वाद् रूपवदिति स्थित एव साधने साधनान्तरमाह

तमो द्रव्यं न भवति आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वा-दालोकाभाववदिति।

तमो द्रव्यमालोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वादालोकवदिति सत्प्रतिपक्षत्वमिति चेत्, न। दृष्टान्तस्य साधनविकलत्वादालोकस्य विषयालोकतदवयवालोकसापेक्ष-

चक्षुर्वेद्यत्वात्। आलोकाकरणकचाक्षुषप्रत्ययविषयत्वं हेतुस्तच्चालोकेऽस्ति विषयालोकस्य कर्मत्वेन करणत्वासम्भवादिति चेत्, न। विषयालोकावयवानां तत्र करणत्वसम्भवात्। विषयालोकस्यापि संयोगावान्तरव्यापारस्य करणत्वसम्भवाच्चेति केचित्। तत्र, आलोकाभावस्याचाक्षुषत्वप्रसङ्गात्। प्रतियोगिव्यतिरिक्तप्रतियोगि-ग्राहककारणकलापस्याभावग्रहणकारणत्वेन वृद्धैरभ्युपगमात्। न चासावत्र सम्भवति सामग्रीमध्यपातिन आलोकस्यैवात्रा-सम्भवात्, सत्त्वे वा नाभावग्रह इति प्रागुक्तस्यैवात्रानुसन्धीयमानत्वादिति यत्किञ्चिदेतत्। तमोगुणेषु व्यभिचार इति तु वयम्। भवन्मते तमोगुणानामप्यालोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वादालोकाभावे व्यभिचाराच्चेत्यलमति-विस्तरेण।

तमःशब्दवाच्यतया विप्रतिपत्तिविषयतया पक्षत्वमालोकाभावशब्दवाच्यतया सम्प्रतिपत्तिविषयतया साध्ययोगित्वेन सपक्षत्वमिति न पक्षसपक्षयोरैक्यं दोषः। तमःशब्दो द्रव्यवाचको न भवति आलोकशब्दान्यत्वे सति आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यवाचित्वादालोकाभावशब्दवत्।

तमः पदेनालोकाभावविवक्षायां सिद्धसाधनं पक्षसपक्षयोरभेदापत्तिश्च स्यात्, अतिरिक्तविवक्षायां च बाध इति चेत्। मैवं वोचः। आलोकाभावतदतिरिक्तत्वसन्देहविषयस्यैव धर्मित्वेनोपादानादालोका-भावशब्दवाच्यतया सम्प्रतिपत्तिविषयस्य च सपक्षत्वेनोपादानान्नैष दोष इति परिहरति तमःशब्दवाच्यतयेति। न चात्र नीरूपत्वानीलरूपत्वादय उपाधयः। साधनव्यापकत्वात्। नीरूपत्वानीलत्वादिसाधने प्रत्यक्षबाध इति चेत्, न। रूपवत्त्वनीलत्वादेः प्रत्यक्षेणानवगमादालोकनिरपेक्षचक्षुषा रूपादिसाक्षात्काराजननात्। अन्यथा महान्धकारे कृष्णरूपानुभवप्रसङ्गादिति।

तत्र गन्धात्यन्ताभावरहिता पृथिवी।

पृथिवीं निरूपयितुमुपक्रमते तत्रेति। अव्याप्तिपरिहारायात्यन्ताभावरहितेति विशेषणम्। सलिलादावपि तदुपलब्ध्यातिव्याप्तेर्नेदं लक्षणमिति तर्कसङ्ग्रहकारा मन्यन्ते। तत्र विचक्षणपरीक्षाक्षममीक्षामहे। पृथिवीसम्बन्धादेवान्यत्र तदुपलब्ध्युपपत्तेः। नियामकाभावान्नैवमिति चेत्, न। कुसुमादिसन्निकर्षाभावे

तदनुपलब्धेरेव नियामकत्वात्। सलिलाद्यवयवासन्निकर्षे कुसुमादावपि कदाचित्तदनुपलब्धेर्वैपरीत्यमेव किं न स्यादिति चेत्, न। तदानीमपि तत्र गन्धस्योपलभ्यमानत्वात्। तर्हि तदानीमपि भूतान्तरसंसर्गस्तत्रास्तीति न पृथिवीमात्रस्य गन्धवत्त्वमिति चेत्, न। तदानीमपि तत्र भूतान्तरसंसर्गोऽस्तीत्यत्र मानाभावात्। गन्धोपलब्धिरेव प्रमाणमिति चेत्, मैवं वोचः। गन्धोपलब्धेर्भूतान्तरसम्बन्ध-निबन्धनत्वेन जातुचिन्नियमानभ्युपगमात्। अपि च यद्भूतान्तरसम्पर्कात् पृथिव्यां गन्धोपलब्धिरित्यभिधीयते, तत्र गन्धोपलब्धेर्भूतान्तरसम्पर्कमन्तरेणैव भवताभ्युपेतत्वाद् गन्धोपलब्धेर्व्यभिचारापत्तेः। तत्परिहाराय तत्रापि भूतान्तरसम्पर्केऽभिधीयमाने गन्धोपलब्धेस्तदुपाधिकत्वानुपपत्तिप्रसङ्गादेवं क्वचिदनुपरमेऽनवस्थापत्तेः। क्वचिदुपरमे च व्यभिचारापत्तेः। भूतान्तरस्य च गन्धवत्त्वे तत्प्रकृतिकेन्द्रियस्य गन्धवदिन्द्रियत्वेन घ्राणवद्गन्धग्राहकत्वप्रसङ्गाच्च। पृथिव्यां स्वाभाविकगन्धानभ्युपगमवादिनं प्रति साधनशून्यं निदर्शनमिति चेत्, न। बहिरिन्द्रियत्वेन ग्राह्यजातीयविशेषगुणवत्त्वात् तत्सिद्धेः। स्पर्शवदिन्द्रियत्वेन घ्राणस्य स्वग्राह्यविशेषगुणसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वानुमानादपि स्वाभाविकगन्धसिद्धेर्दुर्वारत्वाच्च। व्यापकानुपलब्धेश्च न भूतान्तरगुणत्वम्। वज्रादिगतवदनुद्भूतत्वादनुपलम्भ इति चेत्। न। अकठिनोद्भूतस्पर्शवद्वृत्ति-गन्धत्वेनानुद्भूतत्वानुपपत्तेः। अनभिव्यक्तत्वात् कुङ्कुमगन्धवत् पूर्वं न भासते चम्पकादिसम्भेदे तु भासत इति चेत्, न। व्यञ्जकगन्धातिरिक्तगन्धानवभासात् चन्दनगन्धीत्यौपाधिकत्वेन प्रतीतेश्च। गन्धत्वं पृथिवीगुणमात्रवृत्ति पाकजगुणमात्रवृत्तित्वात् पाकजविशेषगुणत्ववदिति पृथिवीगुणमात्रवृत्तित्वानुमानादपि नातिव्याप्तिः। पिठरपाकप्रक्रियावादिनां हेतोरसिद्धिरिति चेत्, न। तस्या एवासिद्धेः। गन्धत्वं पृथिवीतदितरगुणवृत्ति गन्धवृत्तित्वाद् गुणत्ववदिति सत्प्रतिपक्षत्वमिति चेत्, न। एतद्गन्धान्यत्वात्यन्ताभावेनानैकान्तिकत्वाद् गन्धत्वाधिकवृत्तित्वो-पाधिग्रस्तत्वाच्च। पाकजविशेषगुणत्वे साध्याव्याप्तिरिति चेत्, न। विषमव्याप्तिकत्वेन तत्त्वादिति सर्वं सुस्थम्।

करकासमवेतवाजिविषाणसमवेतजातिमती वा।

लक्षणान्तरमाह करकेति। वाजिविषाणसमवेतेति। वाजिनि विषाणे च समवेतेत्यर्थः।

सा द्विविधा नित्यानित्यभेदात्। नित्यः परमाणुरनित्या कार्यरूपा।

अनवस्थाप्रसङ्गः स्याद् यदि जन्यैव सा भवेत्।
एकस्य कस्यचिच्चेत् स्यादन्त्यस्यावयवस्य च।।
विनिवृत्तिः प्रसज्येत कार्यद्रव्यमनाश्रयम्।
इति नित्यैव सा चेत् स्यात् तर्हि स्यादप्रमाणिका।।
द्रव्यान्तरं प्रसज्येत कार्यं गन्धाश्रयं च ते।
एवं हृदि निधायैवं द्विधेति परिकीर्तितम्।।

सा द्विविधेत्यादिना।

पृथिवीत्वं नित्यवृत्ति घटपटवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति तत्सिद्धिः।

नित्यसत्त्वे मानमाह **पृथिवीत्वमिति**। पृथिवीत्वमनित्यमात्रवृत्ति पृथिवीमात्रवृत्तित्वात् पटत्ववदिति न नित्यपृथिवीसिद्धिरिति **तर्कसङ्ग्रहकारा** मन्यन्ते। तदपरे न क्षमन्ते। द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वाभावोपाधिग्रस्तत्वात्। सुमेरुसर्षपादीनां मानभेदानुपपत्तिप्रसङ्गाच्च सर्षपावयवैरेव वा जगति व्याप्ते मेर्ववयवानामनवकाशप्रसङ्गाच्च। पृथिवीत्वं नित्यानित्यवृत्ति कृत्स्नपृथिवीवृत्तित्वात् सत्तावदिति सत्प्रतिपक्षग्रस्तत्वाच्च। ब्रह्मवादिमते साध्यविकलो दृष्टान्त इति चेत् तत् किमिदानीं नित्यं सन्नास्तीत्येवाभ्युपगच्छसि। ओमिति ब्रुवतो ब्रह्मवादितापरित्यागे शून्यवादितैव पर्यवस्येत्। अस्तु तर्हि वस्तुस्वरूपमेव सत्त्वं जातित्वे मानाभावादिति चेत्, न। सत्सदित्यनुवृत्तप्रत्ययस्यैव मानत्वात् स्वरूपस्य चाननुवृत्तत्वेनानुवृत्तप्रत्ययाजनकत्वात्। जात्यादाविव सर्वत्र सत्सदिति प्रत्ययः स्वरूपनिबन्धन एवेति चेत्, न। बाधकबलेन तत्र तथा व्यवस्थापनादन्यथा सर्वजातिविलयापत्तेः। अनुमानं तु द्रव्यगुणकर्माण्येकसामान्यवन्ति सामान्यवत्त्वात् सम्मतवदिति। अनित्यसमवेतगुणकर्मणी द्रव्यनिष्ठजातिमती अनित्यसमवेतत्वाद् गोवदिति वा। यद्वा घटो घटनिष्ठजातिमत्समवायिकारणं समवायिकारणत्वाद् घटावयववत्। यद्वा घटो घटनिष्ठव्यावृत्तत्वरहितजातिमान् जातिमत्त्वात् पटवत्। यद्वा अयं घट एतन्निष्ठव्यावृत्तत्वरहितजातिमान् जातिमत्त्वात् पटवदिति **नवीनाः**। वृद्धमतेन तु घटो घटनिष्ठजातिमद्व्यावृत्तत्वरहितजातिव्यावृत्तजातिमान् जातिमत्त्वादयमेतन्निष्ठजातिमद्व्यावृत्तत्वरहितजात्यादिव्यावृत्तजातिमान् जातिमत्त्वाद् घटवदिति प्रयोक्तव्यम्।

न च पक्षासिद्धिः। घटो गगनवृत्तित्वरहितपटवृत्तिजातिमान् घटपटव्यतिरेकित्वरहितत्वात् पटवदिति पृथिवीत्वसिद्धिः।

अस्तु तर्हि पृथिवीत्वासिद्धावाश्रयासिद्धिरिति चेद् द्रव्यत्वं रसावृत्तिघटपटवृत्तिजातेरन्यज्जातित्वाद् गोत्ववदिति मानसिद्धत्वात्। प्रमाणान्तरमाह **घट इति**। घटपटव्यतिरेकित्वरहितत्वं तु घटव्यतिरिक्तत्वे सति पटव्यतिरिक्तत्वात्यन्ताभाववत्त्वमिति न दूषणावकाशः।

न च सत्तासिद्धिः गगनं द्रव्यत्वेतरजातिमद् भूतत्वाद् घटवदित्यनुमानात् सत्तासिद्धिः।

दृष्टान्तासिद्धिमाशङ्क्याह **गगनमिति**। तदेतत् प्रष्टव्यम्। विभुत्वजात्या कथं न सिद्धसाधनतेति। विभुत्वं न जातिरिति चेत्, न। गोत्वादिना तुल्यन्यायत्वात्। जातिबाधकान्नैवमिति चेत्, न। तदनभिधानात्। न च बाधकान्तरमस्ति ततः प्रागुक्तमेव मानमनुसन्धेयम्।

न च द्रव्यत्वासिद्धिः। गगनादि रूपावृत्तिजातिमद् गुणवत्त्वाद् घटवदिति द्रव्यत्वसिद्धिः।

द्रव्यत्वासिद्धावप्रसिद्धविशेषणत्वमाशङ्क्याह **गगनादीति**। अत्र च करका रूपानिष्ठघटनिष्ठजातिमती स्पर्शाधिकरणत्वात् पटवदित्यपि द्रष्टव्यम्। निर्गन्धस्पर्शवतां पक्षतुल्यत्वान्न तत्र व्यभिचारः शङ्कनीयः, उक्तनीतेरत्रापि सुलभत्वात्।

अथवैवं प्रयोक्तव्यं रूपत्वेनासमाश्रया।

असमानाधिकणेत्यर्थः।

अरूप्यसमवेतत्वरहितत्वेन सम्मता।
या जातिराश्रयस्तस्याः कुम्भ इत्यभिधीयते।
कुतः कुम्भानिलान्यत्ववैधुर्यादनिलो यथा।। इति।

अथ स नित्यस्त्रसरेणुरेव किं न स्यात्। न स्यात्, तत्र मानाभावात्। त्रसरेणुर्नित्यो महत्त्वोत्कर्षापकर्षशून्यत्वाद् गगनवदिति चेत्, न।

महत्त्वापकर्षशून्यत्वस्यैव प्रयोजकत्वे व्यभिचाराभावात्, महत्त्वापकर्षाधिकरणत्वेन सत्प्रतिपक्षत्वाच्च। वल्लभाचार्यास्तु त्रसरेणुर्भगवान् चाक्षुषद्रव्यत्वात् पटवदित्यनित्यत्वे प्रमाणमाहुः। वादीन्द्रास्तु त्रसरेणुः सावयवावयवो महत्त्वे सति चाक्षुषत्वात् पटवदित्याहुः। न चात्र महत्समवेतत्वमुपाधिः अयं घट एतदन्यमहत्समवेतत्वरहितसावयवावयवान्यः कार्यत्वात् पटवदिति सिद्धे महत्समवेतत्वरहितसावयवावयवे साध्याव्यापकत्वात्। न च महत्त्वासिद्ध्यासिद्धता शङ्कनीया अचाक्षुषद्रव्यत्वापत्तेः। स्मृतिरपि चात्र भवति।

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत् प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते।।
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो ह्यष्टौ ये परमाणवः।
परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महद्रजः।। इति वा।

अणोरणीयस्त्वप्रतिपादका**दागमादपि** परमाणुसिद्धिरवसेयेत्यलं विस्तरेण।

कार्यं त्रिविधं शरीरादिभेदेन।

कार्यत्रैविध्यमाह **कार्यमिति**। यत्त्वत्र **कल्पतरुणा** प्रजगल्भे- यत्त्वत्र **नैयायिकाः** शरीरस्य पाञ्चभौतिकत्वमसहमानाः प्राहुः। यदि देहः पञ्चभूतसमवायिकारणकः स्यात् तर्हि द्रव्यं न स्यात् तद्बहुत्ववत्। यदि च प्रत्यक्षाप्रत्यक्षसमवायिकारणकः स्यात् प्रत्यक्षो न स्याद् वायुवनस्पतिसंयोगवत्। तस्मान्न देहः पञ्चभूतसमवायिकारणकः द्रव्यत्वादाकाशवत्। नापि प्रत्यक्षाप्रत्यक्षसमवायिकारणकः प्रत्यक्षत्वात् पटवत्। तोयाद्यारब्धत्वे तोयत्वादिजातिसङ्करप्रसङ्गश्चेति। तन्न। त्र्यणुकादेरपि प्रत्यक्षत्वादिहेतोरप्रत्यक्ष-समवायिकारणत्वाभावानुमानापातात्। जातिसङ्करश्च न दूषणम्। अथान्योन्यपरिहारेण भिन्नव्यक्तिनिवेशिनोः सामान्ययोः समावेशे गोत्वाश्वत्वयोरप्यसमाविष्टत्व-निश्चयाभावप्रसङ्गादुच्छिद्येत। तदेतज्जातीयकथा। तथा चाप्तवचनावसिततुरगभावे तुरगत्वात् स गौर्नेत्याद्यनुमानपूर्वकव्यवहारविलोपप्रसङ्ग इति मन्यसे। तदप्यसत्। परस्परव्यभिचारिण्योऽपि पृथिवीत्वादिजातय एव कियत्स्वेव देहादिषु समाविशन्ति नान्यत्र नान्यांश्चेत्यभ्युपगमेन व्यवस्थोपपत्तेः। अपि चैवं वदतः प्रमाणार्थ एवं सम्पद्यते पृथिवीत्वजलत्वे नैकत्र समाविशतः परस्परव्यभिचारित्वाद् गोत्वाश्वत्ववदिति। तत्र परस्परेति पृथिवीत्वसलिलत्वविवक्षायां साधनविकलो

दृष्टान्तः। न हि गोत्वाश्वत्वे पृथिवीत्वं परिहरतः। गोत्वाश्वत्वविवक्षायामविशेषेण यत्किञ्चित्परस्परविवक्षायां च हेतोरनैकान्तिकता गुणत्वरूपत्वयोर्गोत्वाश्वत्वे-त्यजतोर्यत्किञ्चित्परस्परात्मकस्तम्भकुम्भौ परिहरतोरप्येकत्र समावेशात्।

तस्मात् प्रसिद्धिसामर्थ्याद्बाधकस्यानिरूपणात्।
पञ्चभूतमयः कायः श्रुतितोऽपि प्रमीयताम्।।

श्रूयते हि पृथिवीमय इत्यादि। अनुमानमपि देवदत्तशरीरमेतज्जनकत्वे सत्यनुदकत्वातेजस्त्वावायुत्वानाकाशत्वात्यन्ताभाववत्समवायिकारणं शरीरत्वाद् यज्ञदत्तशरीरवत्। यद्यपि यज्ञदत्तशरीरमनुदकत्वादिमत्पृथिवीसमवायिकारणकं परेषां सिद्धं तथापि देवदत्तशरीरजनकत्वे सत्यनुदकत्वादिमज्जन्यं न भवति। तस्य देवदत्तशरीरजनकत्वाभावेन तद्विशिष्टानुदकत्वादिमत्त्वरहितत्वादतो न साध्यविकलता शङ्कनीया। एतज्जनकत्वे सत्यनुदकत्वादिमत्त्वरहितजन्यत्व मेतज्जनकत्वरहितजन्यत्वाद्वा अनुदकत्वादिमत्त्वरहितजन्यत्वाद्वा। तत्राद्यो व्याघातान्नैव युज्यते। द्वितीयस्तु सिद्ध्यन् उदकत्वादिमज्जन्यमन्तर्भाव्यैव सिद्ध्यतीति पाञ्चभौतिकत्वसिद्धिरिति। तदेतद् बालविभीषिकामात्रमिति **न्यायतत्त्वविदः** प्राहुः। तथाहि यदिदं पाञ्चभौतिकत्वसाधकत्वेनोपन्यस्तं तत् तावद् देवदत्तशरीरान्यकार्यत्वोपाधिग्रस्ततया नोदयमासादयति। न च पक्षेतरत्वादनुपाधित्वमाशङ्कनीयम्। व्यावर्त्यस्य गगनादेर्विपक्षस्य सत्त्वात्। देवदत्तशरीरमेतज्जनकत्वे सति उदकत्वतेजस्त्ववायुत्वाकाशत्वात्यन्ताभाववज्जन्यं शरीरत्वाद् यज्ञदत्तशरीरवदिति विपर्ययव्याप्तत्वेन विरुद्धत्वाच्च। न चोदकत्वाद्यत्यन्ताभाववज्जन्यत्वं यज्ञदत्तशरीरस्य परेषामसिद्धमित्यसिद्धसाध्यं निदर्शनमिति नाशङ्कनीयम्। एतज्जनकत्वरहितजन्यत्वेन साध्यप्रसिद्धेः।

न जातिसङ्करो दोष इति रिक्तं वचो यतः।
गोत्वाश्वत्वसमावेशस्तदा केन निवार्यते।।
तयोरपि समावेशः स्वीकर्तुं नैव शक्यते।
तथा सति तयोरैक्यं कथङ्कारं निषिध्यते।।
व्यवहारेऽपि किं भेदो नेष्यते चिरजीविना।
तथा कथाधिकारः स्यात् कथमद्वैतवादिनः।।

तद्व्यञ्जकासमावेशात् समावेशो न चेत्तयोः।
भूत्वादेरपि तस्मात् स्यादसमाविष्टता मम।।

चित्ररूपवदेतत् स्यादिति चेत्, न। वैषम्यात्। तत्र हि अवयविनो नीरूपत्वे चाक्षुषत्वं न स्यान्नीलपीतादिनानाव्याप्यवृत्तिरूपादिमत्त्वेऽनुपलम्भविरोधः। अव्याप्यवृत्तित्वे च व्याप्यवृत्तिजातीयताविरोधः, विरुद्धजातीयैकरूपवत्त्वे सङ्करप्रसङ्गः। ततो विजातीयानां रूपाणां जनकत्वमध्यक्षसिद्धम्। अत्र त्वेकैकारभ्यविजातीयं द्रव्यं नाध्यक्षसिद्धमतो गुणविरोधाद् विजातीयानारम्भः बुद्ध्या सिद्ध एवेति गृहाण। नन्वध्यक्षाभावेऽपि पृथिवीत्वं जलोपादेयवृत्ति पृथिवीनिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वाद् द्रव्यत्ववदित्यनुमानं स्यादिति चेत्, न स्यात्। जलाणुपृथिव्यन्यतरत्वेऽनैकान्तिकत्वात्। प्रसिद्धजलोपादेयवृत्तित्वसाधने बाधादप्रसिद्धजलोपादेयवृत्तित्वसाधने चाप्रसिद्धविशेषणत्वात्। अपृथिवीवृत्तित्वेन सोपाधिकत्वाच्च। पृथिवीसमवेतं द्रव्यं न निर्गन्धसमवेतं गन्धवत्त्वात् पृथिवीमात्रारभ्यद्व्यणुकवदिति सत्प्रतिपक्षत्वाच्च। न दृष्टान्तासिद्धिः। विजातीयैरारम्भेऽपि सजातीयैरारम्भस्येष्टत्वात्। यत्तु **कैश्चिद**भिहितं पृथिवीत्वं जलोपादानवृत्ति जलावृत्तिधर्मत्वाद् वायुत्ववदिति। तत्र जलोपादानशब्देन जलमभिधीयते पृथिवी वा। प्रथमे साध्यावैशिष्ट्यं, द्वितीये व्याघात इत्युपेक्ष्यम्। अथ सङ्कीर्णत्वादजातित्वमेव किं न स्यादिति मन्यसे। तन्न, अस्ति तावत् प्रतिगन्धवतां समवायिकारणत्वम्। न चैतदुपलब्धपूर्वभावानां व्यक्तीनामेव भवितुमर्हति सति भावमात्रस्याहेतुत्वात्मकत्वात्। अन्यथा रासभादेरपि पटादिकारणतापत्तेः। अपि तु सत्येव भावः। स च कतिपयव्यक्त्युपग्रहमन्तरा न घटत इति तदुपग्राहको जातिविशेषः स्वीकर्तव्य एव, स एव च पृथिवीत्वम्। एवमप्त्वादिजातिसाधनं द्रष्टव्यमित्यास्तां विस्तरेण। योऽपि च त्र्यणुकादेः प्रत्यक्षत्वहेतुना प्रत्यक्षसमवायिकारणकत्वप्रसङ्गोऽभिहितः, सोऽपि न युक्तः। शब्दादावनैकान्तिकत्वात्। तेषामपि पक्षत्वे कालातीतताप्रसङ्गात्। तदाश्रयाणामरूपिद्रव्यतया बाह्येन्द्रियाप्रत्यक्षतयैव सिद्धेः आत्मन्यनैकान्तिकत्वाच्च। यत् पुनः परस्परशब्दार्थविकल्पनेन दूषणमभिहितं तत् तादृशप्रमाणार्थानभ्युपगमादेव निरस्तम्। कस्तर्हि भवतः प्रमाणार्थोऽभिमत इति चेच्छ्रूयतामवधानेन। भूत्वं नाप्त्वैकार्थसमवेतं तद्व्यापकत्वरहितत्वे सति तद्व्यभिचारिजातित्वाद् गोत्ववत्। जलाणुपृथिव्यन्यतरत्वे व्यभिचारो माभूदिति जातिग्रहणम्। द्रव्यत्वे व्यभिचारो

माभूदिति विशेषणोपादानम्। तद्व्यभिचारित्वं च न तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमपि तु तदत्यन्ताभाववद्वृत्तित्वमिति न साध्यावैशिष्ट्यमाशङ्कनीयम्। यद्वा पृथिवीत्वमप्त्वाधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि अप्त्वाव्याप्यजातित्वाद् गोत्ववत्। अप्त्वं वा पृथिवीत्ववन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि पृथिवीत्वाव्याप्यजातित्वाद् गोत्ववत्। व्याप्यव्यापकभावस्य भेदाधिष्ठानत्वेनाप्त्वादेरप्यप्त्वाद्यव्याप्यत्वादनैकान्तिको हेतुरिति चेत्, न। अप्त्वादिमन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्व-स्याप्त्वादिव्याप्यत्वस्याप्त्वादावपि विद्यमानत्वात्। पृथिवीत्वमव्याप्यं यस्या इत्यनेनाकारेण द्वितीयानुमाने साधनशून्यता निदर्शनगता परिहरणीयेत्यलमतिपीडया।

तस्मात् प्रसिद्धसामर्थ्याद् बाधकस्य निरूपणात्।
त्वत्प्रमाणस्य दुष्टत्वान्न देहः पाञ्चभौतिकः।।

शरीरलक्षणं दर्शयति **भोगायतनमन्त्यावयवि शरीरम्।** तत्र न तावद् भोगयतनत्वं भोगाश्रयत्वमसम्भवित्वादात्मन्यतिव्यापकत्वाच्च। नापि भोगसाधनत्वं जनकत्वं स्यादात्मादावतिव्यापकत्वात्, करणत्वस्य च मनस्यतिव्यापकत्वात्। असमवायिकारणानुरोधेन विभुकार्यविशेषगुणानां देशनियमाच्छरीरे ऽसम्भवाच्च। यदवच्छिन्नात्मनि भोगः तदायतनमिति चेत्, न। मनस्यतिव्यापकत्वादसमवायिकारणानुरोधेन विभुकार्यविशेषगुणानां देशनियमस्योदयनादिभिः स्वीकारादात्ममात्राश्रयस्य भोगस्य शरीरतदवच्छेदयोर्भोगानाश्रयत्वेन शरीरावच्छिन्नात्माश्रयत्वेनासम्भवित्वाच्च। शिरश्चरणादावतिव्यापकत्वाच्च। शिरसि मे सुखं पादे मे वेदनेत्याद्यनुभवबलेन शिरःपादावच्छिन्नेऽप्यात्मनि भवद्भिर्भोगस्वीकारात्। अत्यन्तावयवित्वे सतीति विशेषणाददोष इति चेत्, न। अत्यन्तावयवित्वस्यैव निर्वक्तुमक्यत्वात्। द्रव्यानारम्भकं कार्यद्रव्यमत्यन्तावयवीति चेत्, न। पटादाव्याप्तेः। न च पटो न द्रव्यारम्भक इति वाच्यम्। पटद्वयारब्धरज्जुद्रव्यस्याध्यक्षत एव सिद्धेः। उच्यते, ज्ञानजनकात्मसंयोगाश्रयत्वं भोगायतनत्वमत्यन्तावयवित्व-विशेषणोपादानान्नात्मादावतिव्याप्तिः। तथाप्यात्मसंयोग्ययं घटादिरिति विशिष्टज्ञानजनकविशेषणीभूतात्मसंयोगाश्रयेऽन्त्यावयविनि घटादावतिव्याप्तिस्तदवस्थैवेति चेत्, मैवम्। आत्मसंयोगविषयत्वरहितज्ञानस्यैव ज्ञानपदेनोपादानात्। द्रव्याजनककार्यद्रव्यत्वं चान्त्यावयवित्वम्। न च पटादावव्याप्तिः घटपटव्यतिरेकित्वरहितत्वेन घटवत् तत्र तत्प्रतिषेधात्। न च

घटपटव्यतिरेकित्वरहितत्वेन पटवद् घटेऽपि द्रव्यजनकत्वं साधयितुं शक्यम्। जनितद्रव्यस्य योग्यत्वे योग्यानुपलम्भविरोधः। न चायोग्यं तत्। प्रत्यक्षसमवायिकारणकद्रव्यत्वेन तत्प्रतिषेधात्। न चैवंसाधनेऽनुभवविरोधः, परस्परसंयोगित्वातिरिक्तानवभासनादिति सर्वं सुस्थम्।

त्वचः समस्तावयवैः संयोगी मूर्त्त उच्यते।
त्वचा संयुक्तदेशेन विकलः करणाद् बहिः।।

व्याप्त्या त्वगिन्द्रियसंयोगाश्रय इत्यर्थः।

एतद्वा कायलक्ष्मेति वादिवागीश्वरो जगौ।

तद् द्विविधं योनिजमयोनिजं चेति। शेषे प्रमाणं नास्तीति चेत्, न। अहं मदीययोनिजान्यपार्थिवशरीरवान् संसारित्वाच्चैत्रवत्। यद्वा पृथिवीत्वमयोनिजशरीरवृत्ति द्रवत्वसमानाधिकरणद्रव्यत्वावान्तर-जातित्वादप्त्ववदिति। श्रुतिरपि चात्र भवति 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' भूतस्य जातः पतिरेक आसीदित्यादिका।' स्मर्यते च, अयोनिजशरीराणि भवन्त्यद्भुतकर्मणामिति।

शरीरसंयुक्तमपरोक्षप्रतीतिसाधनमतीन्द्रियमिन्द्रियम्। ज्ञानकरणजन्यत्वरहितज्ञानत्वमपरोक्षत्वम्।

इन्द्रियलक्षणं साक्षात् प्रतीतिकरणमित्येव, नाधिकं व्यावर्त्याभावाद् द्वितयमेव प्रतीतिकरणं लिङ्गमिन्द्रियं च। लिङ्गं च साक्षात्पदे निरस्तमिति। वादीशस्तु साधनशब्दस्य कारणवाचित्वमभ्युपगम्य निर्विकल्पकजनकशरीरसंयोगाधिकरणत्वे सति योगजधर्माजन्यजन्यसाक्षात्काराविषयत्वे सति शरीरत्वानधिकरणमिन्द्रियमिति यथाश्रुतमेवैतद्व्याचक्षते। तत्रेतरेतराश्रयत्वं परिहर्तुमतीन्द्रियत्वलक्षणमाह

अतीन्द्रियत्वं नामाज्ञानसाधनत्वम्।

योगजधर्माद्यजन्यजन्यसाक्षात्कारा-विषयत्वमिति वा द्रष्टव्यम्।

प्रतीयमानतया भोगसाधनं विषयः। इति पृथिवीप्रकरणम्। पर्यवसिता पृथिवी।।

पृथिवीवृत्तित्वरहिताहिमकरकावृत्तिजातिमज्जलम्। तन्नित्यानित्यभेदाद् द्विविधम्। जलत्वं नित्यवृत्ति

हिमकरकावृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति तत्सिद्धिः। करकागगनवृत्तित्वरहितहिमवृत्तिजातिमती स्नेहाधिकरणत्वाद्धिमवदिति करकायां तत्सिद्धिः। अनित्यं त्रिविधं शरीरादिभेदेन। शरीरं वरुणलोके। जलपरमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः इन्द्रियारम्भकत्वात् पार्थिवपरमाणुवत्। इन्द्रियारम्भकत्वं तु रसनस्याप्यत्वात् सिद्धम्। रसनमाप्यं रूपादिषु पञ्चसु मध्ये रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् सक्तुरसाभिव्यञ्जकसलिलवदिति। रसनसिद्धिस्तु रसोपलब्धिः करणसाध्या अपरोक्षप्रतीतित्वाद् रूपोपलब्धिवदिति। विषयस्तु सरित्समुद्रादिर्हिमकरकादिः। न च करकायाः काठिन्यात् पार्थिवत्वमाशङ्कनीयम्। अनन्तरमेव स्वभावापगमादिति। इत्यप्प्रकरणम्।

आपो निगदव्याख्याताः।

रसात्यन्ताभावसमानाधिकरणरूपाधिकरणं तेजः। करकावृत्तित्वरहितविद्युदाकरजवृत्तिजातिमद्वा। विद्युत्तेजः करकावृत्तित्वरहिताकरजवृत्तिजातिमती वा विद्युद्व्यतिरिक्ताकर-जान्यत्वरहितत्वादाकरजवत्। आकरजं सुवर्णादि। ननु सुवर्णादिकं पार्थिवं नैमित्तिकद्रवत्वाधिकरणत्वा'द् घृतवत्। अनेन पार्थिवत्वसिद्धावाकरजवृत्तिजातिमत्त्वसाधनेऽपि विद्युत्तेजसो न तैजसत्वसिद्धिरिति चेत्, न। सुवर्णादिकमपार्थिवमत्यन्ताग्नि-संयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वादिति प्रत्यनुमानेनापार्थिवत्वसिद्धौ असांसिद्धिकद्रवत्वेन तत्सिद्धिः। अन्यथा पार्थिवत्वे द्रवत्वमत्यन्ताग्निसंयोगे उच्छिद्येतेति तर्कोऽनुसरणीयः। तच्च द्विविधं नित्यमनित्यं चेति। तेजस्त्वं नित्यवृत्ति विद्युदाकरजवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति नित्यत्वसिद्धिः। साधितं तेजस्त्वम्। अनित्यं त्रिविधं शरीरादिभेदेन। शरीरमादित्यलोके तस्यापि पूर्ववत् सिद्धिः। इन्द्रियं रूपोपलम्भकं

चक्षुः। रूपोपलब्धिः करणसाध्या क्रियात्वाच्छिदिक्रियावदिति तत्सिद्धिः। कर्तृप्रेर्यं करणम्। धातुवाच्या क्रिया। चक्षुस्तैजसं रूपादिषु पञ्चसु मध्ये रूपस्यैवाभिव्यञ्जकत्वादालोकवत्। विषयस्तु भौमादिः। इति तेजःप्रकरणम्।

विद्युदिति। आकरजान्यत्वरहितत्वाभावेऽपि विद्युद्व्यतिरिक्तत्वरहितत्वेन पक्षधर्मत्वं विद्युद्व्यतिरिक्तत्वरहितत्वाभावेऽप्याकरजान्यत्वरहितत्वेन सपक्षसत्त्वं च बोद्धव्यम्। इति तेजः।

रूपात्यन्ताभावाधिकरणस्पर्शाधिकरणो[९] वायुः। विप्रतिपन्नः स्पर्शो रूपरहितद्रव्यवृत्तिः स्पर्शत्वरहितशब्दान्यत्वरहितत्वाच्छब्दवदिति वायुसिद्धिः। स च द्विविधो नित्यानित्यभेदेन।

विप्रतिपन्न इति। अनुष्णाशीतापाकज इत्यर्थः। स्पर्शत्वाधिकरणत्वेन पक्षधर्मत्वम्। शब्दान्यत्वरहितत्वेन सपक्षसत्त्वम्।

वायुत्वं नित्यवृत्ति नित्यवृत्तित्वरहितवायुत्वान्यत्वरहितत्वात् पृथिवीत्ववदिति तत्सिद्धिः। कार्यं त्रिविधं शरीरादिभेदेन।

वायुपरमाणुं साधयति वायुत्वमिति। यद्यपि नित्यवृत्तित्वरहि[ि]तत्वं सन्दिग्धं तथापि वायुत्वान्यत्वरहितत्वनिश्चयेन विशिष्टस्य पक्षधर्मत्वमुपपद्यते।

वायुत्वं शरीरवृत्ति उत्पाद्ये[ऽ]न्द्रियवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति तत्सिद्धिः। स्पर्शोपलम्भकमिन्द्रियं वायवीयं रूपादिषु पञ्चसु मध्ये स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वाद् व्यजनपवनवदिति। विषयस्तु उपलभ्यमानस्पर्शाधिष्ठानभूतः प्राणस्तु शरीरादिप्रेरण[ं]हेतुर्वायुः। इति वायुप्रकरणम्।

शरीरसाधने मनस्त्वे व्यभिचारो माभूदित्युत्पाद्यपदम्। कथमस्य पृथिवीव्यतिरेक इति चेत् तत्र रूपासमानाधिकरणतया प्रतीयमानस्पर्शः क्वचिदाश्रितो गुणत्वाद् रूपवदिति भाष्यकाराः। पृथिव्याश्रित एव किं न स्यादिति चेत्, न। रूपासमानाधिकरणेत्युक्तत्वात्। ननु किमत्रानुपलम्भमात्रेण रूपासामानाधिकरण्यं योग्यानुपलम्भेन वा। न प्रथमः। शीतो वायुरुष्णो वायुरिति प्रतीयमानयोरुष्ण-

शीतस्पर्शयोरपि रूपासमानाधिकरणत्वेन वायवीयत्वापत्तेः। सलिलतेजोगतरूपयोरनुद्भूतत्वे नायोग्यत्वादग्रहणमिति चेत्, न। अनुष्णाशीतस्पर्शाश्रयगतरूपस्याप्यनुद्भूतत्वेनाग्रहणस्य समानत्वादिति चेत्, उच्यते। त्वगिन्द्रियमपार्थिवं गन्धाग्राहकेन्द्रियत्वाच्चक्षुर्वत्। नाप्यं रसाग्राहकेन्द्रियत्वात्। न तैजसं रूपाग्राहकेन्द्रियत्वात्। न नाभसं शब्दाग्राहकेन्द्रियत्वात्। मनसोऽपि व्यतिरिच्यते बहिरिन्द्रियत्वात्। तच्च ग्राह्यजातीयविशेषगुणवद् बहिरिन्द्रियत्वात्। हन्त तर्हि शीतोष्णस्पर्शयोरपि तदधिकरणत्वमायातमिति चेत्, न। रूपरसाग्राहकेन्द्रियत्वेन तस्य निरस्तत्वादुभयाधिकरणत्वे सङ्करप्रसङ्गाच्च। एतेन स्पर्शस्य रूपासमानाधिकरणत्वं व्याख्यातम्। न चानुद्भूतत्वादग्रहः पार्थिवरूपस्पर्शयोः तुल्ययोगक्षेमत्वाच्छीतोष्णस्पर्शाश्रयगतरूपयोरनुद्भूतत्वे नाप्यग्रहोपपत्तेः। एतेनैतत् प्रत्युक्तम्। अयं स्पर्शोऽनुद्भूतरूपपृथिव्याश्रित उद्भूतरूपासमानाधिकरणानुष्णाशीतस्पर्शत्वाद् घ्राणस्पर्शवदिति। उद्भूतस्पर्शत्वाभावेन सोपाधिकत्वाच्चेति। किञ्च रूपासमानाधिकरणोऽयं स्पर्शो न पृथिवीस्पर्शः शीतस्पर्शसाक्षात्काराजनकत्वादात्मवदिति प्रमाणसद्भावाच्च। न चात्रानुष्णाशीतस्पर्शत्वाभाव उपाधिः घटस्पर्शे एतदन्यपृथिवीसमवेतत्वरहितानुष्णाशीतस्पर्शान्यः स्पर्शत्वादन्यस्पर्शवदिति सिद्धे पृथिवीसमवेतत्वरहितानुष्णाशीतस्पर्शे साध्याव्यापकत्वादित्यास्तां विस्तरेण।

शब्दात्यन्ताभावानधिकरणं नभः। संयोगजन्यजन्यविशेषगुणसमानाधिकरणविशेषाधिकरणं वा।[१०] शब्दः क्वचिदाश्रितः गुणत्वाद्रूपवत्। न च शब्दस्य[११] स्पर्शवदाश्रयः स्पर्शासहकारित्वाद् बुद्धिवदिति। न च कालाद्याश्रयः बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वाद् रूपवदिति परिशेषात्तत्सिद्धिः। इत्याकाशप्रकरणम्।

परिशेषतस्तत्सिद्धिमुपक्रमते शब्द इत्यादिना। गुणत्वमसिद्धमिति चेत्, न। शब्दो गुणः सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्याचाक्षुषप्रत्यक्षत्वाद् गन्धवदिति वल्लभाचार्याः। तदेतत् स्पार्शनप्रत्यक्षे घटे कर्मणि चानैकान्तिकम्। अथाचाक्षुषपदेन चाक्षुषत्वानाधारत्वं विवक्षितम्। तथा च सामान्यवत्त्वे

सत्यस्मदादिवाह्यप्रत्यक्षत्वे सति चाक्षुषत्वानाधारत्वं हेतुरिति चेत्, न। तथापि तिमिरोत्पन्नकर्मव्यक्तौ व्यभिचारस्य दुर्वारत्वात्। अथाचाक्षुषपदेन चाक्षुषवृत्तिजात्यनाधारत्वं विवक्षितम्। तथा च सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिचाक्षुषवृत्तिजात्यनाधारत्वे सति बाह्यप्रत्यक्षत्वं हेतुरिति चेत्, न। अस्य प्रत्यक्षासमवेतनिरवयवेन्द्रियमात्रवेद्यान्यत्वोपाधिग्रस्तत्वादिति। तदप्यसत्।

अनुकूलेन तर्केण सनाथे सति साधने।
साध्यव्यापकताभङ्गात् पक्षे नोपाधिसम्भवः।।

तर्कश्चानुपदमाचार्यैरेव दर्शितः। यदि निरवयवद्रव्यं स्यादस्मत्प्रत्यक्षो न स्यादिति। न च पक्षधर्मत्वासिद्धिः, सत्त्वगुणत्वातिरिक्तत्वेन जातेर्विशेषणात्। यदि वा सामान्यवत्त्वे सत्यचाक्षुषत्वे सत्यस्मदादिबाह्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वं हेतुरिति न किञ्चिदनुपपन्नम्। यद्वा अयं परमाणुः स्वातिरिक्तस्पर्शवत्त्वरहित-ज्ञानानाश्रयविशेषगुणवदन्यो मेयत्वात्। अयं वायुरेतदितर वायुत्वानधिकरणनीरूपबाह्येन्द्रियप्रत्यक्षगुणवदन्यो मेयत्वाद् घटवदित्याकाशसिद्धिरिति नवीनाः। स च नित्यो विभुश्च। मानाभावादसिद्धमेतदिति चेत्, मैवम्। अद्रव्यद्रव्यत्वानवयवद्रव्यत्वयोः सत्त्वात्। आत्मोपादान-कत्वादुभयमप्यसिद्धमिति चेत्, न। अस्यैवासिद्धेः, उत्पत्तिश्रुतिबोधितत्वात् तत्सिद्धिरिति चेत्, न। तस्या मानान्तरविरोधेन स्वार्थे प्रामाण्यानभ्युपगमात्। अन्यथा आदित्यो यूप इत्यादीनामपि स्वार्थे प्रामाण्यप्रसङ्गाद् वायुश्चान्तरीक्षं चैतदमृतमिति प्रतिश्रुतिबाधितत्वाच्च। गगनादिकमनित्यमात्मान्यत्वे सति विभक्तत्वादित्यनुमानमनित्यत्वे प्रमाणमिति चेत्, मैवम्। व्यर्थविशेषणत्वात्। व्यभिचारपरिहारार्थत्वान्नैवमिति चेत्, न। व्यभिचारस्यैवासिद्धेः। आत्मनो नित्यत्वेऽपि विभागित्वाद् व्यभिचारः सिद्ध इति चेत्, न। नित्यत्वविभागित्व-योरात्मन्यनभ्युपगमादभ्युपगमे वा तयोरात्मनि प्रमाणसिद्धत्वे द्वैतापत्तेः। न हि स्वत एव कस्यचिद्विभागः सम्भवति, नियतसावधितयैव तस्य प्रतीयमानत्वात्। नित्यत्वविभागित्वे ब्रह्मणि भ्रान्तिसिद्धेरिति चेत्, न। भ्रान्तिः साधिका चेति व्याघातादात्मान्यत्वस्यैव वा प्रयोजकत्वे विशेष्यवैयर्थ्याच्च। आत्मनोऽप्यात्मान्यत्वस्य त्वयाभ्युपेतत्वाद् विभक्तत्वमुपादेयमेवेति चेत्, न। विशिष्टस्यापि मयाभ्युपेतत्वात्। आत्मत्वानधिकरणत्वमात्मान्यत्वमिति नैष दोप इति चेत्, न। तव व्यभिचारात्। आत्मन्यात्मत्वस्य त्वयानभ्युपगमादभ्युपगमे

वा द्वैतापत्तेः। आत्मत्वानधिकरणत्वस्यैव वा प्रयोजकत्वे विशेष्यवैयर्थ्यतादवस्थ्याच्च। अस्तु तर्हि आत्मत्वानधिकरणत्वमेव हेतुरिति चेत्, न। अविद्यास्तमये व्यभिचारात्। सोऽनित्य इति चेत्, न। मुक्तानामपि पुनः संसारित्वापत्तेः। नित्यत्वेऽप्यात्मनो नातिरिक्त इति चेत्, मैवम्। अनतिरेके आत्मनस्तुच्छत्वप्रसङ्गात्। तस्य यावदात्मभावितया संसारोच्छेदप्रसङ्गाच्च। न ह्यविद्यास्तमये सत्यविद्या सम्भवति। अत्ययस्य प्रतियोग्यसमानकालीनत्वेन व्याघातात्। न चाविद्यायामसत्यां तन्निबन्धनः संसारो घटतेऽकारणककार्यप्रसङ्गात्। अपि चास्तमयशब्देन कोऽभावोऽभिधीयते। न तावदविद्यात्यन्ताभावः, तस्याविद्यासमानकालीनत्वेन संसारदशायामपि मुक्तिप्रसङ्गात्। कथमविद्यासमानकालीनत्वमिति चेदविद्याया जीवब्रह्मणोरन्यतराश्रितत्वाभ्युपगमे घटादावविद्यात्यन्ताभावस्य सुवचत्वादित्यवेहि। नान्योन्याभावः, अत एव सत्यामप्यविद्यायामविद्यान्योन्याभावस्य सत्त्वात्। नापि प्रागभावः, त्वयानभ्युपगमात्। सर्वथा संसारोच्छेदप्रसङ्गाच्च। अविद्यासम्बन्धाद्धि संसारः। स च न शक्योऽभिधातुं प्रागेव मुक्तत्वादिति। तस्मादविद्याध्वंस एवाविद्यास्तमयशब्दार्थ इति वक्तव्यम्। ध्वंसश्च पूर्वकालासम्बन्धित्वे सत्युत्तरकालसम्बन्ध्यभाव इति स्थिते कथन्तरां चात्मानतिरेकः कथन्तरां च न व्यभिचार इति परिभावनीयम्। तर्हि तन्निवृत्त्यर्थं.... [१२] मेवेति चेत्, मैवं वोचः। विभागित्वस्यैव विविच्य वक्तव्यत्वात्। न तावद्विभागाधिकरणत्वं भागासिद्धताप्रसङ्गात् सलिलपरमाणुरूपादीनां पक्षकुक्षौ निक्षिप्तत्वात्। अथ विभक्तत्वं विकारित्वमिति यत् **कल्पतरुणा** व्याख्यातं तदेवास्माभिरप्यभ्युपेयत इति मन्यसे, तदपि न। तच्चेत् कार्यत्वमाश्रयासिद्धिप्रसङ्गात्। अन्यत्तु विविच्य वक्तुं न शक्यत इति यत्किञ्चिदेतत्। यदि भिन्नत्वं विभक्तत्वमभिधीयते तदा सैवाविद्यास्तमय एव व्यभिचारितेत्यलमतिप्रपञ्चेन। तथापि ब्रह्मैव निदानं कस्मान्न स्याद् विपक्षे बाधकाभावादिति चेत्, मैवं वोचः। विकल्पानुपपत्तेः। तन्मूर्तममूर्तं वा आद्यश्चेदपसिद्धान्तः। द्वितीयस्तु कथं द्रव्योपादानतायामुपपद्यते। न हि द्रव्योपादानममूर्तं चेति सम्भवति। द्रव्योपादानता वा कथं द्वितीय उपपद्यते, न ह्यमूर्तं द्रव्योपादानं चेति सम्भवति व्याघातात्। तस्मादन्यतरदभ्युपगच्छतावश्य-मन्यतरदवहेयमेव। तत्र द्रव्योपादानत्वं वाभ्युपगम्येतामूर्तं वा नोभयमप्यभ्युपगन्तुमुचितमपसिद्धान्तप्रसङ्गात्। तस्माद् द्रव्योपादानता हि मूर्त्ततया व्याप्ता, सा चातो निवर्तमाना द्रव्योपादानतामादायैव निवर्तत इति प्रतिबन्धसिद्धिः। विजातीयारम्भप्रतिषेधाच्च सावयवत्वप्रसङ्गाच्च।

न हि महद् द्रव्योपादानं निरवयवं चेति सम्भवति व्याघातादित्यास्तां विस्तरेण। तर्कसङ्ग्रहकारास्तु नभसोऽनिर्वचनीयतामेवमाचक्षते नाकाशत्वजातिमत्त्वमाकाशस्य लक्षणमनङ्गीकारात् नापि शब्दाधिकरणत्वम्।

धर्म्यसिद्धौ[13] कुतो धर्मस्तत्सिद्धौ स वृथा कथम्।
असिद्धेरन्यतः सिद्धेरुत्पत्त्यादेश्च सम्भवात्।।

सिद्धे हि देवदत्तादौ धर्मिणि विद्वत्त्वादिस्तद्धर्मो व्यपदिश्यते। तथा प्रकृतेऽपि सिद्धे ह्याकाशस्वरूपे शब्दस्तस्य धर्मो वक्तव्यः। तद्रूपस्यान्यतरसिद्धौ[14] च व्यर्थो धर्मोपन्यासः। न चान्यत् तत्साधकमस्ति। गुणत्वेन शब्दस्य क्वचिदाश्रितत्वसिद्धौ तत्सिद्धिरिति चेत्, न। तस्याकाशत्वे नियमाभावात्। शब्दस्य स्वातन्त्र्ये क्वचिदाश्रितत्वव्याघातो हेत्वासिद्धिश्च। पारतन्त्र्येऽपि परस्याकाशादेरर्थान्तरत्वे प्रकृतलक्षणातिव्यापकत्वमाकाशत्वे व्यक्तं परस्पराश्रयत्वं, न च गुणत्वं शब्दस्येति वक्ष्यते। शब्दवतश्च शब्दवत्त्वे स्वाश्रयं तद्रहितस्य शब्दवत्त्वे विरुद्धत्वमिति यत्किञ्चिदेतदिति। तदेतत् प्रागुक्तरीत्यैव व्याख्यातम्।

अपि चास्ति तावदबाधितः शब्दानुभव इति नासावपलापमर्हति। न चासावनाश्रितः स्वसत्तां लभत इत्याश्रयेणापि भवितव्यम्। न च गुणत्वात् स्वातन्त्र्यमर्हति। न चात्रैव विप्रतिपत्तिरिति वक्तुं युक्तमभिहितत्वात्। प्रस्तावेऽभिधीयमानत्वाच्चेति, कुतो धर्म्यसिद्धौ धर्मासिद्धिरित्यन्वेषणीयम्। नाप्यन्यतो धर्मिसिद्धौ धर्मसिद्धेः प्रयोजनशून्यता शङ्कनीया। धर्मिसिद्धिवत्तत्सिद्धेरपि प्रयोजनवत्त्वावगमात्। नो चेद्धर्मिसिद्धावप्येष पर्यनुयोगो दुर्वारः। नापि धर्मिसिद्धिरेव धर्मसिद्धिप्रयोजनं स्वस्यान्यतो व्यावृत्तेरपि प्रयोजनवत्त्वेनावगमात्। न ह्यनवगतप्रतियोग्यनुयोगिनो व्यावृत्तिबुद्धिर्भवत्यतिप्रसङ्गात्। अन्यतस्तु तदसिद्धिः, सिद्धौ वा अन्यतोऽपि तत्सिद्धेरुक्तत्वात्। उत्पत्त्याद्यसिद्धिस्तु प्रागेवाभ्यधायि। शब्दवतश्च शब्दाश्रयत्वमित्याद्यविद्यासम्बन्धवत्यविद्यासम्बन्धस्ततोऽन्यस्मिन् वेत्यनेन समानमित्यास्तां विस्तरेण। इत्याकाशसिद्धिः।

अनियतपरत्वासमवायिसमवायित्वरहितपरत्वासमवायिसमवायि-मूर्तत्वरहितः कालः।

कालं निरूपयितुमुपक्रमते अनियतेति। रूपादावतिव्याप्तिपरिहारार्थमसम-वायिसमवायीत्युक्तम्। आत्मादावतिव्याप्तिपरिहारार्थं परत्वेत्युक्तम्। दिशि व्यभिचारो

माभूदित्यनियतेत्युक्तम्। अनियतपरत्वासमवायिसमवायित्वरहितः काल इत्युक्ते आत्मादावतिव्याप्तिस्तत्परिहारार्थं परत्वासमवायिसमवायीत्युक्तम्। तथापि पिण्डे ऽतिव्याप्तिर्माभूदिति मूर्त्तत्वरहित इत्युक्तम्।

गगनमनियतपरत्वासमवायिसमवायित्वरहितमूर्तत्वरहित-ज्ञानसमवायित्वरहितद्रव्यान्यदमूर्तत्वादात्मवदिति तत्सिद्धिः। इति कालप्रकरणम्।

तत्सत्त्वे प्रमाणमाह गगनमिति। आत्मान्यत्वेन सिद्धसाधनता माभूदिति ज्ञानेत्याद्युक्तम्। मनोऽन्यत्वेन सिद्धसाधनता माभूदिति मूर्त्तत्वरहितेत्युक्तम्। दिगन्यत्वेन च सिद्धसाधनता माभूदित्यनियतपरत्वा[15]समवायिसमवायित्वरहितत्वे सतीत्युक्तम्। गगनान्यत्वेन दृष्टान्ते साध्यसिद्धिः। तर्कसङ्ग्रहकारास्त्वेवमाचक्षते।

परत्वादिधियां भाषादन्यत्रापि न तद्गतिः।
विशेषणस्य चायोगान्न युक्ता कालकल्पना।।

परत्वापरत्वप्रत्ययनिमित्तं काल इत्ययुक्तम्। दिशि व्यभिचारात्। तत्कृतपरत्वादिव्यतिरिक्तपरत्वादिप्रत्ययनिमित्तत्वस्य विवक्षितत्वान्नैवमिति चेत्, न। धर्मादौ व्यभिचारात्। द्रव्यत्वे सतीति चेत्, न। ईश्वरे व्यभिचारात्। निमित्तासाधारण्यस्य विवक्षितत्वान्नैवमिति चेत्, न। यदि तत्रैव तस्य तथात्वं सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तत्वाभ्युपगमविरोधः। तस्यैव तत्र निमित्तत्वे चादृष्टादेस्तन्निमित्तत्वाभ्युपगमविरोध इति। तदेतत् समयमर्यादानभिज्ञस्य भाषितमिति वृद्धाः। तथाहि नियतपरत्वापरत्वप्रत्ययासाधारणनिमित्तत्वस्य काललक्षणत्वात्। न चैवमदृष्टादिषु व्यभिचारः। असाधारण्येनैव निरासात्। अत्रासाधारणनिमित्तत्वे ऽन्यत्र च साधारणनिमित्तत्वे न सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तत्वाभ्युपगमविरोधः। असाधारण्यं च तज्जनकतरणिपरिस्पन्दोपनायकत्वम्। न चैतदन्यत्र सम्भवति पृथिव्यादेस्तरणिपिण्डाभ्यामसंसर्गादेव निरासाद् विशेषगुणवत्त्वेन चाकाशादीनां निरासात्। न चाव्यापकत्वमुपाधिः, तर्कानुगृहीतत्वात्। यदि च गगनमात्मा वान्यधर्मेणान्यमवच्छिन्द्यात् काश्मीरवर्तिना कुङ्कुमरागेण कर्णाटचक्रवर्त्तिललनाकरकमलप्यवच्छिन्द्यात्। न चायं काले पर्यनुयोगः, तस्यासिद्धावाश्रयासिद्धेः। सिद्धौ वा नियतपरधर्मोपसङ्क्रामकत्वेनैव सिद्धेर्धर्मिग्राहकप्रमाणबाधः। दिगेवास्त्विति चेत्, न। तस्यासिद्धेः, सिद्धौ वा

तदहेतुत्वेनैव सिद्धे धर्मिग्राहकप्रमाणबाध इत्यस्त्वेतत्। एतेन यौगपद्यादिप्रत्ययनिमित्तता व्याख्याता। यदप्यत्र तर्कसङ्ग्रहकारैरभिहितम्।

यौगपद्यादिबुद्धीनां न च कालनिमित्तता।
पर्यायत्वादिदोषाच्च तत्क्लृप्तिरनिबन्धना।।

यौगपद्यादिप्रत्ययानामन्यतमं निमित्तं काल इत्यपि उक्तयुक्तेरत्रापि समानत्वात्। किं चैतेषामेकार्थत्वमनेकार्थत्वं वा। नाद्यः, लक्षणभेदायोगाद् व्यवहारविरोधाच्च। न द्वितीयः, लक्षणानां प्रत्येकमव्याप्तेः। एतेषां च कालातिरिक्तार्थत्वे तल्लक्षणत्वायोगात् कालार्थत्वे च पर्यायत्वापातात्। तद्भेदार्थत्वे च तन्मात्रलक्षणस्य वक्तव्यत्वादिति। तदपि न, अदृष्टादिव्यभिचारस्यासाधारणपदेनैव निरस्तत्वादसाधारणस्य च निरूपितत्वाद् विकल्पेषु चानेकार्थत्वाभ्युपगमात्। न च प्रत्येकमव्याप्तिः, यौगपद्यादिनिमित्तत्वेनैकस्यैवाभ्युपगमात्। एतेषां चेत्यादि तु विकल्पग्रासादयुक्तम्। किमिदं कालातिरिक्तार्थत्वं कालातिरिक्ताभिधेयत्वं वा कालातिरिक्तलक्षणत्वं वा कालातिरिक्तस्यैव लक्षणत्वं वा। नाद्यौ। कालातिरिक्ताभिधेयस्य कालातिरिक्तस्यापि लक्षणस्य द्रव्यत्वादेः काललक्षणत्वेन वृद्धैरभ्युपगमात्। न तृतीयः, काललक्षणत्वस्वीकारात्। न च कालार्थत्वे पर्यायत्वं सोपाधिसमयालम्बनत्वस्वीकारात्। वादीन्द्रास्त्वेवमाहुः। कालार्थत्वं त्वनाशङ्कनीयमेव गुणत्वेनैवैषामभ्युपगमात् परत्वापरत्ववत्। तथाहि गुणशून्यत्वादद्रव्यत्वमेषां प्रसिद्धम्। नापि कर्माणि संयोगविभागाजनकत्वात्। न सामान्यविशेषसमवायाः कार्यत्वात् सत्तया तुल्यव्यक्तिकतापत्तेश्च। नाभावः परत्वादिवद्भावतया भासनात्। यौगपद्यमेककालता अयौगपद्यं भिन्नकालता चिरत्वं बहुकालता क्षिप्रत्वमल्पकालतेति कालविशेषा एव यौगपद्यादय इति चेत्, न। कालात्मत्वे भेदानुपपत्तेः। घटाद्युपाधिनिबन्धनाकाशभेदवत् सूर्यगत्युपाधिनिबन्धनो भेद इति चेत्, न। सूर्यगतीनां सूर्यनिष्ठत्वाद् यौगपद्यादीनां च देवदत्तादिनिष्ठत्वात् परत्वापरत्ववत्। अन्यथा व्यवहितसूर्यगत्यवच्छिन्नत्वं परत्वमिति परत्वापरत्वयोरप्युच्छेदापत्तेः। परत्वादिविशिष्टदेवदत्तादिप्रत्ययपूर्वक्षणेऽननुसंहिताः देवदत्तादिसंयोगसमवायरहिताश्च सूर्यगतयः कथं देवदत्तादिविषया इति चेत्, तुल्यं यौगपद्यादिविशिष्टप्रत्ययेष्वपि। नीलो देवदत्त इत्यत्र नीलत्वमिव सूर्यगतयोऽपि देवदत्तादीन् विशिंषन्तीति चेत्, न। नीलत्वस्य नीलगुणविशेषणत्वान्नीलस्य च द्रव्यविशेषणत्वात्। कथं तर्हि देवदत्तो नील इति चेत् नीले नीलिमसमारोपादिति

ब्रूमः। न चैवं प्रकृतेऽपि यौगपद्यादिप्रत्यायानां बाधाभावेनाभ्रान्तित्वात् अन्यथा परत्वापरत्वप्रत्ययेऽपि भ्रान्तित्वापत्तेः। यौगपद्यादिप्रत्ययपूर्वक्षणे सूर्यगतयोऽनुसन्धीयन्त इति चेत्, न। गृहमध्यवर्तिनामिन्द्रियसन्निकर्षाभावेन प्रत्यक्षानुदयात्। लिङ्गाभावान्नानुमा। नापि स्मृतिः, पूर्वानुभवकारणाभावादन्यथा परत्वापरत्वयोरप्युच्छेदापत्तेः। तस्माद्यौगपद्यादयो गुणाः द्रव्यकर्मसामान्यविशेषसमवायान्यभावत्वाद् द्रव्यत्वकर्मत्वानधिकरणत्वे सति कार्यभावत्वाद् रसवत्। न चैवं चतुर्विंशतित्वव्याघातोऽपरत्वे ऽन्तर्भावात्। न परत्वमपरत्वमिति पर्युदासात्। तेन च परत्वसदृशानामेव ग्रहणात्। किं सादृश्यं कालपिण्डसंयोगाद्यसमवायिकारणजन्यत्वमिति चेद् मूकीभव। यद्येकः कालः कथं तर्हि यौगपद्यादिना कालनानात्वमिति चेद् यौगपद्यादिकार्यभेदजनकतयोपचारादिति गृहाण। आह च भगवान् सूत्रकारः कार्यविशेषेण नानात्वमिति। त एते परत्वादयः कालमनुमापयन्तीति भाष्यकाराः। तर्कसङ्ग्रहकारास्तु

विकल्पनामयुक्तत्वादयुक्तत्वाद्विशेषणम्।
यतो न कल्प्यं कल्पेत कथमस्यानुमेयता।।

न तावत् समवायित्वेनानुमापकत्वम्, अनात्मत्वात्। नासमवायित्वेन तस्य द्रव्यत्वात्। निमित्तत्वपक्षेऽपि न विषयतया नित्यानुमेयत्वेनैन्द्रियकव्यवसायविषयत्वायोगात्। नाप्यविषयतया अदृष्टातिरिक्तकालासिद्धिप्रसङ्गादित्याहुः। तदेतदपरिशीलिततर्कवृत्तान्तभाषितमिति वृद्धाः। स्वासमवायिसमवायिद्वारा कालानुमापकत्वस्य तैरिष्टत्वात्। तथा च वार्त्तिकम् परत्वादयोऽसमवायिकारणजन्या भावकार्यत्वाद् घटवत्। रूपादीनां च व्यभिचारात् संयोगासमवायिकारणका इति ज्ञायते पृथिव्यादिसंयोगस्यानुपपन्नत्वादिति परिशेषतः कालसिद्धिरिति। विस्तरस्त्वन्यत्रेत्युपरम्यते। इति कालः।

अनियतपरत्वासमवायिसमवायिनी मूर्तत्वरहिता दिक्।

दिशं लक्षयति अनियतेति। रूपादावतिव्याप्तिपरिहाराय परत्वेत्यादि कालं निवर्तयितुमनियतेति।

कालो विशेषगुणरहितामूर्तद्रव्यान्यः मूर्तत्वरहितत्वादाकाशादिवदिति तत्सिद्धिः। इति दिक्प्रकरणम्।

तत्र प्रमाणमाह काल इति। परिकरशुद्धिस्तु कालवदूहनीयेत्यास्तां विस्तरेण।

ज्ञानात्यन्ताभावरहित आत्मा। अव्याप्तिपरिहारार्थं विशेषणम्। **परत्वासमवायिसमवायित्वरहितशब्दासमानाधिकरणकार्याश्रयो वा।** दिक्कालसर्वमूर्त्तव्यावर्तनाय प्रथमम्। आकाशं व्यावर्तयितुं द्वितीयम्।

ज्ञानं क्वचिदाश्रितं गुणत्वाद्रूपवदिति तत्सिद्धिः। न च शरीरेन्द्रियाणां तदाश्रयत्वं कार्यत्वाद् घटवदिति।

परिशेषतस्तत्सिद्धिमुपक्रमते ज्ञानमित्यादिना।

कार्यस्य तदाश्रयत्वे स्वर्गाद्यर्थितया ज्योतिष्टोमाद्युपदेशो न स्यात्। न च मनसस्तदाश्रयत्वं करणत्वाच्चक्षुर्वत्।

शरीराश्रयत्वे बाधकाभावमाशङ्क्यानुकूलतर्कं दर्शयति कार्यस्येति। ज्योतिष्टोमादिकर्तुरत्रैव विनष्टत्वात् स्वर्गफलोपभोग्यत्वानुपपत्तेरिति भावः। अन्योपभोग्यं स्यादिति चेत् कोऽसावन्य इति निरुच्य वक्तव्यम्। देह एव चेत् सोऽपि ज्योतिष्टोमादिकर्तृत्वेनाभिमतश्चेदभिधीयेत उक्तदोषान्न मुच्यसे। ज्योतिष्टोमादिकर्तृत्वेनाभिमतादन्य एवेति चेत्, न। तस्य स्वर्गफलोपभोग्यत्वस्य शङ्कितुमप्यशक्यत्वात्। ज्योतिष्टोमादिजन्यस्यातिशयस्य तत्राभावादतिशये च स्वसमानाधिकरणस्यैवात्मविशेषगुणस्य जनकत्वं प्रमाणसिद्धं नापलपितुं शक्यम्। न हि चैत्रानुष्ठिताग्निहोत्रजनितमपूर्वं चैत्रसमवेतं मैत्रं स्वर्गफलभागिनं कर्तुमुत्सहते। पुत्रेष्टिपितृयज्ञवदेतत् स्यात्। न, तत्राप्यतिशयस्य पुत्रादिसमवेतत्वेनैवाभ्युपगमाद् व्युत्पादितं चैतदभियुक्तैस्तत्र तत्र। अथ देहातिरिक्त इति मतं तस्मिन्नपि मते कार्यो वा नित्यो वाभ्युपगम्यते। प्रथमश्चेदुक्तदोषान्न मुच्यसे नित्यत्वेऽपि ज्योतिष्टोमादिकर्तुरन्यः स एव वा। न प्रथमः प्रागुक्तदोषात्। स एव चेदायातोऽसि मार्गेण।

आत्मैक्यमसहमानो द्वैविध्यमाह

स द्विविध ईश्वरानीश्वरभेदादिति। अङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटवदितीश्वरसिद्धिः।

नन्वीश्वरे किं प्रमाणम्। प्रश्न एव तावद् न ह्ययमीश्वरमनभ्युपगच्छता कर्तुं शक्यः। न ह्ययं प्रमाणमात्रे किन्त्वीशत्वावच्छिन्ने प्रमाणे। न च विशेषणाप्रतीतौ विशिष्टं शक्यं प्रतिपत्तुम्। न चाप्रतीते विवक्षापूर्वकवाक्प्रयोग उपपद्यते। प्रतीतौ

च प्रमापक्षे प्रश्नानर्थक्यम्। सामान्यतः प्रतीतं न विशेषत इति चेत्, न। तत एव तत्सिद्धेः। भ्रान्तिप्रतीतमिति चेत्, न। तस्याप्यभ्रान्तिपूर्वकत्वाद् भ्रान्तिविषये प्रमाणानुपन्यासाच्च। परवाक्यात् प्रतीतमिति चेत्, न। तस्यागृहीतसमयत्वेना-प्रतिपादकत्वात्। प्रतिपादकत्वेऽपि वा सा प्रमा न वा। प्रमा चेत् कुतस्तर्हि तदेव तत्र प्रमाणभावं न भजते। अप्रमा चेत् तर्हि अन्यथानुपपत्तिरेवास्तु। तत्र प्रमाणमारोप्यस्यात्यन्तासत्त्वे आरोपानुपपत्तेरित्युक्तत्वात्। अथ प्रमात्वाप्रमात्वसन्देहात् प्रश्नः। न, एवं ब्रुवतः (स्वभङ्गा) भ्युपगमापत्तेः। अथ जिज्ञासोः प्रश्नः। न, अनवसरदुःस्थत्वात्। इत्यस्त्वेतदिति स्थित एव दूषणे प्रमाणमाह, अङ्कुरादिकमिति। न चोपाध्यादिशङ्का कार्यकारणभावभङ्गस्य विपक्षबाधकस्य सत्त्वात्। निरुपाधिकस्य च साध्यपरित्यागे स्वभावपरित्यागप्रसङ्गात्।

द्वितीयस्त्वहंप्रत्ययवेद्यः। स च नाना व्यवस्थावचनादिति। इत्यात्मप्रकरणम्।

अनीशे प्रमाणमाह **द्वितीय इति**। नानात्वं प्रतिजानीते **स चेति**। न च भेदाभावः भेदतदभावयोर्भिन्नत्वे भेदस्वीकारापत्तेः। अभिन्नत्वे ऽपि कथं भेदाभावः, भेदाभावस्वीकारे भेदस्वीकारात्। न चाभिन्नत्वमपि भेदाभाव इत्यत्र भेदतदभावयोः सम्बन्धप्रतीतेः। न च राहोः शिर इति वदुपचरितत्वं मुख्ये बाधकाभावात्। नचानिर्वचनीयत्वं भेदस्य, तत्र प्रमाणाभावात्। सत्त्वे भ्रान्तिबाधावसत्त्वे ख्यातिबाधावनुपपद्यमानावनिर्वचनीयत्वं साधयत इति चेत्, नैतत्। विकल्पानुपपत्तेः। किं यत्र सत्त्वं तत्र भ्रान्तिबाधावनुपपन्नावित्यभिधीयते अन्यत्र वा। न प्रथमः। तत्र भ्रान्तिबाधयोरस्माभिरप्यनङ्गीकारात्। द्वितीये तु भ्रान्तिबाधावुपपन्नावेव। न हि जातुचिदतद्वति तद्वत्त्वप्रतीतिरभ्रान्तिः, तत्र च तदुत्तरकालभाविन्यतद्वत्त्वप्रतीतिर्वा। को ह्यस्वस्थात्मनोऽन्यः प्रमाणशून्यमभ्युपगच्छेत्। नाप्यसतः ख्यात्यनुपपत्तिः। असतोऽपि शशशृङ्गादेः प्रतीयमानत्वात्। यदसत् तत् साक्षान्न प्रतीयत इति विवक्षितमिति चेत्, न। असतोऽपि शशशृङ्गादेः स्वप्ने साक्षात्कारोपलम्भात्। शृङ्गवन्तः शशा धावन्तीति स्वप्नोपलम्भात्। नापि सदसद्विलक्षणत्वं भेदस्य अन्यतरनिषेधस्यान्यतरविधिनान्तरीयकतया परस्परविरुद्धयोः सदसत्त्वयोर्निषेधस्यैकत्रानुपपत्तेः। यथा चाहुः।

परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः।
नैकतापि विरुद्धानामुक्तिमात्रविरोधतः।। इति।
(न्या.कु.३/८)

नैकतरनिषेधोऽन्यतरविधिनान्तरीयकोऽनिर्वचनीयवादिनं प्रति व्याप्त्यसिद्धेरिति चेत्, न। न भाव इति निषेधमात्रेणाभावविधेर्नाभाव इति निषेधमात्रेण भावविधेरध्यक्षसिद्धतया दुरपह्नवत्वात्। मास्त्वर्थापत्तिः, अनुमानं तु भविष्यति। विमतमनिर्वचनीयं बाध्यत्वाद् यन्नैवं तन्नैवं यथात्मेति चेत्, नैतदपि। बाध्यत्वहेतोरेव बाध्यत्वेनानिर्वचनीयत्वे भेदानिर्वचनीयत्वासिद्धेः, निर्वचनीयद्वैतापत्तेः। अनिर्वचनीयत्वाप्रसिद्धावप्रसिद्धविशेषणत्वापत्तेश्च।

एकालम्बनसंसर्गनिषेधे सदसत्त्वयोः।
धर्मत्वाद् रूपरसवत् सिद्धानिर्वचनीयता।। इति

नाप्रसिद्धविशेषणः पक्ष इति चेत्, न। अभिधेयत्वादौ व्यभिचारात्। यस्तु अभिधेयत्वादीनां पक्षतुल्यत्वं मनुते, तं प्रत्येकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व एवानैकान्तिकतोद्भावनीया। तस्य धर्मत्वेऽप्येकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभावात्। यद्यत्रापि धर्मत्वेनैकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमनुमिनुयात् तर्हि यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोग्येकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तत्रानैकान्तिकत्वमुद्भावनीयम्। न च तत्राप्येकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधयितुं शक्यमेकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वसाधनविरोधापत्तेः। न च तेन धर्मेणैव भवितव्यमिति नायं नियम इति वाच्यम्। सर्वद्रव्याणामत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्याध्यक्षादिप्रमाणसिद्धत्वात्। यस्तु एकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वधर्मे एकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमेवेति मनुते तं प्रति सिद्धसाधनत्वमुद्भावनीयम्।

नन्वेकधर्मिनिष्ठोभयाप्रतियोगिकात्यन्ताभावद्वयप्रतियोगित्वमेव तत्त्वमिति न सिद्धसाधनतेति चेत्, न। एकस्मिन् बहुषु च व्यभिचारात्। धर्मद्वयत्वमेव धर्मत्वमिति न व्यभिचार इति चेत्, न। गोत्वतदभावयोः स्थितस्य तस्य निवृत्तेरशक्यत्वात्। न च परस्परविरोधित्वरहितत्वेन हेतुविशेषणेऽपि निस्तारः पक्षधर्मत्वासिद्धिप्रसङ्गात्। एतद्व्यतिरिक्तविशेषणात् तत्सिद्धिरिति चेत्, न। गोत्वाश्वत्वाभावयोर्व्यतिरेकासिद्धिप्रसङ्गात्। नाप्येतद्व्यतिरिक्तपरस्पर-

विरोधित्वरहिताभावत्वरहितधर्मद्वयत्वादिति हेतुः। सत्त्वं सत्त्वाभिन्नत्वे सत्यसत्त्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि न भवति धर्मत्वाद् धर्मान्तरवत्। असत्त्वं वा असत्त्वाभिन्नत्वे सति सत्त्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि न भवति धर्मत्वाद् धर्मान्तरवदिति सत्प्रतिपक्षग्रस्तत्वाद्धेत्वसिद्धश्च। न चाद्वैतश्रुतिर्बाधिका द्वैतश्रुतिपर्यालोचनया तद्बाध्यत्वस्यापि सम्भवात्। न चोपचरितार्थत्वमस्याः, विपर्ययस्यापि वक्तुं शक्यत्वादुपजीव्यविरोधेन दुर्बलत्वाच्च। न च स्वतः प्रामाण्यमुपपद्यत इत्यास्तां विस्तरेण। तथाप्यात्मभेदे किं प्रमाणमिति चेत् तत्राह व्यवस्थावचनादिति। इत्यात्मा।

स्पर्शरहितत्वे सति मूर्त्तं मनः। विशेषगुणात्यन्ताभावा[१६] धिकरणं मूर्त्तं मनः।

कालादावतिव्याप्तिपरिहारार्थत्वेन मूर्त्तत्वम्।

पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहित-गुणत्वव्याप्यजातिमान् विशेषगुणः।

कथमनेन परममहत्परिमाणं व्यवच्छिद्यत इति परिभावनीयम्। महत्त्वस्य परिमाणत्वस्य वा गुणत्वव्याप्यत्वेऽपि पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिपरिमाणवृत्तित्वेन तदवृत्तित्वानुपपत्तेः। अथ परममहत्परिमाणत्वाधिकरणत्वेन लक्षणयोगः कस्मान्न स्यात्। यद्यपि परममहत्त्वस्य पृथिवीत्वरहितवृत्तित्वेन तदवृत्तित्वमनुपपन्नं तथापि पृथिवीवृत्तित्वे सति यत् पृथिवीत्वरहितवृत्ति तदवृत्तित्वमुपपद्यत एव, परममहत्परिमाणस्य पृथिव्यपृथिवीनिष्ठत्वानुपपत्तेः। अथ गुणत्वव्याप्यत्वेन गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वस्य विवक्षितत्वात् परममहत्त्वस्य च गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति चेत् कथं तर्हि सांसिद्धिकद्रवत्वे भावनायां च नाव्याप्तिः। न च द्रवत्व संस्कारत्वाभ्यां लक्षणयोगस्तत्र शंकनीयः। द्रवत्वसंस्कारत्वयोः पृथिवीवृत्ति–पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वात्। अथ सांसिद्धिकद्रवत्वभावनात्वाभ्यां लक्षणयोग इति मन्यसे। तन्न, तयोर्गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वाभावात्। अथ पृथिवीवृत्तयश्च पृथिवीत्वरहितवृत्तयश्च पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तयः तद्वृत्तित्वरहितत्वस्याभ्युपेतत्वात्। सांसिद्धिकद्रवत्वभावनात्वयोश्च पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहितत्वाभावेऽपि पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वरहितत्वेन पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहितत्वाद् गुणत्वव्याप्यत्वाच्च न सांसिद्धिकद्रवत्वे भावनायां चाव्याप्तिरिति मन्यसे। तर्हि

परममहत्परिमाणत्वस्यापि पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहितत्वाभावेऽपि पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वरहितत्वेन पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहितत्वाद् गुणत्वव्याप्यत्वाच्च कुतो नातिव्याप्तिरित्यन्वेषणीयम्। अथ परममहत्परिमाणत्वं न जातिरिति मन्यसे। तत्र, गोत्वादिना तुल्यन्यायत्वादित्यास्तां विस्तरेण। लक्षणं तु सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेतत्वानधिकरणघ्राणग्राह्यजातिमान् विशेषगुण इति। न च रूपादावव्याप्तिः। रूपं सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरण-समवेतत्वानधिकरणघ्राणग्राह्यजातिमान् रूपत्वरहितगन्धान्यत्वरहितत्वाद् गन्धवदिति प्रमाणसिद्धत्वात्। एवं रसादावव्याप्तिः परिहरणीया। तथा मूर्त्तत्वासिद्ध्या लक्षणासम्भव इति चेत्। मैवं वोचः। देवदत्तरूपसाक्षात्कारो देवदत्तचक्षुर्व्यतिरिक्तमूर्त्तेन्द्रियजन्यो रूपसाक्षात्कारत्वाद् यज्ञदत्तरूपसाक्षात्कारवदिति प्रमाणसिद्धत्वात्। यद्वा एतद्देवदत्तरूपसाक्षात्कारजनकं देवदत्तचक्षुरेतद्देवदत्तरूपसाक्षात्कारजनकदेवदत्तमूर्त्तेन्द्रियभिन्नं चक्षुष्ट्वाद् यज्ञदत्तचक्षुर्वदिति। वादिवागीश्वरास्तु संसारी मूर्त्तसंयोगासमवायिकारणक-विशेषगुणाश्रयो नित्यत्वे सत्यनित्यविशेषगुणवत्त्वात् पार्थिवपरमाणुवदित्याहुः। न चोपाध्यादिशङ्का अनुकूलतर्कसत्त्वात्। विस्तरस्त्वन्यत्रेत्युपरम्यते।

आत्मप्रतीतिः करणसाध्या अपरोक्षप्रतीतित्वाद् रूपोपलब्धिवदिति तत्सिद्धिः। इति मनःप्रकरणम्। इति द्रव्यपदार्थः।

संयोगाजन्यसंयोगासमवायिसमवेतत्वरहितसंयोगासंयोग-समवेतवान् गुणः।

संयोगाजन्यो यः संयोगः तदसमवायिनि समवेतत्वरहितमिति द्रष्टव्यं न तु संयोगाजन्यं यत् संयोगासमवायीति भ्रमितव्यम्। संयोगवृत्त्यवृत्तिभ्यां व्याघातापत्तेः। कर्मव्यावृत्त्यर्थं प्रथमम्। द्रव्यव्यावृत्त्यर्थं संयोगेति। **विभागाजन्यविभागासमवायिसमवेतत्वरहितविभागा-विभागसमवेतवान् गुण इति।** एतदपि पूर्ववत्।

रूपं संयोगाजन्यसंयोगासमवायिसमवेतत्वरहित[१७]-संयोगसमवेतवद् रूपत्वरहितसंयोगान्यत्वरहितत्वात् संयोगवदिति गुणत्वसिद्धिः। चतुर्विंशतिप्रकारो रूपादिभेदेन।

गुणत्वं साधयति रूपमिति। सामान्यगुणत्वेन दृष्टान्ते साध्यप्रसिद्धिः। यदात्र संयोगपदं नास्ति तदा संयोगत्वेनैव साध्यप्रसिद्धिर्द्रष्टव्या।

रसासमवेतनीलपीतसमवेतवद् रूपम्।

गुणत्वाधिकरणे रसादावतिव्याप्तिपरिहाराय रसासमवेतत्वे सतीत्युक्तम्।

गुणत्वे सति चक्षुर्मात्रग्राह्यं रूपम्।

गुणत्वं चात्र विशेषगुणत्वमभिमतमन्यथा कालकृतपरत्वादावतिव्याप्तिः स्यात्। चक्षुर्मात्रग्राह्यमित्यत ऊर्ध्वं जातीयपदं द्रष्टव्यमन्यथा परमाणुरूपादावव्याप्तिप्रसङ्गात्।

तत् सप्तप्रकारम्। न च रूपग्राहकं चक्षुश्चक्षुर्मात्रग्राह्यं वा रूपमित्यन्योन्याश्रयत्वं नयनगोलकाधिष्ठानत्वेन चक्षुर्निरूपणात्।

शुक्लो रसासमवेतनीलसमवेतवान् नीलत्वरहित-शुक्लान्यत्वरहितत्वान्नीलवत्। इति रूपत्वसिद्धिः।

रसासमवेतनीलपीतसमवेतवद् रूपमित्युक्तम्। तत्र रसासमवेत नीलपीतसमवेतासिद्धिमाशङ्क्य तत् साधयति शुक्ल इति। तत्र च।

नीलाश्रितत्वस्येष्टत्वात् शुक्लत्वं विनिवार्यते।
गुणत्वविनिवृत्तिस्तु रसनिष्ठत्ववारणात्।।१।।

शुक्लान्यत्वानाश्रयत्वं हेतुश्चेदभिधीयते।
असाधारणता हेतोस्तदाशक्यनिवारणा।।२।।

नीलत्वरहितत्वं हि तस्मादभ्युपगम्यते।
सपक्षे सत्त्वसिद्ध्यर्थं नैतदेवानुमन्यते।।३।।

नीलः स्वमात्रसमवेतवान् स्वमात्रसमवेतवत्त्व-रहितघटान्यत्वरहितत्वाद्[१८] घटवत्। इति नीलत्वजातिसिद्धिः।

नीलत्वं साधयति नील इति।

स्वमात्रसमवेतत्वरहितत्वं विशेषणम्।
पक्षीकृतं हेतुशून्यं माभूदित्यभ्युपेयते।।१।।

घटान्यत्वानाश्रयत्वमबाधायाभिधीयते।
स्वमात्रसमवेतं हि घटादावभ्युपेयते।।२।।

अत्र च।

साध्यसाधननिष्ठेन स्वशब्देनाभिधीयते।
घटः किं स्विदयं नील उताभ्यामन्य उच्यते।।३।।
बाधप्रसङ्गात् प्रथमश्चरीकर्ति न चातुरीम्।
न हि तन्मात्रनिष्ठस्य युज्यते नीलनिष्ठता।।४।।
नीलाश्रयत्वे तन्मात्रनिष्ठता या न युज्यते।
यदि नीलोऽभिधीयेत साध्यशून्यं निदर्शनम्।।५।।
नीलमात्राश्रये यस्मान्नेष्यते घटनिष्ठता।
निदर्शनगता हेतुशून्यताप्यनिवारणा।।६।।
यदि त्यक्त्वैतदुभयमन्य एवाभिधीयते।
नीलादावुक्तदोषाः स्युः सर्वे ऽशक्यप्रतिक्रियाः।।७।।
आश्रयासिद्धता हेतोरधिकात्र प्रसज्यते।
नीलत्वसाधनं तस्मान्नोपपन्नमिति स्थितम्।।८।।

तदेतत् परिजिहीर्षुभिराचार्यैः स्वशब्दार्थः प्रदर्श्यते। **नीलत्वरहितघटत्वात्यन्ताभावरहितः स्वशब्दार्थ** इत्यनेन। रूपम्।

गुणत्वे सति रसनग्राह्यो रसः। स च षोढा माधुर्यादिभेदेन। क्षीरेक्षुगुडसलिलेषु माधुर्यादिसाम्येऽप्यवान्तरजातिभेदस्य विद्यमानत्वाद् विशेषगुणत्वसिद्धिः।

रसो निगदव्याख्यातः।

गुणत्वे सति घ्राणग्राह्यो गन्धः।

गन्धत्वेऽतिव्याप्तिर्माभूदिति गुणत्वग्रहणम्। जलादौ गन्धोपलब्धेर्नासौ विशेषगुण इत्याशङ्क्य तत्र तत्प्रतीत्यौपचारिकत्वेन परिहरति

जलादावौपाधिकी गन्धप्रतीतिर्न स्वभावत इति विशेषगुणत्वसिद्धिरिति।

मुख्ये बाधकप्रमाणाभावमाशङ्क्य बाधकं प्रमाणमुपन्यस्यति

जलं न गन्धाधिकरणमपाकजरूपाधिकरणत्वात्[११] **तेजोवदिति।**

न पाकजरूपाधिकरणं पाकजरूपानधिकरणत्वादित्यर्थः। अत्र च पाकजरूपसमानाधिकरणद्रव्यत्वावान्तरजातिरहितत्वादिति हेत्वर्थो विवक्षितः। तथा च न घटादौ व्यभिचारः। वायावनैकान्तिकमेतदिति चेत्, तत्राह

वायोः पक्षतुल्यत्वान्न तत्र व्यभिचार इति। गुणत्वे सति त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यः स्पर्शः।

स्पर्शत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणत्वग्रहणम्।

स त्रिविधः। शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्। नन्वनुष्णाशीत-स्पर्शस्य कथं विशेषगुणत्वं तस्य पृथिवीवायुसाधारणत्वात्।

अनुष्णाशीतस्पर्शस्य विशेषगुणत्वाभावं शङ्कते नन्विति।

पाकजत्वापाकजत्वाभ्यामवान्तरजातिभेदेन विशेषगुणत्वे नैमित्तिकद्रवत्वस्याप्यत्यन्ताग्निसंयोगे सत्युच्छेदानुच्छेदाभ्याम-वान्तरजातिसद्भावेन विशेषगुणता स्यात्। ततश्च नैमित्तिक-द्रवत्वस्य सामान्यगुणापाठो निरर्थकः स्यादनुष्णाशीतस्पर्शस्य वा पाठः स्यात्। ततश्च वायोर्बाह्येन्द्रियग्राह्यविशेषगुणापाठो निरर्थकः स्यात्। सेयमुभयतः पाशारज्जुः।

अवान्तरजातिभेदेन विशेषगुणत्वमाशङ्क्यातिप्रसक्त्या परिहरति पाकजत्वेत्यादिना।

मैवम्। अवान्तरजातिभेदस्य क्षीरेक्षुगुडमाधुर्या-दिवदनुभवसिद्धित्वात्।

परिहरति **मैवमिति।** प्रत्यक्षसिद्धावान्तरजातिभेदो दुरपह्नव इति भावः।

अन्यथा महान्धकारे स्पर्शोपलम्भमात्रेण वायुर्वातीति प्रत्ययो न स्यात्। न चैवं सति नैमित्तिकद्रवत्वस्यावान्तरजातिभेदानुभवः।

विपक्षे दण्डमाह अन्यथेति। न च नैमित्तिकद्रवत्वेऽप्येष न्यायः तत्रावान्तरजातिभेदे प्रमाणाभावात्।

वायुस्पर्शः पृथिवीवृत्तिवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्ति-वृत्तित्वरहित[२०] गुणत्वव्याप्यजातिमानपाकजस्पर्शत्वात् तेजःस्पर्शवदित्यनुमानात्।

अनुमानमाह वायुस्पर्श इति। बाधपरिहारार्थं पृथिवीवृत्तिवृत्तिपदम्। सत्तया सिद्धसाध्यता माभूदिति पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहितेत्युक्तम्। तत्र पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहिता जातिर्वायुस्पर्शे व्याघातादनुपपन्नेति पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वरहिता सिध्यतीति जातिभेदसिद्धिः।

संख्यां लक्षयति

पृथक्त्वासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणैकद्रव्य-समवेतवती संख्या।

अत्र सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणं यदेकद्रव्यमिति न भ्रमितव्यम्। सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणस्यैकद्रव्यत्वानुपपत्तेः। अपि तु सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणे एकद्रव्ये च यत् समवेतमिति द्रष्टव्यम्। एकं द्रव्यमाश्रयो यस्येति समासः। सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वं च सर्वेषां येऽन्योन्याभावाः तत्समानाधिकरणत्वम्। न तु यावदन्योन्याभावसमानाधिकरणत्वं रूपधर्मिकरसप्रतियोगिकान्योन्याभावस्य संयोगादिसामानाधिकरण्यानुपपत्तेः। समवेतवती संख्येत्युक्ते समवेतद्रव्यत्वसामान्यवति द्रव्येऽतिव्याप्तिस्तदर्थमेक-द्रव्येत्युक्तम्। द्रव्यत्वस्य समवेतत्वेऽपि नैकद्रव्ये समवायः असमवायिकारणाभावेनैकद्रव्यद्रव्यानुपपत्तेः। नो चेदकारणककार्यप्रसङ्गो दुर्वारः। एतावत्युच्यमाने कर्मत्वजातिमति कर्मण्यतिव्याप्तिः। कर्मत्वस्यैकद्रव्ये कर्मणि समवायादिति **सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणे**त्युक्तम्। कर्मणः सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वाभावात्। कर्मत्वस्य वा कर्मव्यतिरिक्त-सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेतत्वाभावान्नातिव्याप्तिः। एवमपि पृथक्त्वेऽतिव्याप्तिः। तस्य सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणद्विपृथक्त्वाद्येकद्रव्यैकपृथक्त्वे समवेतपृथक्त्वसामान्याश्रयत्वात्। ततः पृथक्त्वासमवेतत्वेन विशेषणम्। संयोगादावतिव्याप्तिर्माभूदित्येकद्रव्यपदम्। शेषं सुगमम्।

द्वित्वप्रक्रियां कारिकया सङ्गृह्णाति **आदाविति।**

आदाविन्द्रियसन्निकर्षघटनादेकत्वसामान्यधीः।
एकत्वोभयगोचरा मतिरतो द्वित्वं ततो जायते।
द्वित्वत्वप्रमिति[२१]स्ततोऽपि परतो द्वित्वप्रमानन्तरं
द्वे द्रव्ये इति धीरियं निगदिता द्वित्वोदयप्रक्रिया।।

स्यादयमुत्पत्तिप्रकारः यदि द्वित्वैकत्वे स्तः। ते एव नावगच्छामः, प्रमाणाभावात्। स्पर्शरहितद्रव्यं स्पर्शवद्गुणासमवायिकारणाद्विष्ठगुणयोराश्रयः द्रव्यत्वाद् गुणवत्त्वाद्वा पटारम्भकतन्तुवदित्यस्त्वेकत्वे प्रमाणमिति चेत्, नैतत्। नभसः स्पर्शवद्भेरीगुणसंयोगासमवायिकारणकाद्विष्ठगुणशब्दाश्रयत्वेन तदंशे सिद्धसाधनत्वात्, स्पर्शवत्त्वेन सोपाधिकत्वाच्च। स्पर्शवत्त्वस्योपाधित्वे स्पर्शवतां घटादीनामपि तथाविधगुणाश्रयत्वं प्रसज्येतेति चेत्, न। स्पर्शोपाधिपरिहारस्य विविच्य वक्तव्यत्वात्। यदि स्पर्शवत्त्वमेवंविधगुणवत्त्वे प्रयोजकं स्यात् तर्हि घटादीनामप्येवंविधगुणाश्रयत्वं प्रसज्येत स्पर्शवत्त्वात्। न चैवं, तस्माद्व्याप्तिविरहान्नोपाधिरिति **टीकाकारै**रेव विविच्योक्तमिति चेत् सत्यमुक्तं तथापि त एव पर्यनुयोक्तव्याः। घटादिषु स्पर्शवद्गुणासमवायिकारणाद्विष्ठगुणाश्रयत्वं किं वादिना नाभ्युपगम्यते उत प्रतिवादिनेति। यदि वादी नानुमनुते कथं तर्हि तस्य नापसिद्धान्तो नाप्यनैकान्तिकत्वमिति परिभावनीयम्। अथ प्रतिवादिना नानुमन्यत इति मनुषे, तन्न। अस्यैवार्थस्य प्रतिवादिनाभ्युपगमात्। तेन हि स्पर्शवत्कपालादिगुणरूपाद्यसमवायिकारणकरूपादीनामद्विष्ठानां घटादिष्वभ्युपेतत्वात्। मास्त्वेकत्वे प्रमाणं द्वित्वे तु भविष्यति। द्रव्याजनकः संयोगः स्वतोऽधिकवृत्तिकार्यैकार्थसमवेतत्वार्हः संयोगत्वाद् द्व्यणुकारम्भकसंयोगवदिति चेत्, न। अत्रापि रूपैकार्थसमवायेन सिद्धसाधनत्वादस्ति हि रूपादीनां व्याप्यवृत्तितया संयोगाधिकवृत्तित्वं कार्यत्वं च। विवक्षितकार्यस्य व्यासज्यवृत्तित्वाभ्युपगमान्न रूपादिना सिद्धसाधनमिति चेत् तथापि कथं द्वित्वसिद्धिः, त्रित्वादिनैव चरितार्थत्वादित्यास्तां विस्तरेणेति। उच्यते, न तावदेकत्वसाधकाभावः शङ्कितस्यैव सत्त्वात्। न चांशे सिद्धसाधनत्वं स्पर्शवद्गुणस्यासमवायिकारण-मित्यभ्युपगमात्। न च घटादावनैकान्तिकत्वं तेषां पक्षतुल्यत्वात्। यदि घटादिपक्षतुल्यत्वं ग्रन्थकृदाशयस्थं कथं तर्हि उपाधिनिराकरणपरः स्पर्शवतां घटादीनामपि तथाविधगुणाश्रयत्वं प्रसज्येतेत्युत्तरो ग्रन्थ इति चेच्छ्रूयतामवधानेन। येन हि विवक्षितगुणाश्रयत्वं प्रति स्पर्शवत्त्वं प्रयोजकमित्यभिधीयते तेन वै स्पर्शवत्सु

विवक्षितगुणाश्रयत्वं वक्तव्यम्। नो चेत् कथं प्रयोजकतामभिदध्यात्। तथा च कथं विवक्षितगुणाभावं प्रतिजानीयात्। स्पर्शवत्सु स्वयमेवाभ्युपगतत्वादितरत्र चानुमानस्य सुकरत्वाद् विवक्षितगुणाश्रयत्वद्रव्यत्वयोः स्पर्शवत्स्वेव व्याप्यव्यापकभावावधारणादिति। यद्येवं तर्हि **टीकाकारकृताशयविवरणस्य** का गतिरिति चेद् भ्रान्तिरिति ब्रूमः। यदपि **टीकाकारेण** घटादिव्यभिचारपरिहारार्थ-मन्त्यावयविव्यतिरिक्तत्वे सतीति विशेषणीयमित्युक्तं तदपि तेषां पक्षतुल्यतयैव निरस्तम्। नापि द्वित्वसाधकाभावः शङ्कितस्यैव सत्त्वात्। न च रूपाद्येकार्थसमवेतत्वेन सिद्धसाधनं संयोगसमानाश्रयत्वे सति संयोगाधिकदेशत्वस्य संयोगाधिक-वृत्तित्वेनेष्टत्वादिति यत्किञ्चिदेतत्। अस्तु वैवं द्वित्वसाधनप्रयोगः। अयं घटः कर्मसंयोगविभागाजन्यपृथक्त्वातिरिक्तबहुत्वा[२२]नधिकरणानेतन्निष्ठगुणाधिकरणं द्रव्यत्वात् पटवत्। यद्वा आकाशं पृथक्त्वातिरिक्तबहुत्वानधिकरण-द्रव्यत्वात् पटवत्। यद्वा अयं घटः कालानिष्ठगुणाधिकरणं द्रव्यत्वात् पटवत्। यद्वा अयं घटः बहुत्वानधिकरणानेतन्निष्ठसंख्याधिकरणं द्रव्यत्वात् पटवदिति। अथ भवतु द्वित्वैकत्वसिद्धिरुक्तप्रमाणात् तथापि कथं द्वित्वोत्पत्तिप्रकारः सम्भवी, द्वित्वस्यैकत्वजन्यत्वे प्रमाणाभावादिति मन्यसे। तन्न, द्वित्वमेकत्वजन्यं कार्यसंख्यात्वाद् घटैकत्ववदिति प्रमाणसिद्धत्वात्। त्रित्वादीनां च पक्षतुल्यत्वान्न तत्र व्यभिचारः शङ्कनीयः। द्वित्वं नैकत्वजन्यमनेकनिष्ठत्वात् संयोगविभागवदिति सत्प्रतिपक्षत्वमिति चेत्, न। परमाणुः शब्दासमवायित्वरहितपृथक्त्वातिरिक्त-बहुत्वानधिकरणैकत्वजन्यानेतन्निष्ठगुणाधिकरणं द्रव्यत्वाद् घटवदिति प्रमाणसिद्धस्य गुणस्यापि धर्मित्वे धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात्, तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मित्वे धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात्। द्वित्वस्यापेक्षाबुद्धिजन्यत्वे च प्रमाणम्। अहं घटपटद्वित्वजनकघटपटैकत्वगोचरसाक्षात्कारवानात्मत्वादीश्वरात्मवदिति। यद्वा द्वित्वसामान्यमेकत्वज्ञानजन्यवृत्ति द्वित्वाव्यावृत्तत्वात् सामान्यवदिति। सत्तायां चैकत्वज्ञानजन्यैकत्वगोचरसंस्कारनिष्ठत्वेन साध्यप्रसिद्धिः। यद्वा द्वित्वमेकत्वगोचरज्ञानजन्यं कार्यत्वादेकत्वज्ञानजन्यैकत्वविशिष्टद्रव्यज्ञानवत्। न च ज्ञानत्वमुपाधिः, एकत्वज्ञानजन्यसंस्कारे साध्याव्यापकत्वात्। न च घटादावनैकान्तिकत्वं तस्याप्येकत्वगोचरेश्वरज्ञानजन्यत्वात्। न च संख्यात्वेनैकत्वज्ञानजन्यत्वाभावोऽनुमातुं शक्य, एकत्व एव व्यभिचारात्। तस्यापि स्वगोचरेश्वरज्ञानजन्यत्वात्। विस्तरस्त्वन्यत्रेत्युपरम्यते। संख्या।

परिमाणं लक्षयति

संख्यासमवेतत्वरहितसंख्यासमवायिसमवेतवत् परिमाणम्।

संख्या असमवायिनी यस्येति विग्रहः। संख्यायामतिव्याप्तिपरिहारार्थं संख्यासमवेतत्वरहितपदम्।

पृथक्त्वं लक्षयति

शब्दासमवायिकारणासमवेतत्वरहितसर्वान्योन्या-भावसमानाधिकरणासमवेतपरिमाणासमवायिसमवेतत्व-रहिताधिकरणं पृथक्त्वम्।

संख्यापरिमाणप्रचयेष्वतिव्याप्तिपरिहारार्थं **परिमाणासमवायिपदम्।** यद्यपि संख्यादौ पटाद्यसमवेतसंख्या-त्वाद्यधिकरणत्वादतिव्याप्तिः तथापि संख्याद्यसमवेतस्यानधिकरणत्वान्नातिव्याप्तिः। तथापि संख्यादौ संख्यापरिमाणप्रचयान्यतमधर्मिप्रतियोगिकानामन्योन्याभावानां परिमाणासमवाय्यसमवेतानां सत्त्वादतिव्याप्तिः। रूपादावपि संख्याद्यसमवेतरूपत्वाद्यधिकरणत्वादतिव्याप्तिस्तत्परहारार्थं **सर्वान्योन्या भावसमानाधिकरणसमवेतपदम्।** रूपादेः सर्वान्योन्याभावसमानाधि-करणत्वासम्भवेन रूपत्वादेस्तत्समवेतत्वानुपपत्तेः। संयोगादावतिव्याप्तिपरिहारार्थं शब्देत्यादि। संयोगादेः शब्दासमवायिकारणत्वान्नातिव्याप्तिः।

संयोगं लक्षयति

कालावृत्त्यवृत्ति विभागासमवायिसमवेतत्वरहि[२३]तप्रध्वंस-प्रतियोगित्वानधिकरणसमवेतत्वानधिकरणगुणत्वसाक्षाद्व्याप्य-जात्यधिकरणं संयोगः।

रूपादावतिव्याप्तिपरिहारार्थं **प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरणसमवेत-त्वानधिकरणेत्युक्तम्।** रूपत्वादीनां प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरण-समवेतत्वान्नातिव्याप्तिः। न च विभागेऽतिव्याप्तिः, **विभागासमवायिसमवेतत्वरहितपदेन** तस्य निरस्तत्वात्। न च गन्धेऽतिव्याप्तिः **कालावृत्त्यवृत्तित्वेन** विशेषणात्। अस्तु तर्हि कालावृत्त्यवृत्तिगुणत्व-साक्षाद्व्याप्यजात्यधिकरणत्वमेव संयोगलक्षणमिति चेत्, न। परिमाणादावतिव्याप्तेः। तदर्थं प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरण-

समवेतत्वानधिकरणत्वमप्युपादीयत एवेति चेत्, न। विभागातिव्याप्तिपरिहारार्थं विभागासमवायिसमवेतत्वरहितत्वस्यावश्योपादेयत्वादिति सर्वं सुस्थम्। अक्षणिकेतरेतराभावाविरोधिसमवेतेति कच्चित् पाठः। तत्राक्षणिक-पदमधिकरणविशेषणं विभागव्युदासपरम्। अक्षणिकत्वं च नेह स्वोत्पत्त्यव्यवहितोत्तरक्षणवर्त्तिध्वंसाप्रतियोगित्वमपि तु द्वित्रिक्षणमात्रावस्थायित्वरहितजातीयत्वमन्यथातिव्याप्तिप्रसङ्गात्। द्वितीयमाश्रयेतरेतराभावविरोधिगुणव्युदासपरम्।

लक्षणान्तरमाह

विभागासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरण-समवेतशब्दासमवायिसमवेतवान् संयोगः।

तत्र च विभागासमवायि-समवेतत्वरहितपदं पूर्वलक्षणगतमनुपञ्जनीयम्।

विभागं लक्षयति

संयोगासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेत-शब्दासमवायिसमवेतवान् विभागः।

अत्र च शब्दसंख्ये निवर्तयितुं क्रमेण शब्दसंयोगनिवर्तनाय च व्युत्क्रमेण विशेषणानि द्रष्टव्यानि।

विशेषणतया परप्रत्ययनिमित्तं परत्वम्। विशेषणतया अपरप्रत्ययनिमित्तमपरत्वम्। अर्थप्रकाशो बुद्धिः। यस्मिन् सत्यनुरागस्तत् सुखम्। यस्मिन् सति द्वेष[२४]स्तद् दुःखम्। प्रार्थना इच्छा। ज्वलनात्मको द्वेषः। उत्साहः प्रयत्नः। आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्। आद्यस्यन्दना-समवायिकारणं द्रवत्वम्।

परत्वादेर्द्रवत्वान्तस्य लक्षणानि निगदव्याख्यातानि।

ननु न समवायिकारणमसमवायिकारणमिति यद्युच्येत तर्हि निमित्तमपि तथा स्यात्। न तत् समवायिकारणप्रत्यासन्नमिति चेत्, तत् किमेतावदेव अन्यदपि वा विवक्षितमस्ति। प्रथमे प्रत्यासत्तिः समवाय एवेति यदि तर्हि घटत्वस्य घटरूपं प्रति कपालरूपस्य घटं प्रत्यसमवायिकारणत्वं प्रसज्येत। न चानवधृतसामर्थ्यात्र तथेति वाच्यम्। अवधृतसामर्थ्यता यदि तदन्वयव्यतिरेकानुविधायिता सास्त्येवेति न व्यतिरेकः। नान्या, निरुच्य वक्तुमशक्यत्वात्। कथं च कपालरूपस्य घटरूपं प्रत्यसमवायिकारणता स्यात्। समवायिकारणकारणसमवायादिति चेत्, कपालगुणान्तराणां घटरूपं प्रत्यसमवायिकारणत्वप्रसङ्गात्। तन्तुसंयोगस्य पटं प्रत्यसमवायिकारणत्वाभावप्रसङ्गाच्च। न च गुणासमवायिकारणताया एतल्लक्षणमिति युक्तम्। एकत्वे पाकजेषु च तदभावात्। न चान्यतरत्वविवक्षायां यथायथमुभयमपि प्रयोजकमस्त्वित्युक्तेऽपि न निस्तारः। उक्तदोषात् घटादावतिव्यापकत्वाच्च। घटादीनामपि घटरूपादिकारणकारण-घटावयवसमवेतत्वेन तद्गतरूपादिवत् प्रत्यासन्नत्वादित्याशङ्क्यासमवायिकारणस्य स्वरूपमाह

द्रव्यनिष्ठ[२५]त्वरहितात्मविशेषगुणनिष्ठत्वरहितपरत्वापरत्व-निष्ठा[२६]त्यन्ताभावप्रतियोगिजाति मदसमवायिकारणमिति।

यदसमवायिकारणं तदेवंविधमेवेति भावः। निगदव्याख्यातम्। लक्षणं तु **द्रव्यत्वरहितध्वंसान्यात्मविशेषगुणमात्रनिमित्तत्वरहितात्मविशेष-गुणत्वरहितरसस्पर्शस्नेहसंयोगविभागविशेषव्यतिरिक्त[२७] भावत्वमिति**

द्रष्टव्यम्। द्रव्यत्वरहितविशेषणेन द्रव्यव्युदासात्। आत्मविशेषगुणानां चात्मविशेषगुणत्वरहितग्रहणेन निराकरणात्। अणुद्व्यणुकाकाशादि-परिमाणान्त्यावयविरूपगन्धपरिमाणानेकत्वानेकपृथक्त्व-परत्वापरत्वाविनश्यदवस्थद्रव्यसंयोगविभागवेगकर्मान्त्यशब्द-सामान्यविशेषसमवायानां ध्वंसान्यात्मविशेषगुणमात्रनिमित्तत्वरहितविशेषणेन निरासात्। अण्वाकाशादिपरिमाणसामान्यविशेषसमवायानां चान्यपदेन निराकरणात्। शिष्टं स्पष्टम्।

स्नेहलक्षणमाह

स्नेहः सङ्ग्रह[२८]हेतुः। पृथिवीवृत्त्यवृत्तिरससमानाधिकरण-वृत्ति[२९] गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् स्नेह

इत्यपि द्रष्टव्यम्। गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वमेव लक्षणं किं न स्यात्, सुखत्वेऽतिव्याप्तेः। अभ्युपगम्यतां तर्हि रससमानाधिकरणवृत्तित्वम्। एतावतापि नालम्। पृथिवीवृत्त्यवृत्तित्वस्यापि रूपादावतिव्याप्तिपरिहारार्थ-त्वेनावश्याभ्युपेयत्वात्। अस्तु तर्हि पृथिवीवृत्त्यवृत्तिरससमानाधिकरण-वृत्तिजातिमत्त्वमेव लक्षणम्। मैवम्, शीतस्पर्शे ऽतिव्याप्तेः। शीतत्वस्य पृथिव्यवृत्तिरसमानाधिकरणशीतस्पर्शवृत्तित्वात्। ततो गुणत्वसाक्षाद्व्याप्य-जातिमत्त्वमप्युपादेयमेवेति सर्वं सुस्थम्।

संस्कारं लक्षयति

गगनसमवेतसमवेतत्वरहितमूर्त्तामूर्त्तसमवेत-समवेतवान् संस्कारः।

संयोगादिव्यावृत्त्यर्थं गगनसमवेत-समवेतत्वरहितेत्युक्तम्। रूपव्यावृत्त्यर्थं मूर्त्तामूर्त्तसमवेतसमवेतवानिति।

विहितक्रियासाध्यः पुङ्गुणो धर्मः। निषिद्धक्रियासाध्यः पुङ्गुणोऽधर्मः। गुणत्वे सति श्रोत्रग्राह्यः शब्दः।

इति गुणपदार्थः।

संयोगासमवेतसंयोगासमवायिका[३]रणसमवेतवत् कर्म।

रूपादौ व्यभिचारपरिहाराय संयोगासमवायिकारणसमवेतवदित्युक्तम्। संयोगेऽतिव्याप्तिपरिहाराय संयोगासमवेतपदम्।

तच्च पञ्चविधम्। उत्क्षेपणादिभेदेन। तत्राधोदेशविभागोद्र्ध्वदेशसंयोगजनकं कर्मोत्क्षेपणम्। ऊर्द्ध्वदेशविभागाधोदेशसंयोगजनकं कर्मापक्षेपणम्। अग्रदेशविभागमूलदेशसंयोगजनकं कर्माकुञ्चनम्। मूलदेशविभागाग्रदेशसंयोगजनकं कर्म प्रसारणम्। उत्क्षेपणाद्याकुञ्चनं च प्रयत्नजनिष्ठम्। न चेद् गमनस्यापि प्रसङ्गात्। अप्रयत्नजं कर्म गमनम्। ननु पञ्चैव कर्माणीति नोपपद्यते, भ्रमणादीनां सत्त्वादिति चेन्न। भ्रमणादयोऽपि कर्मविशेषा इत्युक्तं शास्त्रकृद्भिरिति। कर्मपदार्थः।

समवेतरहितं सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणं समवेतं सामान्यम्।

नैतत्, मनस्त्वादावव्याप्तेः। मन आदेः सर्वान्योन्याभावसमानाधि-करणत्वासम्भवेन मनस्त्वादेः तत्समवेतत्वानुपपत्तेः। तस्मान्न जानीमो वयमित्याचार्याशयमित्याचार्याशयवेदिनां परिहारो गवेषणीयः। वयं तु बुध्यामहे। सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणं यत् समवेतमिति व्युत्पादनान्नाव्याप्तिरिति। समवेतवत्त्वरहितानेकसमवेतं सामान्यमित्यपि लक्षणं द्रष्टव्यम्। संख्यासमवायिसमवाय्यनेकसमवेतमिति तु तत एव निरस्तम्। पटादावतिव्याप्तिश्च तस्यापि संख्यासमवायिसमवायित्वादिति। **सामान्यम्।**

समवेतवत्त्वरहितसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वरहित-समवेता विशेषा इति।

एतन्मनस्त्वेऽतिव्यापकत्वेन प्रतिभाति। मनस्त्वस्यापि जातिशून्यत्वे सति संयोगादिनिष्ठत्वरहितत्वे सति समवेतत्वात्। लक्षणं तु समवेतवत्त्वरहितत्वे सत्यकैकसमवेतो विशेष इति। यद्वा समवेतवत्त्वरहितसर्वान्योन्या-भावसमानाधिकरणत्वरहितः समवेतो विशेष इति। सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणं यत् समवेतं तत्र तत्वं धर्मः, तदनधिकरणत्वस्याभ्युपेतत्वान्नातिव्याप्तिरिति पूर्वमपि रमणीयम्। विशेषसिद्धिस्तु कालः कालनिष्ठसमवेतवत्त्वरहित-जातित्वरहितसमवायाश्रयो द्रव्यत्वाद् घटवत्। कालः कालनिष्ठ गुणत्वरहितजातित्वरहितसमवायाश्रयो द्रव्यत्वाद् घटवदिति विशेषः।

समवायं लक्षयति **नित्यः सम्बन्धः समवाय इति।** न च नित्यप्रतियोगिकविशेषणविशेष्यभावेन व्यभिचारः। सम्बन्धत्वं भावमात्रवृत्ति वृत्तित्वे सत्यसम्बन्धावृत्तित्वात् संयोगत्ववदिति, तत्सम्बन्धत्वस्यैव प्रतिक्षिप्तत्वात्। न च तस्य भावत्ववाचोयुक्तिर्युक्तिमती भावान्तरत्वस्य शङ्कितुमशक्यत्वादन्यथा तु संयोगसमवायान्यतरत्वप्रसङ्गे बाधादाद्यप्रतिषेधे चरम एव पर्यवस्यतीति कथं व्यभिचार इत्यन्वेषणीयम्। न च भावत्वमपि अभाववृत्तित्वादिति ध्येयम्। कथं तर्हि अभावग्रहणमिति चेत् सम्बन्धमन्तरेणैवेति गृहाण। न चासम्बन्धिग्रहणे

ऽतिप्रसङ्गः। प्रतियोग्यन्तरप्रतियोगिग्राहककारणकलापस्य नियामकत्वात्। न च मानाभावः। एते तन्तव एतत्पटसम्बद्धा एतदाश्रयत्वाद् भूतलवत्। इह गवि गोत्वमित्यादिप्रत्ययो वा एतज्जनकसंयोगत्वरहितसम्बन्धजन्य एतदिहेतिप्रत्ययत्वादिह कुण्डे बदराणीतिप्रत्ययवदिति। न च संयोगकार्यत्वमुपाधिः, साधनव्यापकत्वात्। चक्षुर्मनःसंयोगजन्यत्वस्य बाधाभावेन साधयितुं शक्यत्वात्। न चेह भूतले घटो नास्तीत्यादौ व्यभिचारः, तस्यापि चक्षुर्भूतलसंयोगात्ममनःसंयोगादिजन्यत्वस्येष्टत्वात्। विपर्यये किं बाधकमिति चेत् सम्बन्धकारणाभावे तत्कार्यस्येह प्रत्ययस्यैवाभावप्रसङ्ग इति सन्तोष्टव्यम्। वल्लभाचार्यास्तु जात्यादिगोचरो विशिष्टव्यवहारः सम्बन्धनियतो भावमात्रविषयाबाधितविशिष्टव्यवहारत्वात् सघटं भूतलमितिव्यवहारवत् सामानाधिकरण्यज्ञानमबाधितसम्बन्धज्ञानपुरःसरमबाधितसामानाधिकरण्यज्ञानत्वात्। दण्डकुण्डले देवदत्तसंसृष्टे इतिज्ञानवदित्याहुः। न च समवायिनावित्यत्र व्यभिचारः, तत्रापि सम्बन्धप्रतिभासनात्। न चानवस्था, तत्र सम्बन्धप्रतीतेरारोपितत्वात्। जात्यादावप्यारोपितास्त्विति चेत्, न। तथा सत्यारोपस्यैवानुपपत्तेरारोप्यसम्बन्धस्यैवाभावात्। न च संयोगारोपः युतसिद्ध्यभावलक्षणविशेषधर्मदर्शनात्। सिध्यतु वा तत्राप्यनारोपितः सम्बन्धः। न चानवस्था दोषस्य तस्य नित्यतया परस्परानपेक्षवित्तितया चोत्पत्तिज्ञप्त्योरप्रतिबन्धात्। एतेन समवायः स्वतन्त्रः परतन्त्रो वेति यौक्तिको बाधः प्रत्युक्तः। विस्तरस्तु शास्त्र इत्युपरम्यते।

समवेतत्वरहितसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणभावो वा समवायः।

नञर्थप्रत्ययविषयोऽभावः। स चतुर्धा भिद्यते प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति।

अभावं लक्षयति नञर्थेति। न च नञर्थानिरुक्तिः द्रव्यादिषड्लक्षणषडत्यन्ताभाववत्त्वस्य तत्त्वात्।

उत्तरैकावधिरभावः प्रागभावः।

उत्तरत्वं च स्वाधिकरण कालानन्तरकालसंसर्गित्वम्। तथा च स्वाधिकरणकालानन्तरकाल-संसर्ग्येवावधिर्यस्याभावस्य स प्रागभाव इत्यर्थः।

पूर्वैकावधिरभावः प्रध्वंसाभावः।

पूर्वत्वं च स्वानधिकरण-कालत्वानधिकरणयावत्कालाव्यवहित-प्राक्कालसंसर्गित्वम्।

तादात्म्यप्रतियोगिकोऽभावोऽन्योन्याभावः। तादात्म्य संबन्धावावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावो वा।

तादात्म्यप्रतियोगिकत्वं च तादात्म्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमिति न तादात्म्यप्रतियोगिके तादात्म्यात्यन्ताभावे ऽतिव्याप्तिः।

उभयावधिरहितः संसर्गाभावोऽत्यन्ताभावः।

अत्र च संसर्गाभावत्वं न संसर्गप्रतियोगिकाभावत्वमपि तु संसर्गावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावत्वम्। तेन पटः संसर्गो नेति संसर्गप्रतियोगिके ऽन्योन्याभावे नातिव्याप्तिरिति सर्वमनवद्यम्।

तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु (९०६) शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्।।
विद्यासन्ध्योदयोद्रेकादविद्यारजनीक्षये।
यदुदेति नमस्तस्मै कस्मैचिद्विश्वतस्त्विषे।।

इति श्रीमदुदयनाचार्यविरचिता लक्षणावली

समाप्ता।

सगर्वगर्वदलनशेषः शार्ङ्गधरः सुधीः।
चकार लक्षणावल्या विवृतिं कृतिनां मुदे।।

इति श्रीशेषशार्ङ्गधरविरचितायामुदयनलक्षणावलीटीकायां न्यायमुक्तावल्यामभावपदार्थः समाप्तः।

□□

लक्षणावलीप्रकाशः।

प्रणम्य पार्वतीनाथं नित्य विज्ञानमीश्वरम्।
द्रव्यादि सर्वमेयानां करिष्ये लक्षणावलीम्।।

प्रणम्य जानकीं भक्त्या विविच्य लक्षणावलीम्।
परिष्करोति तां श्रीमान् विश्वनाथो द्विजः सुधीः।।

तटस्थलक्षणस्वरूपलक्षणाभ्यां ब्रह्मोपलक्षयन् शिष्टाचारपरम्परापरिप्राप्ताभिमतसमयकर्त्तव्यताकमिष्टदेवतानमस्काररूपं मङ्गलं कुर्वन्नेव ग्रन्थनामाह **प्रणम्येति**। स्वावधिकोत्कर्षप्रकारकज्ञानानुकूलव्यापारः प्रपूर्वकणमधात्वर्थः। अस्य ल्यबर्थ उत्तरकालीनत्वेऽन्वयः। ल्यबर्थस्य च कृधात्वर्थे कृतावन्वयः। णमधात्वर्थैकदेशे ज्ञाने द्वितीयार्थस्य पार्वतीनाथान्वितविषयत्वस्य विषयित्वस्य वाऽन्वयः। नित्यविज्ञानेश्वरपदार्थयोर्नित्यसर्वविषयकज्ञानजगत्कर्तृत्व-विशिष्टयोरभेदेन **पार्वतीनाथे**ऽन्वयः। अत्र **विज्ञानपार्वतीनाथयो**रभेदान्वयो वेदान्तिनामेव शोभते। न्यायमते च नित्यविज्ञानपदं सर्वविषयकनित्यज्ञान विशिष्टपरम्। एतच्चाग्रे व्यक्तीभविष्यतीति। **द्रव्यादी**त्यत्रादिपदं गुणकर्म्मसामान्य विशेषसमवायाभावपरम् **मेयपदं** पदार्थपरम्। कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन न्यूनसंख्याविषयक-तात्पर्य्यग्रहनिरासाय **सर्वेति**। मेयपदार्थान्वितवृत्तित्वं षष्ठ्यर्थः। अस्य च लक्षणसम्बन्ध्येकदेशे लक्षणपदार्थे समानासमान-जातीयव्यवच्छेदेऽन्वयः। **आवली** परम्परा अत्रैव लक्षणसम्बन्धिनोऽन्वयः। आवल्याश्च द्वितीयार्थे विषयितायामन्वयः। विषयितायाश्च कृधात्वर्थे कृतावन्वयः। कृतेश्चाध्याहृतो**दयनाचार्य्य**पदार्थेऽन्वयः। तथाच नित्यसर्वविषयक ज्ञानाभिन्नेश्वराभिन्नपार्वतीनाथ-निरूपितविषयिताविशिष्टस्वावधिकोत्कर्षप्रकारकज्ञानानुकूलव्यापारोत्तर-कालीनद्रव्याद्याभिन्नसर्वपदार्थवृत्ति-लक्षणसम्बन्ध्यभिन्नावलीविषयक कृतिमानु**दयनाचार्य** इत्यन्वयबोधः।।१।।

अभिधेयः पदार्थः स द्विविधः भावाभावभेदात्।

पदार्थं निरूपयति **अभिधेय इति। अभिधेयः** पदशक्यः। पदशक्यत्वञ्च पदादर्थो बोद्धव्य इति भगवदिच्छीयपदजन्यबोधविषयतात्वावच्छिन्न-प्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वं पदार्थान्तरम्वेति। पदार्थं विभजते **स द्विविध इति**।

स पदार्थः द्विविधः द्विप्रकारक इत्यर्थः। विधादिपदसमभि व्याहत-संख्यावाचकैकद्व्यादिपदानामुद्देश्यतावच्छेदकसमनियतवस्तुविशिष्टान्य संख्यापरत्वान्न द्रव्यत्वादिगतसंख्यामादाय त्रिविध इत्याद्यापत्तिः।

व्यापकता चात्र स्वाश्रयवत्तासम्बन्धेन। स्वमत्र संख्यापरं, व्याप्यता च स्वरूपसम्बन्धेन ग्राह्या। वस्तुवैशिष्ट्यञ्च स्ववृत्तित्व स्वविशिष्टवृत्तित्वोभय-सम्बन्धेन। सम्बन्धघटकस्ववैशिष्ट्यञ्च स्वभिन्नत्वस्वसामानाधिकरण्योभय-सम्बन्धेन। स्वमत्र वस्तुपरम् एवमग्रेऽपि। **भावाभावभेदादिति।** भेदो धर्म्मविशेषोऽन्योन्याभावो वा। तथा च पदार्थः पदार्थत्वसमनियतवस्तु-विशिष्टान्यसंख्यावान् भावाभाववृत्तिधर्म्मविशेषवत्वात्। भावप्रतियोगिक-भेदाभावप्रतियोगिकभेदान्यतरवत्वाद्वेति संप्रयोगः।

तत्र नञर्थविषयत्वरहितप्रत्ययविषयो भावः। स च षोढा द्रव्यादिभेदात्।

भावन्निरूपयति **तत्रेति। तत्र** द्वयोर्म्मध्ये नञर्थोऽभावो विषयो यस्य स तथा, तस्य भावस्तत्वं तच्छून्यत्वम् तद्रहितत्वम्। तथाच नञर्थनिष्ठविषयताशून्य प्रत्ययविषयतावान् भाव इत्यर्थः। भावो लक्ष्यः अन्यं लक्षणम्। रामोऽयं कृष्णोऽयं शिवोऽयं, द्रव्यं गुणः कर्म्म सामान्यं विशेषः समवायः इति प्रत्ययानां तथाविधतया लक्षणसमन्वयः।

अभावेऽतिव्याप्तिवारणाय शून्यान्तं प्रत्ययविशेषणम्। प्रत्ययविषयत्वानुपादाने तत्रैवातिव्याप्तिरतस्तदुपादानम्। न च नञर्थनिरूपितविषयित्वानिरूपकत्वकथनादेवातिव्याप्तिवारणसम्भवादलं प्रत्ययविषयत्वोपादानेनेति वाच्यम्। वन्ध्यापुत्रादावतिव्याप्तेस्तस्यापि तत्वात्। न च परमते तुच्छादेरसत्ख्यात्यात्मक प्रत्ययविषयत्वात् तद्दोषतादवस्थ्यामिति वाच्यम्। प्रत्ययपदस्य सत्ख्यात्यर्थकत्वात्। वस्तुतस्तु विषयत्वस्याधेयत्वस्य कालसम्बन्धस्य वा व्याप्यतया वन्ध्यापुत्रादौ कालसम्बन्धविरहेण विषयत्वविरहान्न दोषः। अथ घटाद्यभावाभावस्य घटात्मकस्य घटाभावो नास्तीत्यत्र नञर्थतया तन्निरूपितविषयिताशून्यत्वस्य घटादिप्रत्यये विरहेणासम्भव इति चेन्न नञर्थतावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नविषयिताशून्यत्वस्य शून्यान्तेन विवक्षणीयत्वात्। घटाभावाभावत्वावच्छिन्ननिरूपितविषयिताशून्यत्वस्य घट इत्याकारकप्रत्यये

सत्त्वान्नासंभवावकाशः। न च प्रमेयमभिधेयमित्यादिप्रत्ययानां तथा विधतयाऽभावे निरुक्तातिव्याप्तिस्तदवस्थैवेति वाच्यम्। नञर्थतावच्छेदकवृत्तिधर्मावच्छिन्न विषयताशून्यत्वस्यापि प्रत्ययविशेषणत्वात्। प्रमेयत्वादेस्तथाविधतया तदवच्छिन्न विषयिताशून्यत्वस्य प्रमेयमित्यादिप्रत्यये विरहाददोषः। नञर्थतावच्छेदकवदन्य विषयतावत्त्वस्य पर्यवसितभावत्वात्। अवच्छेदकवत्ता च स्वावच्छिन्नत्व स्वसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नत्वान्यतर सम्बन्धेन। स्वमत्र नञर्थतावच्छेदकपरम्। अन्यतरसंबन्धघटकसामानाधिकरण्यं च समवेताननुयोगिकस्वरूपेण। तेन सामान्यादावव्याप्तिव्युदासः। जातित्वस्य तद्व्याप्यस्य च समवेतानुयोगिक स्वरूपेण जात्यभावाभावत्व सामानाधिकरण्येऽपि समवेताननुयोगिकस्वरूपेणा समानाधिकरणत्वात्। वस्तुतस्तु अभावाभावोऽभावः इति प्रत्ययस्य प्रमात्वानुरोधेन घटाभावाभावस्य घटानात्मकत्वस्यावश्यमभ्युपगम्यत्वेन यथाश्रुतस्यैव सम्यक्त्वात्। अतएव भावाभावत्वाभ्यां विभागोऽप्युपपद्यते। अन्यथाऽभावत्वस्य भावत्वसमानाधिकरणतया विरुद्धधर्मप्रकारेण धर्मिप्रतिपादनस्य विभागस्यानुपपत्तेरिति दिक्।

भावं विभजते स षोढेति। **स** भावः **षोढा** षट्प्रकारक इत्यर्थः। **द्रव्यादी**त्यत्रादिपदं गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायपरम्। अन्यत् सर्वं पूर्व वदूहनीयम्।

अथ शक्तिसादृश्यादीनामतिरिक्तानां सत्त्वात् स षोढेत्यस्यासङ्गतिः। तथाहि दाहं प्रति वह्नित्वेन कारणत्वे चन्द्रकान्तमणिमहौषध्यादिसमवधाने वह्निसद्भावेऽपि दाहाभावाद् व्यभिचारभयेन शक्तिः स्वीकार्या, सा च नित्ये नित्याऽनित्येऽनित्या।

नित्ये नित्यैव सा शक्तिरनित्ये हेतुभावजेति सिद्धान्तात्। तथाच दाहं प्रति दाहानुकूलशक्तिमत्वेन कारणत्वे मण्यादिसमवधाने तस्याविनाश्यत्वान्न व्यभिचारावकाशः। एवं सादृश्यमपि न षड्भावेष्वन्तर्भवति। अभावेऽपि सादृश्यप्रतीतेः। **भावो यथा तथाऽभावः कारणं कार्य्यवन्मत** इत्यनेन स्वयमेव **कुसुमाञ्जलिग्रन्थे** भावसादृश्यस्याभावेऽभिधानात्। नाप्यभावेऽन्त र्भविष्यत्यभावभिन्नत्वेन प्रतीयमानत्वादिति चेन्न प्रतिबन्धकीभूत तत्तन्मण्याद्यभावकूटविशिष्टवह्नित्वेन तत्तन्मण्याद्यभावकूटत्वेन वा स्वातन्त्र्येण दाहं प्रति कारणत्वान्न व्यभिचारावकाशः। अनन्तशक्तिस्वीकारे अनन्त शक्तितद्ध्वंसतत्प्रागभावकल्पनेन गौरवप्रसंगात्। किञ्च दाहानुकूलत्वं यदि

दाहजनकतावच्छेदकत्वं तदा स्वस्य स्वावच्छेदकत्वेनात्माश्रयः। यदि परिचायकन्तदित्युच्यते तदा शक्तेरानन्त्यादेकरूपेण कारणत्वावच्छेदकत्वे तद्विनाशे वह्नेरकारणत्वापत्तिः। यावच्छक्तिमत्वस्यैकदाऽसम्भवात्। किञ्च तादृशशक्तेरतीन्द्रियतया तत्प्रत्यक्षाद्यभावेन कारणताग्रहासम्भवात्। अवच्छेद्यग्रहस्यावच्छेदकग्रहाधीनत्वादिति।

अथ सूर्य्यकान्तमणिसद्भावे चन्द्रकान्तमणिसमवधानदशायामपि दाहजननात् प्रतिबन्धकाभावविशिष्टवह्नेरसत्वेन व्यभिचारस्तदवस्थ एवेति चेन्न उत्तेजकाभावविशिष्ट मण्याद्यभावविशिष्टवह्नित्वेन कारणत्वात्। अथवा उत्तेजकाभाव-विशिष्टमण्याद्यभावकूटत्वेन कारणात्वान्न व्यभिचारावकाशः। एवं सादृश्यमपि नातिरिक्तः पदार्थः। किन्तु तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्म्मवत्वम्। तस्य क्वचिद्भावे क्वचिदभावेऽन्तर्गतत्वादिति। अथ तथापि प्रतियोगितातत्वानुयोगिता-तत्वाधिकरणतातत्वाधेयतातत्वविषयतातत्वाविषयितातत्वप्रकारतातत्वप्रकारिता-तत्वावच्छेदकतातत्वावच्छेदकितातत्वजनकतातत्वजन्यतातत्वस्वत्व-स्वामित्वादीनामतिरिक्तानां सत्वात् स षोढेत्यसंगतिस्तदवस्थैवेति चेन्न, मोक्षजनकीभूतं संसारनिदानमिथ्याज्ञानोन्मूलनक्षमं यदनुयोगितया प्रतियोगितया वा आत्मतत्वज्ञानं तत्प्रयोजकताद्रव्यादिसप्तपदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्यप्रकारेण ज्ञानानामेवेति, तेषामेव लक्षणप्रकारेण निरूपणं विभागश्चावश्यक इति पूर्व्वोक्तानामतथाभूततयाऽनिरूपणीयत्वात्, विभागानर्हत्वाच्चेति दिक्।

केचित्तु प्रतियोगित्वादीनं प्रतियोग्यवच्छेदकाधिकरणाधेय ज्ञानविषयादिस्वरूपाणां यथायथमभ्युपगमान्नातिरिक्तावकाश इत्याहु स्तच्चिन्त्यम्।

तत्रानित्यद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषाः समवेताः। नित्य द्रव्यसमवायाभावाः समवेतत्वरहिताः। द्रव्यगुणकर्माणि समवेतवन्ति। सामान्यविशेषसमवायाभावाः समवेतरहिताः।

अनित्यद्रव्यगुणकर्म्मसामान्यविशेषान्निरूपयति **तत्रेति** षड्भावेष्वित्यर्थः। अनित्यद्रव्यमाकाशकालदिगात्ममनःपरमाणुभिन्नं द्रव्यं जन्य पृथिवीजलतेजोवाय्वात्मक द्रव्यमिति यावत् **समवेताः** समवायसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तितावन्त इत्यर्थः। नित्यद्रव्यसमवायाभावान्निरूपयति **नित्येति** समवेतत्वरहिताःसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाववन्त इत्यर्थः।

द्रव्यगुणकर्म्माणि निरूपयति **द्रव्येति। समवेतवन्तीति** समवायसम्बान्धावच्छिन्न-वृत्तिताश्रयवन्तीत्यर्थः। सत्तावन्तीतियावत्। सामान्यविशेषसमवायाभावान्निरूयति **सामान्येति।** समवेतरहिताः समवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावदभाववन्त इत्यर्थः।

अत्र गुणात्यन्ताभावानधिकरणं द्रव्यम्।

द्रव्यं निरूपयति **अत्रेति** एतस्मिन्निति। अत्र अन्तर्गतत्वं सप्तम्यर्थः। षड्भावान्तर्गतद्रव्यमिति यावत्। गुणस्यात्यन्ताभावः गुणात्यन्ता-भावस्तस्यानधिकरणन्तत्।

तथाच गुणत्वेतरधर्मानवच्छिन्नगुणत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वेतरधर्म्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवदित्यर्थः। तेन न विशेषगुणाभावोभयाभावादिकमादायासम्भवावकाशो न वा विशेषभेदोभयभेदमादाय गुणादावतिव्याप्त्यवकाशस्तदीयप्रतियोगितायामितरधर्म्मानवच्छिन्नत्वबाधात्। ननु गुणभेदस्य द्रव्ये सत्वादसम्भवप्रसङ्गादित्यत आह **अत्यन्तेति।** भेदेऽत्यन्ता-भावत्वविरहान्नासम्भवावकाश इति भावः। ननु संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकगुणाभावस्य द्रव्ये सत्वेनासम्भववारणाय समवायसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकत्वस्यावश्यं विवक्षणीयतया तेनैव भेदव्युदाससम्भवादलमत्यन्तपदोपादानेनेति चेन्न व्यधिकरणसंसर्गावच्छिन्नत्वस्यैतन्मते प्रतियोगितायामनभ्युपगमात्। न च तथापि घटानुयोगिकसमवायेन गुणाभावस्य पटादौ सत्वेनाव्याप्तिरिति वाच्यम्, विशेषरूपेण संसर्गत्वस्यानभ्युपगमात्। अथ तथापि कालिकेन गुणात्यन्ताभावस्य नित्यद्रव्ये सत्वेन तदनधिकरणत्वस्य तत्र विरहेण तत्राव्याप्तिवारणाय तस्यावश्यकतया तेनैव भेदव्युदाससम्भवादिति चेन्न, तल्लाभायैव तस्योपादानात्। **केचित्तु** अत्यन्तपदञ्चात्यन्ताभावत्वनिरूपकत्वस्य गुणत्वावच्छिन्नप्रतियोगितायां लाभायान्यथाधर्म्मिभेदधर्म्मात्यन्ताभावयोरैक्येन गुणभेदेऽपि समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्य सत्वेन तमादायासम्भवतादवस्थ्यादिति। तथा चात्यन्ताभावत्वनिरूपकसमवायसम्बन्धा-वच्छिन्नगुणत्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकाभावत्वावच्छिन्नाधिकरणतावदन्यत्वस्य पर्य्यवसितत्वान्नासम्भवावकाश इत्याहुः। अथ निर्गुणं द्रव्यमुत्पद्यते इति नियमात् गुणात्यन्ताभावस्योत्पत्तिकालावच्छेदेन घटादौ सत्वेन भेदस्य व्याप्यवृत्तितया तदधिकरणभिन्नत्वस्य तत्र विरहेण तत्राव्याप्तिरिति चेन्न, **प्राचाम्मते**ऽत्यन्ताभावस्य

ध्वंसप्रागभावयोरधिकरणेऽनभ्युपगमात्। ध्वंसप्रागभावेनापि समं तस्य विरोधादव्याप्त्यभावात्। एतत्सूचनायैवात्यन्तपदमुपात्तमिति **कश्चित्।**

मूर्तत्वरहितसमवेतसमवेतत्वरहितमूर्तत्वरहितामूर्तत्वरहित समवेतजातिमद्वा।

ननु **नवीनैः** प्रागभावादिनाऽत्यन्ताभावस्य विरोधानभ्युपगमादुक्ता-व्याप्तिरित्यतो द्रव्यत्वलक्षणपूर्वकं द्रव्यस्य लक्षणान्तरमाह **मूर्त्तत्वेति। केचित्तु** ननु निरवच्छिन्नस्वरूपेण गुणाभावाधिकरणत्वविवक्षणेनोक्ताव्याप्त्यवकाशाभावेऽपि अभावस्य तल्लक्षणत्वमुक्त्वा भावस्य लक्षणत्वमाह **मूर्त्तत्वेत्यादि।** मूर्त्तत्वं परिमाणाश्रयत्वे सति परममहत्परिमाणानाश्रयत्वमपकृष्टपरिमाणाश्रयत्वम्वा तत्।

पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि मूर्त्तानि, तद्भिन्नाः अमूर्त्ताः। अमूर्त्तत्व मपकृष्टपरिमाणानाश्रयत्वम्। तथा च मूर्त्तत्वसामान्याभाववन्निरूपितसमवाय सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तितावन्निरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाववत्वे सति मूर्त्तत्वसामान्याभाववन्निरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावत्वे सति अमूर्त्तत्वसामान्याभाववन्निरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावज्जातिर्द्रव्यत्वं तदाश्रयो द्रव्यमिति पर्य्यवसितलक्षणार्थः। द्रव्यत्वलक्षणे सत्तायामतिव्याप्तिवारणाय प्रथमसत्यन्तं, पृथिवीत्वादावतिव्याप्तिवारणाय द्वितीयसत्यन्तम्, आत्मत्वादावति-व्याप्तिवारणाय तृतीयं जातिविशेषणं, घटात्मगतद्वित्वादावतिव्याप्तिवारणाय जात्युपादानं, द्रव्यलक्षणे च सत्तामादाय गुणादावतिव्याप्तिवारणाय प्रथमसत्यन्तं, द्वितीयसत्यन्तानुपादाने अमूर्त्तत्वरहितमर्थान्मूर्तं पृथिव्यादि तत्समवेतत्वेन।

झटित्युपस्थितिकपृथिवीत्वस्य मनस्त्वस्य वात्मन्याका शादावसत्वेना-व्याप्तिशङ्का स्यात्, तच्छङ्कानिवारणार्थं तदुपादानम्। **केचित्तु** द्वितीयसत्यन्तानुपादाने पृथिवीत्वादेरपि तादृशजातितया तस्य जलादौ आकाशादौ चासत्वेन लक्षणे लक्ष्यैकदेशनिष्ठाभावप्रतियोगित्वेन लक्षणे लक्ष्यवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वप्रसंगेन रूपवत् तस्य तल्लक्षणत्वानुपपत्तिः। नहि लक्षणे लक्ष्यवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं क्वचिदपीष्टं, यत्यद्वृत्त्यत्यन्ताभाव-प्रतियोगि तन्न तल्लक्षणमित्यनुभवात्। किञ्च लक्षणस्य नानात्वापत्तिरेकत्वानुपपत्तिश्च स्यात्, तृतीयानुपादाने रूपत्वस्यापि तादृशजातितया तद्वत्वस्य रूपादौ सत्वेन रूपादावतिव्याप्तिरतस्तदुपदानम्। तथा चामूर्तत्वरहितघटादिसमवेतत्वस्य

रूपत्वादौ विरहेण रूपत्वादेस्तादृशजात्यनन्तर्गतत्वात्। जात्यनुपादाने च कालिकेन द्रव्यत्वस्य क्रियादौ सत्वेन तत्रातिव्याप्तिरतस्तदुपादानम्, समवायसंबन्धेन तद्वत्वस्य लाभाय। **केचित्तु** आत्ममनःसंयोगस्यापि तथाविधतया पूर्वोक्तरीत्या लक्षणत्वानुपपत्तिः। अनेकत्वापत्तिरेकत्वानुपपत्तिश्च स्यादतस्तदुपादानमित्याहुः। एवञ्च मूर्त्तत्वाभाववदाकाशादिनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तितावच्छब्द ज्ञानादिनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वशून्यत्वस्य मूर्त्तत्वरहिताकाशादिसमवेतत्वस्य अमूर्त्तत्वाभाववत्पृथिव्यादिनिरूपित-समवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावत्वस्य द्रव्यत्वजातावेव सत्वेन तद्वत्वस्य नव द्रव्ये सत्वाल्लक्षणसमन्वयः।

गन्धासमवेतगगनारविन्दसमवेतजातिमद् वा।

लाघवाल्लक्षणान्तरमाह **गन्धासमवेतेति।** गगनञ्चारविन्दञ्च ते, तयोस्स मवेता इति द्वन्द्वात् गगनसमवेतारविन्दसमवेतयोर्लाभः। तथा च गन्धनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वसामान्याभाववत्वे सति गगननिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावत्वे सत्यरविन्दनिरूपितसमवाय सम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावज्जातिमद्द्रव्यमिति समुदितलक्षणार्थः।

द्रव्यं लक्ष्यमन्यल्लक्षणं, सत्ताजातिमादाय गुणादावतिव्याप्तिवारणाय जातिविशेषणतया **गन्धासमवेतत्वस्यो**पादानम्। सामान्याभावानुपादाने विशेषाभावो भयाभावादिकमादायोक्तातिव्याप्तिरतस्तदुपादानम्। समवायसम्बन्धावच्छिन्नत्वानुपादाने कालिकेन गन्धादौ द्रव्यत्वस्यापि सत्वेना सम्भवः स्यादतस्तदुपादानम्। अरविन्दसमवेतत्वेन झटित्युपस्थितिकारविन्दत्व-जातेर्घटादावसत्वेनाव्याप्तिशङ्का स्यादतस्तन्निरासार्थं **गगनपदो**पादानम्। अथवारविन्दसमवेतत्वस्य विशेषणतया लक्षणघटकत्वे घटादावव्याप्तिर-तस्तस्योपलक्षणतया निवेशसूचनाय **गगनेति।**

केचित्तु पूर्वलक्षणवदत्रापि लक्षणत्वानुपपत्त्यादिदोषस्य दुरुद्धरत्वनिरासाय तस्योपादानमित्याहुः। अरविन्दसमेवतत्वस्यानुपादाने गगनसमेवतत्वस्य विशेषणतया लक्षणप्रविष्टत्वे घटादावव्याप्तिरतस्तस्योपलक्षणत्वसूचनाय तस्योपादानम्। **वाचालास्तु** आकाशस्य यथाभेदस्त्रिविधो दृश्यते महानिति वदन्तो गगनत्वस्य जातित्वमभ्युपगच्छन्तो गगनसमवेतत्वेन झटित्युपस्थितिक

गगनत्वजातेर्घटादावसत्वेनाव्याप्तिं ये पश्यन्ति तान् प्रत्याहारविन्देतीत्याहुः। द्रव्यत्वलक्षणे गगनारविन्दोभयत्वेऽतिव्याप्तिनिरासाय जात्युपादानम्। अरविन्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गगनेत्यस्योपादानमिति। द्रव्यलक्षणे समवायेनाश्रयत्वलाभाय जात्युपादानम्। अन्यथा कालिकेन द्रव्यत्वस्य क्रियादौ सत्वेनातिव्याप्तिप्रसंगात्। विरोधाभासालंकारसूचनाय गगनारविन्दोपादानम्। विरोधो यथा गगनसम्बन्धाभावोऽरविन्दे, परिहारश्च द्वन्द्वाश्रयणात् द्रव्यत्वावा न्तरजातिशून्येषु प्राथम्याद्गगनस्योपादानम्, पुष्पेषु प्राधान्यादरविन्दोपादानमिति।

समवेतसमवेतसमवेतं वा।

अस्मादपि लाघवाल्लक्षणान्तरमाह **समवेतेति**। समवेतः सामान्यं समवेतो यत्र गुणादौ स गुणादिः समवेतो यत्र द्रव्ये तत् समवेतसमवेतसमवेतमित्यर्थः। तथा च स्वप्रतियोग्याश्रयवत्वसंबन्धेन समवायवद् द्रव्यमित्यर्थः। प्रतियोग्याश्रयवत्ता च समवायसम्बन्धेन, द्रव्यं लक्ष्यमन्यल्लक्षणम्। समवायप्रतियोगिसामान्याश्रयगुणवत्वस्य द्रव्ये सत्वेन तेन सम्बंधेन समवायवत्वस्य द्रव्य एव सत्वाल्लक्षणसमन्वयः। स्वरूपेण समवायवत्वोक्तौ गुणादावतिव्याप्तिरतः स्वप्रतियोग्याश्रयवत्त्वसंबन्धेन तद्वत्त्वमित्युक्तम्। वस्तुतस्तु समवायवद् द्रव्यं तेन सम्बन्धेन सत्तावद् द्रव्यमित्यत्र वा तात्पर्य्यम्।

केचित्तु शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं लक्षणान्तरमाह **समवेतेति**, द्रव्यमित्यनुषज्यते। ननु कपालसमवेतघटसमवेतरूपसमवेतत्वस्य रूपत्वादौ परमाणुसमवेतद्व्यणुकसमवेतत्रसरेणुसमवेतत्वस्य रूपादौ सत्वेनातिव्याप्तिः। नित्यद्रव्यादावसत्वेनाव्याप्तिश्च स्यादिति चेन्न गन्धासमवेतजात्युभयोरप्यनुषङ्गः। तथा च गन्धासमवेततत्समवेततत्समवेतसमवेतजातिमद् द्रव्यमिति समुदितलक्षणार्थः। तत्समवेततत्समवेतसमवेतञ्च वस्तुविशिष्टम्। वैशिष्ट्यञ्च स्वसमवेतत्वस्वसमवेतसमवेतत्वोभयसम्बन्धेन। स्वमत्र वस्तुपरं परमाणुद्व्यणुकादिविशिष्टद्रव्यत्वजातिमत्वस्य द्रव्ये सत्वाल्लक्षणसमन्वयः। सत्ताव्यावृत्त्यर्थं **गन्धासमवेतेति**। रूपत्वादिव्यावृत्त्यर्थं स्वसमवेतत्वेत्याद्युभय-सम्बन्धोपादानमित्याहुस्तच्चिन्त्यम्। **यत्तु** द्रव्यत्ववद्द्रव्यं गुणवत् द्रव्यमिति, तत्तुच्छं प्रथमलक्षणे उद्देश्यतावच्छेदकविधेयतावच्छेदकयोरैक्येन लक्षणवाक्याच्छाब्दानुपपत्तेः। किञ्च लक्षणं द्विविधम्, इतरभेदानुमापकं व्यवहारौपयिकं च। प्रकृते इतरभेदस्य द्रव्यत्वात्मकतया तस्य पक्षे संशयदशायां

द्रव्यत्वात्मकहेतोस्सन्दिग्धत्वेन परामर्शासम्भवादनुमित्यनुपपत्तेरितर-भेदानुमापकत्वायोगात्। द्वितीयलक्षणे उत्पत्तिकालीनघटादावव्याप्तिः, क्षणमगुणं द्रव्यं तिष्ठतीति न्यायात्। **अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निःक्रिया गुणा** इत्यादि। तदभिप्रेतलक्षणेनान्योन्याश्रयश्च। एवं गुणस्य नानात्वेन चालिनिन्यायेन द्रव्यनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वेन पूर्वोक्तयुक्त्या लक्षणत्वव्याघातश्च स्यादिति दिक्।

शङ्करमिश्रास्तु नित्यवृत्तिनित्यावृत्तिनित्यवृत्तिसत्तासाक्षाद्व्याप्य-जातिर्द्रव्यत्वम्। तद्योग्यं द्रव्यं गुणत्वव्यावृत्त्यर्थं नित्यवृत्तिनित्यावृत्तीति। कर्मत्वव्यावृत्त्यर्थं नित्यवृत्तीति। पृथिवीत्वादिव्यावृत्त्यर्थं साक्षादिति **वादिविनोदे** द्रव्यलक्षणं प्राहुस्तच्चिन्त्यम्।

तच्च नवधा भिद्यते पृथिव्यादिभेदात्। तमो द्रव्यं न भवति। आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वात्। आलोकाभाववत्। तमःशब्दवाच्यत्वेन विप्रतिपत्तिविषतया पक्षत्वम्। आलोकाभावशब्दवाच्यत्वेन संप्रतिपत्तिविषयतया साध्ययोगित्वेन सपक्षत्वम्।

द्रव्याणि विभजते-**तच्चेति** तत् द्रव्यं **नवधा** नवप्रकारकं, पृथिव्यादिभेदादित्यत्रादिपदं जलतेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनःपरम्। अन्यत्सर्वं पूर्ववद्बोध्यम्।

ननु तमो द्रव्यं नैल्यात्कामिनीकचपुञ्जवदित्यनेन तमसि द्रव्यत्वसिद्धौ गन्धाभावात् पृथिवीमध्ये नीलरूपवत्वाच्च जलादावन्तर्भावासम्भवात् नवविधोक्तिरसंगतेत्यतस्तमसि द्रव्यसामान्यभेदं साधयितुमाह **तमो द्रव्यं न भवतीति**। द्रव्यसामान्यभेदवद्भवतीत्यर्थः। हेतुकोटिप्रविष्टालोक **निरपेक्षत्वा**नुपादाने चक्षुरिन्द्रिय जन्यप्रत्यक्षविषयत्वस्य साध्यशून्ये घटादौ सत्वेन निरुक्तहेतोर्व्यभिचारित्वापत्तेरतस्तदुपादानम्। तथा च घटादेरालोकसहकारेणैव चक्षुर्ग्राह्यत्वान्न व्यभिचारावकाशः। आलोकनिरपेक्षत्वान्न प्रत्यक्षविषयत्वस्य घटादौ व्यभिचारित्वादिन्द्रियसामान्यमुपेक्ष्य चक्षुर्ग्रहणम्। न चालोकाभावस्य दृष्टान्तत्वन्न सम्भवति। पक्षस्य तमसः स्वमते आलोकाभावात्मकतया तस्य साध्यसन्दिग्धत्वात्। साध्यवत्तया निश्चितस्यैव दृष्टान्तत्वादित्यत आह **तम इति**। **तमःशब्दवाच्यत्वं**

तमः पदजन्यबोधविषयतात्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितभगवदिच्छाविषयत्वम-वच्छेदकत्वं तृतीयार्थः। निष्ठत्वसम्बन्धेन प्रकृत्यर्थान्वितस्यास्य संशयीयविषयतात्मक विप्रतिपत्तिविषयतायामन्वयः। विषयतयेत्यत्र वैशिष्ट्यं तृतीयार्थस्तथाच तादृशविषयताविशिष्टःपक्षः। एवमग्रेपि। तथाचालोकाभावशब्दजन्य बोधविषयतात्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितभगवदिच्छानिरूपित विषयत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितनिश्चयीयविषयताविशिष्टो दृष्टान्तः। तस्य द्रव्यभेदप्रकारकनिश्चयविषयत्वेन सपक्षत्वमित्यर्थः।

अयं भावः। तमःपदजन्यबोधविषयतात्वावच्छिन्नप्रकारता-निरूपितभगवदिच्छाविषयताश्रयः पक्षः आलोकाभावपदजन्यबोधविषयतात्वा-वच्छिन्नप्रकारतानिरूपितभगवदि च्छानिरूपितविषयताश्रयो दृष्टान्त इति पक्षतावच्छेदकदृष्टान्ततावच्छेदकभेदेन संशयनिश्चययोस्सम्भवेन पक्षसपक्षयोरैक्यमभेदो न दोषः। तथाच नानुमानानुपपत्तिः।

इति न पक्षसपक्षयोरैक्यं दोषः। तमः शब्दो द्रव्यवाचको न भवति. आलोकशब्दान्यत्वे सति आलोकनिरपेक्ष चक्षुर्ग्राह्यवाचित्वात् आलोकाभावशब्दवत्।

एवं च तमः शब्दवाच्यो द्रव्यं न भवति आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वात् आलोकाभावशब्दवाच्यवदिति संप्रयोगः। पक्षसपक्षयोर्भेदेन तत्त्वावच्छेदकभेदेन च तमः शब्दे द्रव्यवाचकभेदं साधयन्नर्थतस्तमसिद्रव्यभेदसाधकमानान्तरमाह **तमः शब्द इति**। अत्र शब्दमात्रस्य पक्षत्वे गुणशब्दे द्रव्यवाचकभेदसत्वेन सिद्धसाधनापत्तेः। शब्दत्वावच्छेदेन पक्षत्वे द्रव्यशब्दे घटादिशब्दे च द्रव्यवाचकसामान्यभेदसामान्याभावस्य सत्वेन सामानाधिकरण्येन बाधापत्तिः। सामानाधिकरण्येनापि बाधनिश्चयस्यावच्छेदकावच्छेदेनानुमितौ विरोधित्वादनुमित्यसम्भवादत**स्तम** इत्युक्तम्। **तमःशब्द** इत्यस्य तम इत्याकारकशब्द इत्यर्थः। तेनार्थात्मकतमासि वाचकभेदस्य सर्वसम्मततयाऽनुमानस्य वैफल्यमिति प्रत्युक्तम्। द्रव्यवाचकमित्यत्र द्रव्यपदं द्रव्यत्वावान्तरत्वोपलक्षितधर्म्मावच्छिन्नपरम्। अन्यथा द्रव्यत्वविशिष्टनिरूपित वाचकतावदन्यत्वस्य घटपदादाविव तत्रापीष्टत्वात्। नैतावता द्रव्यसामान्यभेदस्य तत्र सिद्ध्यवकाशः। वाचकशब्दघटकधातोर्बोधजनकत्व

प्रकारतानिरूपितभगवदिच्छाविषयत्वमर्थः। आश्रयः कर्तृप्रत्ययार्थः। नञर्थो भेदः। तथा च द्रव्यत्वावान्तरत्वोपलक्षितधर्म्मावच्छिन्नविषयकबोधजनकत्व प्रकारतानिरूपितभगवदिच्छानिरूपितविषयताश्रयसामान्यभेदस्साध्योऽथवा तादृश विषयताश्रयप्रतियोगिकभेदकूटस्साध्यः हेतावालोकशब्दान्तर्भावेण व्यभिचारवारणाया**लोकशब्दान्यत्व**विशेषणम्। घटादिशब्दान्तर्भावेण व्यभिचारवारणाया**लोकनिरपेक्षेति**। तथाचालोकशब्दान्यत्वविशिष्टा-लोकाभावविशिष्टचक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयतावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्न वाचकत्वं हेतुरिति। अथ तमसि द्रव्यत्वसाधकनीलरूपवत्वहेतोस्सद्भावात् द्रव्यभेदसाधकहेतोश्च सत्वादुभयसिद्धिरस्त्वथवा परस्परप्रतिबन्धेनो भयस्यासिद्धिरेवास्तु। नैतावता तमसि द्रव्यभेदसम्पादनमिति चेन्न। तमो न नीलरूपवत् स्पर्शशून्यत्वादाकाशादिवदित्यनेन व्यापकस्पर्शाभावेन तमसि व्याप्य नीरूपाभावसिद्धौ निरुक्तद्रव्यत्वसाधकहेतोः स्वारूपासिद्धत्वेन पक्षधर्म्मत्वग्रहाभावेन च परस्परप्रतिबन्धसम्भावनाया अप्यसम्भवात्। न च नीलं तम इति प्रत्यक्षप्रत्यय सम्भवान्नैवमिति वाच्यं, तस्य भ्रमत्वात्। न च भ्रमस्थले बाधस्य नियमतो दर्शनात् प्रकृते तददर्शनान्न भ्रमत्वमिति वाच्यं नीलं नभ इत्यादौ श्यामोऽहं गौरोऽहमित्यादौ च व्यभिचारेण तादृशनियमस्याप्रामाणिकत्वात्। एवन्तर्हि तमश्चलतीत्यस्यैव तत्साधकत्वमस्तु क्रियाया द्रव्याश्रितत्वात्। नैवमौपाधिकी क्रिया प्रतीतिर्न्न तु स्वाभाविकी, स्वहस्तव्यापारच्छायायां व्यापारदर्शना-दालोकाद्यपसारणाच्चेति। एवन्तर्हि कस्तमः पदार्थस्तेजोऽभावः। वैपरीत्ये विनगमकाभाव इति तु न वक्तव्यं सर्वानुभूतोष्णस्पर्शवत्वस्य वैपरीत्ये बाधकत्वादिति, तमसो द्रव्यत्वे गौरवमपि बाधकम्। अनन्तावयवध्वंस प्रागभावकल्पनस्यावश्यकत्वात्तस्य जन्यत्वे प्रत्यक्षस्यैव प्रमाणत्वादिति दिक्।

तत्र गन्धात्यन्ताभावरहिता पृथिवी। करकासमवेत वाजिविषाणसमवेतजातिमती वा।

नवद्रव्येषु प्रथमोपात्तां पृथिवीं निरूपयति **तत्रेति**। तत्र तेषु मध्ये पृथिवी लक्ष्या रहितान्तं लक्षणम्। गन्धस्यात्यन्ताभाव इति विग्रहे गन्धपदं गन्धत्वावच्छिन्नपरं प्रतियोगित्वमनुयोगित्वम्वा षष्ठ्यर्थः। गन्धत्वावच्छिन्नान्वितप्रतियोगित्वस्या त्यन्ताभावेऽन्वयः। समासघटकगन्धपदस्य गन्धत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कोऽर्थस्तस्यात्यन्ताभावेऽन्वयस्तेनासुरभिप्रतियोगिकाभावस्योत्पलादौ

सुरभिप्रतियोगिकाभावस्य चिरकालमृतमीनादौ सत्वेनासम्भव इति निरस्तम्। निरुक्ताभावद्वये गन्धत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वविरहात्। अत्र गन्धप्रतियोगिकस्य समवायस्य भेदस्य वा पृथिव्यादौ सत्वेनासम्भवप्रसंगादत्यन्ताभावानुशरणम्। ननु व्यधिकरणसंसर्गेण कालिकसंसर्गेण गन्धाभावस्य पृथिवीमात्रे नित्ये वा सत्वेनासम्भवोऽतिव्याप्तिर्वेति[२] चेन्न समवायसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य प्रतियोगितायां निवेशादेवासम्भवादिवारणसम्भवात्। न च संसर्गीयप्रतियोगितायां भेदीयप्रतियोगितायां समवायसम्बन्धावच्छिन्नत्व विरहेणासम्भवविरहात् व्यर्थमेवात्यन्तपदमिति वाच्यं तस्य तल्लाभार्थकत्वात्। **केचित्तु** द्रव्यलक्षणवदत्रापि अत्यन्ताभावत्वनिरूप–कत्वादेर्विवक्षासूचकत्वान्न वैयर्थ्यमिति। पृथिवीत्वलक्षणपूर्वकं पृथिवीलक्षणमाह **करकेति।** द्रव्यत्वादिव्यावृत्त्यर्थं पृथिवीत्वलक्षणे **करकासमवेतत्व**स्योपादानम्, विषाणत्वव्यावृत्त्यर्थं वाजिपदमुपात्तम्। अश्वत्वव्यावृत्त्यर्थं विषाणपदमुपात्तम्। द्वित्वव्यावृत्त्यर्थं जात्युपादानम्। पृथिवीलक्षणे च सत्ताद्रव्यत्वादिकमादाय जलादवतिव्याप्तिनिरासाय **करकासमवेतत्वस्यो**पादानम्। विषाणसमवेतत्वेन झटित्युपस्थितिकविषाणत्वजातेर्घटादावसत्वेनाव्याप्तिशंकानिरासार्थं **वाजिपद**मुपात्तम। वाजिसमवतत्वेन झटित्युपस्थिकाश्वत्वजातेः शृंगादावसत्वेनाव्याप्तिशंकानिरासार्थं **विषाणपदो**पादानम्। समवायेन तद्वत्वलाभाय **जातीति।** अन्यथा कालिकेन पृथिवीत्वस्य जन्यजलक्रियादौ सत्वेनातिव्याप्तिप्रसंगात्। वस्तुतस्तु वाजिविषाणतेजोगतत्रित्वमादाय तेजस्यतिव्याप्तिवारणाय तस्योपादानम्। अन्यत्सर्वं द्रव्यलक्षणवदत्राप्यूहनीयम्।

अथ प्रथमलक्षणे पाषाणादावव्याप्तिस्तत्र गन्धाभावस्यैव सत्वादिति चेन्न तत्रापि गन्धसत्वात्। न च तत्र तस्य सत्वे कथमनुपलब्धिरनुत्कटत्वात्। कथमन्यथा तद्भस्मनि गधस्योपलब्धिः। तद्भस्मनस्तदुपादानोपादेयत्वात्। उपादेय–गुणस्योपादानगुणजन्यत्वादिति पाषाणारम्भकपरमाणौ गन्धसत्वेन पाषाणे तस्य सत्वन्निराबाधमिति। न च पाषाणभस्मनस्तदुपादानोपादेयत्वे मानाभाव इति वाच्यं यद्द्रव्यं यद्द्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयमिति व्याप्त्या पाषाणध्वंसजन्यत्वस्यैव मानत्वात्। दृष्टं चैतन्महापटध्वंसजन्ये खण्डपटादाविति। ननु पाषाणभस्मनि गन्धसत्वेऽपि तस्य तदुपादानोपादेयत्वेऽपि पाषाणे गन्धानभ्युपगमात्। तथाहि गन्धः सुरभ्यसुरभिभेदेन द्विविधः। तदुभयमपि पाकजापाकजभेदेन द्विविधं भस्मनि चाग्निसंयोगजगन्धस्यैव स्वीकारान्नो–

पादानगन्धजगन्धस्तत्राभ्युपेयते। तथा चोपादाने गन्धानभ्युपगमेन पाषाणे गन्धासिद्धिरिति चेदेतदस्वरसेनाह **करकासमवेतेति।** एतेन **विश्वनाथपञ्चाननेन मुक्तावल्यां** गन्धवत्वं यल्लक्षणं कृतं तच्चिन्त्यम्, पाषाणादावव्याप्तिरेव। निरूक्तानुमानेन पाषाणे गन्धस्य सिद्धिरिति यदुक्तं तदपि चिन्त्यम्। एवं गन्धवत्वलक्षणे गन्धस्य नानात्वेन लक्ष्यतावच्छेदकपृथिवीत्व व्यापकत्वानुपपत्तिरनेकत्वापत्तिरेकत्वव्यवहारानुपपत्तिश्च। न च गन्धवत्वं गन्धत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वमिति नोक्तदोषाणामवकाश इति वाच्यम्। अधिकरणभेदेनाधिकरणत्वस्यानेकत्वात्। न च गन्धसमानाधिकरणजातिमत्वं जलादावतिव्याप्तम्, न च द्रव्यत्वव्याप्यनिरूक्तजातिमत्वं तदिति वाच्यं, निरुक्तजात्यन्तर्गतघटत्वपटत्वादीनां पृथिवीत्वाव्यापकत्वेन नानात्वेन चोक्तदोषाणां तादवस्थ्यात्। अथ द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यगन्धसमानाधिकरणजातिमत्वस्य तथात्वान्नोक्तदोषाणामवकाशः। घटत्वादीनां द्रव्यत्वसाक्षात् व्याप्यत्वविरहात्तद्व्याप्यत्वे सति तद्व्याप्याव्याप्यत्वस्य साक्षाद्व्याप्यत्वस्वरूपत्वात्। न च द्रव्यत्वाभाववदवृत्तित्वात्मक द्रव्यत्वव्याप्यत्वस्य द्रव्यत्वेऽपि सत्वेन तदव्याप्यत्वस्य पृथिवीत्वे विरहेणासम्भवप्रसंगादिति वाच्यम्। प्रकृते स्वसमानाधिकरणत्वे सति स्वसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य व्याप्यत्वपदार्थत्वादिति चेन्न आचार्य्यलक्षणापेक्षया गौरवप्रसंगात्। तावतापि गन्धवत्वस्वरूप–लक्षणस्यानुपपत्तेरवारणाच्च। अथ पाषाणे पूर्वोक्तयुक्त्या गन्धानभ्युपगमे तत्र पृथिवीत्वे मानाभावात्तस्य द्रव्यान्तरत्वापत्तिरिति चेन्न, पाषाणं पृथिवी नीलसमानाधिकरणं द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्वात् नीलघटवत्। किञ्च पाषाणं पृथिवीजलान्यत्वविशिष्टगुरुत्वात् घटवदित्याद्यनुमानेन तत्र पृथिवीत्वसिद्धिसम्भवात्। **केचित्तु** पाषाणं पृथिवीजलतेजोव्यतिरेकित्वविशिष्टरूपवत्वादरविन्दवदित्यनेनापि तत्र पृथिवीत्वस्य सिद्धिसम्भवात्। अथ पृथिवीत्वसिद्धौ पाषाणं गन्धवत् पृथिवीत्वादरविन्दवदित्यनुमानेन पाषाणे गन्धसिद्धिसम्भवान्न गन्धवत्वलक्षणे पाषाणादावव्याप्तिरिति चेन्न, गन्धस्यानेकत्वेनोक्तदोषाणां वारणस्याशक्यत्वात्। उत्पत्तिकालीनघटादावव्याप्तेश्च। उपलक्षणातया गन्धवत्वस्य विवक्षणे उपलक्षणत्वस्य प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्न तदभावाभावात्मकस्य गुरुतया गौरवप्रसंगात्। आचार्य्यचरणशरणस्यैवाद्रितत्वप्रसंगाच्चेति दिक्।

पृथिवीं विभजते **सा द्विधेति, सा** पृथिवी, **द्विधा** द्विप्रकारिका, अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। न च परमाणौ मानाभावात् द्विधेत्यसंगतिरिति वाच्यं, त्रसरेणुः सावयवः प्रत्यक्षद्रव्यत्वात् घटवदित्यनेन तस्य सावयवत्वे सिद्धे त्रसरेणोरवयवाः सावयवाः महदवयवत्वात् कपालवदित्यनेन त्रसरेणोरवयवस्य द्व्यणुकस्य सावयवत्वसिद्धौ, स चावयवः क इत्याकांक्षायां परमाणुरेव। अस्य च निरवयवद्रव्यत्वात् नित्यत्वम्। न च त्रसरेणोरवयवाः सावयवा इत्यादिक्रमेण तस्यापि सावयवत्वसिद्धिर्न्न नित्यत्वमिति वाच्यम्, अनवस्थाप्रसंगात्। अवयवधाराया अविश्रान्तत्वे मेरुसर्षपयोरपि साम्यप्रसंगाच्च। तथा चावयवधारायाः यत्र विश्रान्तत्वम्, तस्यानित्यत्वेऽसमवेतभावोत्पत्तिप्रसंगादित्यन्यत्र विस्तरः।

सा द्विविधा नित्यानित्यभेदात्। नित्यः परमाणुरूपोऽनित्यः कार्यः। पृथिवीत्वं नित्यवृत्तिघटपटवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति तत्सिद्धिरिति। न च पक्षासिद्धिः घटो गगनवृत्तित्व रहितपटवृत्तिजातिमान् घटपटव्यतिरेकित्वरहितत्वात् पटवदिति तत्सिद्धिः।

ननु परमाणौ पृथिवीत्वसाधकप्रमाणाभावात् सा द्विधेत्यसङ्गतिरित्यत आह **पृथिवीत्वमिति।** हेतौ घटवृत्तित्वानुपादाने पटत्वान्तर्भावेण पटवृत्तित्वानुपादाने घटत्वान्तर्भावेण जातित्वानुपादाने घटपटसंयोगाद्यन्तर्भावेण व्यभिचारप्रसंगात्। ननु पृथिवीत्वजातौ मानाभावात्पक्षासिद्धिः, नहि तत्र प्रत्यक्षं प्रमाणं वृक्षपाषाणान्न जतुघृतप्रभृतिषु पृथिवीत्वाग्रहात्। न च चक्षुः संयुक्तसमवायात्मकसन्निकर्षस्य प्रत्यक्षजनकस्य तत्तदन्तर्भावेण सत्त्वात् कथमग्रह इति वाच्यं प्रत्यक्षप्रतिबन्धकानुपलब्धेस्तत्र सत्त्वात्। न च कथमनुपलब्धि स्तद्गतसामान्यधर्म्मस्य तद्विषयकसामान्यप्रतीतिविषयत्वात् वृक्ष इत्याद्याकारकप्रतीतिविषयत्वस्य पृथिवीत्वादौ बाधात्पृथिवीत्वेन व्यवहारादर्शनाच्चेत्याशंक्योत्तरयति **न चेति। पक्षासिद्धिः।** पृथिवीत्वजात्यसिद्धि र्म्मानाभावादिति शेषः। गनगवृत्तित्वरहितत्वं गगननिरूपितसमवाय सम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वसामान्याभाववत्त्वम्। तेन स्वरूपादिसंबन्धावच्छिन्न गगनवृत्तित्वाभावस्य सत्तानिष्ठत्वविशिष्टतादृशाभावस्य च द्रव्यत्वे सत्त्वेन तमादायार्थान्तरत्वमिति निरस्तम्। निरुक्ताभावद्वये निरुक्तसामान्याभावत्वविरहात्।

घटपटव्यतिरेकित्वरहितत्वादित्यस्य घटसामान्यभेदविशिष्ट पटसामान्यभेदाभाववत्वादित्यर्थः। तेन यत्किंचिद् घटभेदविशिष्टपटभेदस्य घटान्तरे सत्त्वेन घटगगनोभयभेदविशिष्टपटभेदस्याखिलघटे सत्त्वेन स्वरूपासिद्धिरिति निरस्तम्। घटपटोभयभेदस्य पटे सत्त्वेन दृष्टान्तासिद्धिरित्यपि निरस्तम्। घटादिसामान्यभेदस्य घटादावभावात्। स्वरूपासिद्धिवारणाय हेतुप्रतियोगिभेदे घटव्यतिरेकित्वविशेषणं दृष्टान्तासिद्धिवारणाय पटव्यतिरेकित्वोपादानम्। नन्वेतावताऽतिरिक्ता घटपटोभयनिष्ठा जातिरेव सिध्यतु न तु पृथिवीत्वजातिरपीति चेन्न गौरवात्। संकीर्णनानाजातिस्वीकारप्रसंगाच्च। तथाहि घटो मठवृत्तिगगनावृत्तिजातिमान् घटमठव्यतिरेकित्वरहितत्वात् मठवदित्यनेन घट मठोभयवृत्तिर्जातिरतिरिक्ता वक्तव्या भवति। तथा च घटमठोभयगतजात्यभाववति पटे घटपटोभयगतजातेस्सत्वेन एतदभाववति मठे घटमठोभयगत जातेस्समावेशाच्च। परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वे सत्येकाधिकरणवृत्तित्वरूपस्य सांकर्य्यस्य सत्वात्। पृथिवीत्वजातिस्वीकारे त्वतिप्रसंगानवकाशात्। यत्तु गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकतया पृथिवीत्वजातिः सिध्यतीति, तन्न पृथिवीत्वेन गन्धत्वेन कार्य्यकारणभावे मानाभावात्। न च पृथिवीत्वेन कारणत्वानभ्युपगमे गन्धस्याकस्मिकत्वापत्तिः। जलेऽपि तदापत्तिप्रसंगादिति वाच्यम्, आपादकाभात्। तथाहि पाकजगन्धस्य गन्धजगन्धस्य वा तत्रापत्तिः। नाद्यः, जले विजातीयानलसंयोगानभ्युपगमात्। न द्वितीयो जलीयपरमाणौ गन्धस्याभावात्। तत्तद्व्यक्तिं प्रति तत्तद्व्यक्तित्वेन कारणत्वस्यावश्यकत्वेनाकस्मिकत्वाभावात्। अन्यथा पृथिवीत्वेन कारणत्वस्वीकारपक्षेऽपि सुरभिगन्धस्योत्पत्तिस्थानेऽसुरभिगन्धस्य पाकजस्थाने गन्धजगन्धस्य कारणतावच्छेदकस्याविशेषेण तत्र तत्र सत्वेनापत्तिप्रसंगात्। पृथक्पृथक्कार्य्यकारणभावस्वीकारे त्वापत्तिविरहादिति दिक्।

केचित्तु पूर्व्वोक्तयुक्त्या पाषाणे किंशुकविशेषे च पृथिवीत्वस्यातिप्रसक्ततया कारणातानवच्छेदकत्वादित्याहुः। परे तु पृथिव्यां पाकजरूपरस गन्धादेस्सत्वात्पाकजरूपजनकविजातीयतेजस्संयोगात्मकपाक-जनकतावच्छेदकतया पृथिवीत्वजातिस्सिध्यतीत्याहुस्तच्चिन्त्यम्। **अन्ये** तु पृथिवी पदशक्यतावच्छेदकतया पृथिवीत्वजातिस्सिध्यतीति। न च स्वाश्रयसम्बन्धेन गन्धत्वस्यैव पृथिवीपदशक्यतावच्छेदकत्वस्वीकारान्न तत्सिद्धिः। यदि

गन्धत्वेनाशक्यगन्धस्याप्युपस्थितिप्रसंग इत्युच्यते तदा का क्षतिः, शक्तिज्ञानपदार्थोपस्थित्योः समानप्रकारकत्वस्यैव नियमात्पृथिवीत्वस्य गन्धत्वात्मकत्वस्वीकारादिति वाच्यं गन्धवती पृथिवीति वाक्याद्भेदान्वयमते उद्देश्यतावच्छेदकविधेयतावच्छेदकयोरैक्येन शाब्दानुपपत्तेरभेदान्वयमते चोद्दश्यतावच्छेदकविधेयतावच्छेदकतावच्छेदकयोरैक्येन कर्म्म गच्छतीत्यादाविव शाब्दानुपपत्तेश्च। कथंचित्तदुपपादनेऽपि समवायस्यैक्येन गन्धस्य नानात्वेनानुगतसम्बन्धेन पृथिवीत्वापेक्षयाऽननुगतपरम्परासम्बन्धेन गुरुभूतेन च गन्धत्वस्य गुरुत्वेन शक्यतानवच्छेदकत्वात्। अत एव समवायसम्बंधेन घटत्वापेक्षया परम्परासम्बन्धेन कम्बुग्रीवत्वजातेर्गुरुत्वेन प्रतियोगितानवच्छेदकत्वादिति **जगदीशलिखनमपि संगच्छते।** किंच निर्गन्धकिंशुकादौ पृथिवीपदशक्ये तेन सम्बन्धेन गन्धत्वस्यासत्वेन न्यूनवृत्तितया शक्यतानवच्छेदकत्वादिति प्राहुः। ननु सत्ताजातौ प्रमाणाभावात् पृथिवीत्वे नित्यवृत्तित्वसाधकानुमाने दृष्टान्तासिद्धिः। न च घटस्सन् पटस्सन्नित्यादिप्रत्ययसद्भावस्य प्रमाणत्वादिति वाच्यं भावस्सन् जातिस्सतीत्यादि प्रयोगाणामपि सद्भावादित्याशंकां निषेधयति **न चेति**। नत्वित्यर्थः। तत्रानुमानप्रमाणसम्भवादित्याह **गगनमिति**। द्रव्यत्वमादायार्थान्तरस्य सिद्धसाधनस्य वा वारणाय **द्रव्यत्वेतरेति**। एतच्चाभेदेन जातावन्वेति। घटादेः पक्षत्वे घटत्वपृथिवीत्वमादायार्थान्तरापत्तेरिति गगनस्य पक्षतयोल्लेखः। भूतत्वं चात्माभिन्नत्वे सति विशेषगुणवत्वम्। अत्र सत्यन्तानुपादाने सुखादिसमवायिकारणतावच्छेदिकाया आत्मत्वजातेः परमात्मन्यसत्वेन विशेषगुणस्य च तत्र सत्वेन तमादाय व्यभिचारप्रसंगात्। विशेष्यानुपादाने कालदिगन्तर्भावेण व्यभिचारः स्यादिति तयोरुपादानम्। गगनस्याभिन्नतया तत्र-द्रव्यत्वव्याप्यजातेरभावादिति[४] भावः। यत्तु प्रतियोगित्वसम्बधावच्छिन्न-ध्वंसत्वावच्छिन्नकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकतया[५] सत्ताजातिसिद्धिरिति। तत्तुच्छम्। तस्याः नित्यवृत्तितया कारणतानवच्छेकत्वात्[६]।

न च सत्तासिद्धिः गगनं द्रव्यत्वेतरजातिमत् भूतत्वात् पटवदिति तदनुमानात्। न च द्रव्यत्वासिद्धिः, गगनादिः रूपावृत्तिजातिमान् गुणवत्वात् घटवदिति द्रव्यत्वसिद्धिः।

न च जन्यत्वविशिष्टसत्वस्य तथात्वादिति वाच्यं, नित्यानित्योभय-साधारणसत्त्वस्यासिद्धेः। द्विविधसत्वस्य तन्त्रकाराभिप्रेतस्य क्वचिदप्यश्रुतत्वात्। नित्ये तत्साधक प्रमाणाभावाच्चेति दिक्।

ननु द्रव्यत्वजातौ प्रमाणाभावान्निरुक्तानुमाने साध्यासिद्धिः। घृतजतुप्रभृतिषु द्रव्यत्वाग्रहात्प्रत्यक्षमेव प्रमाणमिति वक्तुमशक्यत्वात्। न च चक्षुस्संयुक्तघृतादिसमवेतत्वस्य सन्निकर्षस्य तत्र सत्वात्कथन्न तत्र प्रत्यक्षं प्रमाणमिति वाच्यम्। घृतादौ द्रव्यत्वव्यवहाराभावेन प्रत्यक्षप्रतिबन्धकानुपलब्धेस्तत्र सत्वादित्याह **नचेति**। द्रव्यत्वजातावनुमानमेव प्रमाणमित्याह **गगनादिरिति**। सत्तामादायार्थान्तरादिवारणाय **रूपावृत्तीति**, जातिविशेषणम्। रूपनिरूपितसमवाय सम्बधावच्छिन्न वृत्तित्वसामान्याभावार्थकं, संयोगैकत्वादिकमादायार्थान्तरवारणाय **जातीति**। यत्तु कार्य्यसमवायिकारणतावच्छेदकतया द्रव्यत्वजातिसिद्धिरिति। तत्तुच्छम्। समवायिकारणतानिरूपितकार्य्यतावच्छेदकत्वस्यात्माश्रयभयेन कार्य्यत्वे वक्तुमशक्यत्वात्। ध्वंसेऽपि तस्य सत्वेनातिप्रसक्तत्वाच्च। न च संयोगसमवायिकारणतावच्छेदकतया तत्सिद्धिरिति वाच्यं, विभुद्वयसंयोगस्वीकारपक्षे संयोगत्वस्यातिप्रसक्तत्वेन कार्य्यतानवच्छेदकत्वात्। यदि च विभागसमवायिकारणातावच्छेदकतया तत्सिद्धिरित्युच्यते, तदा द्रव्यत्वाविशेषेण कपालविभागस्य कपाल इव तन्त्वादावप्युत्पादभयेन तत्तद्व्यक्तिभेदेन कार्य्यकारणभावस्यावश्यकत्वेन सामान्यकार्य्यकारणभावस्यानावश्यकत्वात् द्रव्यत्वासिद्धेरिति।

केचित्तु द्रव्यपदशक्यतावच्छेदकतया द्रव्यत्वजातिस्सिध्यति। इदं द्रव्यं, द्रव्यंपश्यति, द्रव्यमानय, द्रव्यं निरूपयतीत्यादिप्रयोगदर्शनात्। अथ स्वाश्रयगुणसम्बन्धेन गुणत्वमेव तत्पदशक्यतावच्छेदकमस्तु इति चेन्न दत्तमुत्तरमधस्तादित्याहुः।

कार्यं त्रिविधं शरीरादिभेदेन। तत्र भोगायतनमन्त्यावयवि शरीरम्।

कार्य्यम्विभजते **कार्य्यमिति कार्यं**। कार्य्यरूपा पृथिवी, त्रिविधं त्रिप्रकारिके त्यर्थः। आदिपदमिन्द्रियविषयोभयपरम्, अन्यत्सर्वम्। पूर्ववत्

प्राथम्याच्छरीरं निरूपयति **तत्रेति**। तेषु मध्ये, भोगश्चानुभवविशषः

सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति यावत्। भोगस्यायतनमवच्छेदकमित्यर्थः। अवच्छेदकत्वं षष्ठ्यर्थः। अथ वा भोगस्यायतनं स्थानम्–धिकरणमवच्छेदकतासम्बन्धेन भोगाधिकरणमिति यावत्। तथा चावच्छेदकतासम्बन्धेन भोगाधिकरणत्वे सत्यन्त्यावयवित्वं शरीरत्वमित्यर्थः। ननु यच्छरीरावच्छेदेन भोगो नोत्पन्नस्तत्राव्याप्तिरिति वाच्यं तच्छरीरे मानाभावात्। अथवाऽवच्छेदकतावच्छेदकजातिमत्वसम्बन्धेन भोगत्वस्य विवक्षितत्वात्। तथाविधचैत्रत्वादिजातिमत्वस्य तत्र सत्वाल्लक्षणासमन्वयः। नरसिंहशरीरस्यापि कल्पभेदेन भिन्नत्वान्न तत्राव्याप्त्यवकाश इति।

केचित्तु आयतनं कारणम् तथाचावच्छेदकतासम्बंधावच्छिन्नभोगत्वावच्छिन्न कार्य्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धधावच्छिन्नकारणतावत्वे सत्यन्त्यावयविवत्वं शरीरत्वमित्यर्थः। जनकत्वं चात्र स्वरूपयोग्यत्वमतो नोक्ताव्याप्त्यवकाश इत्याहुः। घटपटादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्, तेषामप्यन्त्यावयवित्वात्। करचरणादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्। तेषामपि भोगायतनत्वात् पादे मे पीडा न शिरसीत्याद्यनुभवात्। नचांगुल्याद्यवयवित्वस्य तत्रापि सत्वादतिव्याप्तिस्तदवस्थैवेति वाच्यमन्त्यावयवित्वस्यावयवभिन्नार्थकत्वान्नातिव्याप्तिरिति। शरीरं द्विविधं योनिजायोनिजभेदात्। योनिजमपि द्विविधं जरायुजाण्डजभेदात्। जरायुजमपि द्विविधं मनुष्यपशुभेदात्। अण्डजमपि सर्पपक्षिपिपीलिकादिभेदेनानेकविधम्, अयोनिजमपि स्वेदजोद्भिदनारकीय-स्वर्गीयभेदेनानेकविधं, स्वेदजं कृमिदंशादिभेदेनानेकविधम्। उद्भिदमपि तरुगुल्मादिभेदेनानेकविधम्। वृक्षादावपि पत्रविकाशसंकोचाभ्यां सुखदुःखानुमानान्न शरीरलक्षणस्य तत्राव्याप्तिशंकापि।

केचित्तु शरीरत्वं न जाति, पृथिवीत्वादिना सांकर्यात्। किंतु चेष्टादिमत्वे सत्यन्त्यावयवित्वं, घटादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्। अंगुल्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम। हस्तादावतिव्यापि-वारणायात्यन्तपदम्। अन्यथा हस्तादावप्यगुंल्याद्यवयवित्वस्य सत्वादतिव्याप्तेदुर्वारत्वात्। हस्ते शरीरावयवत्वसत्वेनान्त्यावयवित्वविरहान्न तदुपादानेऽतिव्याप्तिरिति। न च यच्छरीरे चेष्टा नोत्पन्ना तत्राव्याप्तिरिति वाच्यं तच्छरीरे मानाभावात्।

यद्वा चेष्टासमानाधिकरणान्त्यावयविवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्वस्य

विवक्षितत्वादिति। न च पृथिवीत्वमादाय घटादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं द्रव्यत्वव्याप्यत्वं परित्यज्यान्त्यावयविमात्रवृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। पृथिवीत्वस्यावयवेऽपि सत्वान्नातिव्याप्तिः। मनुष्यत्वचैत्रत्वादिकजातिमादाय लक्षणसमन्वयसंभवान्न काचिदनुपपत्तिः। न च वृक्षे चेष्टादिमत्वे मानाभावादिति वाच्यम्, अध्यात्मवायुसन्बन्धस्य मानत्वात्। अत्रापि किं मानमिति चेत् भग्नक्षतसंरोहणादिना तदनुमानादित्याहु, स्तच्चिन्त्यम्। आचार्य्यलक्षणापेक्षया गौरवात्। लक्षणस्य जातिघटिततया जातेश्च वृक्षत्वमनुष्यत्वादिभेदेनानेकविधतया लक्षणेऽनेकत्वापत्तिः। एकत्वव्यवहारानुपपत्तिर्लक्षणे लक्ष्यतावच्छेदकाधि-करणवृक्षादौ चालनीन्यायेन मनुष्यत्वाभावस्य मनुष्ये वृक्षत्वाभावस्य च सत्वेन लक्ष्यवृत्त्यभावप्रतियोगित्वप्रसंगश्च स्यादिति। नहि लक्षणे लक्ष्यवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तन्त्रकाराभिप्रेतमनुक्तत्वात्। आचार्य्यलक्षणस्य च भोगत्ववत्वे सत्यवयवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्वपर्यवसितत्वात्। भेदस्यैवान्ये नोक्तदोषाणां नात्रावकाश इति। भोगत्ववत्ता च स्वाश्रयावच्छेदकत्वसम्बंधेन, स्वं भोगत्वमिति संक्षेपः।

शरीरसंयुक्तमपरोक्षप्रतीतिसाधनमतीन्द्रियमिन्द्रियम्।।

इन्द्रियं निरूपयति **शरीरेति**। इन्द्रियत्वं न जातिः पृथिवीत्वादिना संकरात्। किन्तु शरीरसंयुक्तत्वे सत्यपरोक्षप्रतीतिसाधनत्वे सत्यतीन्द्रियत्वं तत्। निर्विकल्पकज्ञाने आत्ममनः संयोगे विषयेन्द्रिसंयोगेष्वतिव्याप्तिनिरासाय **शरीरसंयुक्तेति**। तेषां प्रत्यक्षकारणत्वातीन्द्रियत्वोभयवत्वेऽपि संयोगानाश्रयत्वात्। गुणे गुणानंगीकारात्। अथ लाघवात्संयोगाश्रयत्वमेवोच्यतां शरीरग्रहणस्य वैयर्थ्यादिति चेन्न, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्ण इत्येतच्छ्रुत्या श्रावणप्रत्यक्षजनकत्वस्यातीन्द्रियत्वस्य संयोगाश्रयत्वस्य परमेश्वरीयश्रावणप्रत्यक्षसंपादके सत्वेनातिव्याप्त्यापत्तेः। नचेष्टापत्तिरकर्णेति श्रवणात्। तथा च परमेश्वरस्य शरीरसम्बन्धाभावान्नातिव्याप्तिः। शरीरसंयुक्तपरमाणावतिव्याप्तिवारणाय**अपरोक्षज्ञानसाधनत्वे सतीति** विशेषणम्। अथवा सुषुम्णायामतिव्याप्तिवारणाय **तदिति**। अपरोक्षत्वानुपादाने ज्ञायमानलिंगस्यानुमितिकरणत्वपक्षे तत्रैवातिव्याप्तिस्तस्यापि क्वचिल्लिंगत्वात्। तदुपादाने च परमाणौ महत्वलक्षणकारणाभावात्प्रत्यक्षजनकत्व-विरहान्नोक्तातिव्याप्तिरिति। शरीरसंयुक्तघटपटादौ स्वीयप्रत्यक्षजनके

ऽतिव्याप्तिवारणायातीन्द्रियत्वमितीति। तथाच तत्र विषयतया प्रत्यक्ष जनकत्वसत्वेऽप्यतीन्द्रियत्वस्यासत्वान्नातिव्याप्तिरिति। चक्षुरादौ शरीरयुक्तत्वस्य घटतदीयरूपादिप्रत्यक्षजनकत्वस्यातीन्द्रियत्वस्य सत्वाल्लक्षणसमन्वयः। इन्द्रियावयवसंयोगदशायां प्रत्यक्षमभ्युपगच्छतां **प्राचाम्मते** इन्द्रियावयवेऽतिव्याप्तिः। एवं कालादौ रूपाभावप्रत्यक्षे सन्निकर्षघटकतया कारणे कालादावतिव्याप्तिरिति चेन्न कालेऽतीन्द्रियत्वाभावात्। तस्य च महत्वाश्रयत्वात्। अवयवान्त्यत्वस्य विशेषणान्तरस्य निवेशादेवेन्द्रियावयवेष्वतिव्याप्तिवारणसंभवात्। यद्वा नव्यैस्तदानीं प्रत्यक्षानभ्युपगमान्नातिव्याप्तिरिति भावः।

केचित्तु इन्द्रियत्वं न जातिः पृथित्वादिना संकरात्, किन्तु शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणीभूतमनस्संयोगाश्रयत्वम्। आत्मादिवारणाय सत्यन्तम्[१०], उद्भूतविशेषगुणस्य श्रोत्रे सत्वेन तत्राव्याप्तिवारणाय **शब्देतरेति**। विशेषगुणस्य रूपादेश्चक्षुषि सत्वादु**द्भूतेति**। विशेषगुणविशेषणं, उद्भूतत्वं न जातिः शुक्लत्वादिना संकरात्। न च शुक्लत्वादिव्याप्यनानैवोद्भूतत्वमिति वाच्यम्, उद्भूतरूपत्वादिना चाक्षुषादौ जनकत्वानुपपत्तेः किन्तु शुक्लत्वादिव्याप्यमनुद्भूतत्वं नाना तत्तदभावकूटञ्चोद्भूतत्वं, तच्चासंयोगादावपि। तथाच शब्देतरोद्भूतगुणसंयोगादिश्चक्षुरादावप्यस्त्यतो **विशेषेति**। कालादिवारणाय विशेष्यदलम्, इन्द्रियावयवविषयसंयोगस्यापि **प्राचां मते** प्रत्यक्षजनकत्वादिन्द्रियावयववारणाय। नव्यमते कालादौ रूपाभावप्रत्यक्षे सन्निकर्षघटकतया कारणीभूतचक्षुस्संयागाश्रयस्य कालादेर्वारणाय, मनः पदं, ज्ञानकारणमित्यपि तद्वारणाय इत्याहु, स्तच्चिन्त्यम्। नन्वपरोक्षज्ञानं यदीन्द्रियजन्यज्ञानं तदाऽनुमित्यादावतिव्याप्तिस्तस्यापि मनोजन्यत्वात्। इन्द्रियत्वेन यज्ज्ञानं प्रति जनकत्वं तदित्युक्तौ पुनरिन्द्रियं किमिति रीत्यात्माश्रयान्योन्याश्रयप्रसंगात्। इन्द्रियत्वेन सामान्यरूपेण कारणत्वस्य प्रमाणाभावेनानभ्युपगमाच्च। परमेश्वरीयप्रत्यक्षेऽव्याप्तिश्चातः स्वयमपरोक्षज्ञानं निरूपयति **ज्ञानेति**।

ज्ञानकरणजन्यत्वरहितज्ञानत्वमपरोक्षत्वम्।

तथाच करणविधया ज्ञाननिष्ठजनकतानिरूपितजन्यत्वाभाववत्वे सति ज्ञानत्वमपरोक्षत्वमिति निष्कर्षः। अनुमित्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम्,

घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्, चाक्षुषादौ करणविधया चक्षुरादेर्जनकत्वात्। ज्ञानस्य करणविधया जनकत्वाभावात्। निर्विकल्पकज्ञानस्य साक्षादेव प्रत्यक्षहेतुत्वाल्लक्षणसमन्वयः। अनुमितौ व्याप्तिज्ञानस्य, शाब्दबोधे च पदज्ञानस्य उपमितौ, गवयादिधर्म्मिकगोसादृश्यज्ञानस्य, स्मृतावनुभवस्य करणविधया हेतुत्वान्न तत्रातिव्याप्तिरिति। करणत्वञ्चासाधरणत्वं, असाधारणत्वं च व्यापारवत्वं, व्यापारवत्ता च स्वजनकत्वस्वजन्यजनकत्वोभयसम्बन्धेन। स्वं व्यापारः, प्रकृते विषयेन्द्रियसम्बन्धो व्यापारः। स च चाक्षुषस्थले त्वाचस्थले च षोढा, संयोग संयुक्तसमवाय संयुक्तसमवेतसमवाय संयुक्तसमवेतसमवाय संयुक्तविशेषणता संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणता भेदात्। श्रावणघ्राणजरासनस्थले च स चतुर्धा, संयुक्तसमवाय संयुक्तसमवेतसमवाय संयुक्तसमवेतविशेषणतासंयुक्त समवेत-समवेतविशेषणताभेदात्। तथाच द्रव्यविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रत्युद्भूतरूपविशिष्टालोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुस्संयोगः कारणम्। उद्भूतरूपवैशिष्ट्यं चात्र समवायघटितसामानाधिकरण्यसम्बन्धेन बोध्यम्। द्रव्यसमवेतादिप्रत्यक्षस्थले च सामानाधिकरण्यघटित सामानाधिकरण्यादिसम्बन्धेन तद्बोध्यम्। वस्तुतस्तु उद्भूतरूपसहकृतालोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुः संयोगः कारणम्। उद्भूतरूपस्य च समवायेन द्रव्यप्रत्यक्षेऽन्यत्र सामानाधिकरण्यादिसम्बन्धेन तद्बोध्यम्। उद्भूतरूपसहकृतत्वानुपादाने वायावालोकसंयोगावच्छिन्नचक्षुस्संयोगस्य सत्वेन तदन्तर्भावेण व्यभिचारापत्तेः। न च रूपवत्वविरहादेव व्यभिचारवारण-संभवादुद्भूतत्वं व्यर्थमिति वाच्यं, भर्जनकपालस्थवह्नौ चक्षुरादौ च रूपवत्वस्य सत्वेन तदन्तर्भावेण व्यभिचारापत्तेरनुद्भूतत्वस्योपादानं, तच्च रूपविशेषणम्। न च परमाणावुद्भूतरूपस्य सत्वात्तदन्तर्भावेण व्यभिचारापत्तिरिति वाच्यं महत्वस्यापि तत्र कारणत्वात्। आलोकसंयोगावच्छिन्नत्वानुपादाने पृष्ठ-देशावच्छेदेनालोकसंयोगस्याग्रदेशावच्छेदेन चक्षुस्संयोगस्यान्धकारे घटादौ सत्वेन तदन्तर्भावेण व्यभिचारप्रसंगात्। द्रव्यसमवेतविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति निरुक्तविशेषणावच्छिन्नचक्षुस्संयुक्तसमवायः कारणम्। द्रव्यसमवेत समवेतविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति निरुक्तचक्षुस्संयुक्तसमवेतसमवायः कारणम्। एवं द्रव्यवृत्त्यभावविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति निरुक्तचक्षुस्संयुक्तविशेषणता कारणम्। द्रव्यसमवेतवृत्त्यभावविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति निरुक्तचक्षुस्संयुक्तसमवेतविशेषणता कारणम्, एवमन्यत्राप्यूहनीयम्। एवं द्रव्यविषयकत्वाचप्रत्यक्षं प्रति रूपवत्वोद्भूतस्पर्शवत्वसहकृतत्वक्संयोगः

कारणमिति प्राचीनाः। नव्यास्तु उद्भूतस्पर्शवत्वसहकृतस्त्वक्संयोगः कारणम्। न च वायोरपि प्रत्यक्षं स्यादिति वाच्यमिष्टत्वात्। प्रभां पश्यामीतिवत्। वायुं स्पृशामीत्यनुभवस्य वायुप्रत्यक्षे प्रमाणत्वात्। चक्षुर्गोचराणि उद्भूतरूपमहत्वविशिष्टद्रव्याणि। तत्समवेतगुणकर्मजातिसमवायादीनि। एवं रूपरूपत्वातिरिक्तानि यानि चक्षुर्ग्राह्याणि तानि सर्वाणि च त्वगिन्द्रियग्राह्याणि। वायुवायुत्वोद्भूतस्पर्शवत्वानि चक्षुर्ग्राह्यातिरिक्तान्यपि त्वगिन्द्रियग्राह्याणीति प्राहुः। अन्यत्सर्वमग्रे वक्ष्यामः।

अतीन्द्रियत्वं क्रमाज्ज्ञानसाधनत्वम्। प्रतीयमानतया भोग साधनं विषय, इति पृथिवी।

नन्वतीन्द्रियत्वं न जातिः पृथिवीत्वादिना संकरादतस्तन्निरूपयति **क्रमेति**। क्रमपदोत्तरनञ्पदं ज्ञानसाकांक्षम्। साधनपदं तादात्म्यसंसर्गावच्छिन्न जनकताश्रयपरं, क्रमपदमपरोक्षपरम्। तथा चापरोक्षज्ञानजनकताश्रयभिन्नत्वमतीन्द्रियत्वमिति निष्कर्षः। अतीन्द्रियविषयकप्रत्यक्षस्याप्रसिद्धतया विषयत्व–सम्बन्धावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपिततादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्नजनकतावद्भिन्नत्वस्य चक्षुरादौ सत्वाल्लक्षणसमन्वयः। विषयतासंसर्गेण प्रत्यक्षं प्रति तादात्म्येन विषयस्य कारणत्वान्न घटादावतिव्याप्तिरिति। विषयं निरूपयति **प्रतीयमानतयेति**। प्रतीयमानतयेत्यनेन अविदितसुखदुःखयोरसत्वं सूचितम्। प्रतीयमानत्वं प्रतीतिविषयत्वम्, अवच्छिन्नत्वं तृतीयार्थः। भोगोऽनुभवविशेषः, सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति यावत्। तस्य साधनमभेदेनेति शेषः। साधनपदं जनकताश्रयपरं जनकता च साक्षात् परम्परासाधारणी ग्राह्या। तथाच विषयतासम्बन्धावच्छिन्नभोगनिष्ठजन्यतानिरूपित तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नजनकतावान् विषय इति पर्यवसितलक्षणार्थः। तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नभोगनिष्ठजन्यतानिरूपिताविषयित्व स्वप्रयोज्यनिरूपितविषयित्वान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नजनकतावान् विषय इति लक्षणवाक्यार्थः। एतल्लाभायैव च प्रतीयमानतयेत्यस्योपादानान्न तस्य वैयर्थ्यशंकेति। स्वप्रयोज्यञ्च स्वजन्यस्वजन्यजन्यादिरूपं बोध्यम्। परम्परा जनकतायामवयविनिष्ठत्वोपादानान्नित्यानां व्यावृत्तिरिति। **केचित्तु** प्रतीयमानत्वं प्रत्यक्षविषयत्वं, वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः। तथाच प्रत्यक्षविषयत्वे सति विषयत्व सम्बन्धावच्छिन्नभोगनिष्ठजन्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नजनकतावान् विषय

इति पर्यवसितार्थः। तथाच नित्यादौ प्रत्यक्षविषयत्वाभावान्नातिव्याप्तिः। जनकता चात्र प्रयोजकतारूपा ग्राह्या। नातः परम्परया भोगजनकेऽव्याप्तिरित्याहुः। तच्चिन्त्यं, द्व्यणुकेष्वव्याप्तेरिति। सर्वं हि कार्य्यमदृष्टाधीनं, कार्य्यमात्रं प्रत्यदृष्टस्य हेतुत्वात्। यत्कार्यं यदीयादृष्टाकृष्टं तत्तदुपभोगसाधनमिति व्याप्त्या कार्यमात्रस्य साक्षात्परम्परया भोगसाधनत्वाल्लक्षणसमन्वय इति। यद्यपि शरीरेन्द्रियाणामपि निरुक्तविषयत्वाक्रान्तत्वात् त्रैविध्यकथनानुपपत्तिस्तथापि स्वतन्त्रेच्छत्वात्, शिष्यबुद्धिवैशद्यानुरोधाद्वा, शरीरत्वेन्द्रियत्वविषयत्वभेदेन त्रयाणां भेदाद्वा, कार्यविभजनान्नानुपपत्तिरिति। **इति पृथिवीति**, पृथिव्याः निरूपणं विभागश्चेत्यर्थः।

पृथिवीवृत्तित्वरहितहिमकरकावृत्ति जातिमज्जलम्। तन्नित्यानित्यभेदेन द्विविधम्। जलत्वं नित्यवृत्ति हिमकरका वृत्ति जातित्वात्। सत्तावदिति तत्सिद्धिः।

अथ जलं निरूपयति **पृथिवीति**। **रहितान्तं** सत्ताद्रव्यत्वमादाय पृथिव्यादावतिव्याप्तिवारणाय, **जातिविशेषणम्**। पृथिवीनिरूपितसमवाय सम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाववदर्थकम्। तेन कालिकसम्बन्धेन जलत्वे पृथिवीवृत्तित्वस्य, संयोगादिसम्बन्धेन पृथिवीवृत्तित्वाभावस्य सत्ता द्रव्यत्वादौ सत्त्वेनासंभवाव्याप्त्योरनवकाश इति। हिमकरकयोरुपादानफलं पृथिवीलक्षणवदत्राप्यूहनीयम्। जात्युपादानफलमपि पूर्ववत्।

केचित्तु स्नेहवज्जलं, सांसिद्धिकद्रवत्ववज्जलं, अभाश्वरशुक्लरूपवज्जलं, तिक्तासमानाधि करणमाधुर्य्यसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमज्जल मित्यादि नानालक्षणं कुर्वन्ति, तच्चिन्त्यं, चरमभिन्नलक्षणेषु नानात्वापत्तेः। एकत्वव्यवहारानुपपत्तेश्च। लक्षणे लक्ष्यैकदेशनिष्ठाभावप्रतियोगित्वापत्त्या लक्षणे लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकत्वानुपपत्तेश्च। स्नेहत्वस्यापि तन्मते द्वैविध्यात्तमादायापि लक्षणस्य लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकत्वासंभवात्। चरमे चाचार्य्यलक्षणापेक्षया गौरवप्रसंगादिति। जलं विभजते **तन्नित्येति**। **तत्** जलं **नित्यं**, परमाणुरूपं, **अनित्यं**, कार्य्यरूपं, **द्विविधं**, द्विप्रकारकम्। ननु जलत्वस्य नित्यवृत्तित्वे मानाभावात् द्वैविध्यानुपपत्तिरित्यत आह **जलत्वमिति**। हेतुघटकहिमवृत्तित्वानुपादाने करकात्वान्तर्भावेण, करकावृत्तित्वानुपादाने हिमत्वान्तर्भावेण, व्यभिचारप्रसंगादतस्तयोरुपादानम्। **तत्सिद्धिः** जलत्वे नित्यवृत्तित्वसिद्धिः। तथाच न द्वैविध्यानुपपत्तिरिति भावः।

करकागगनवृत्तित्वरहिताहिमवृत्तिजातिमतो स्नेहाधिकरणत्वात् हिमवदिति करकायां तत्सिद्धिः।

ननु जलत्वस्य करकावृत्तित्वे मानाभावादुक्तानुमाने स्वरूपासिद्धिरत आह करकेति। द्रव्यत्वसत्वान्तर्भाविणार्थान्तरवारणाय **गगनवृत्तित्वरहितत्वविशेषणम्।** करकात्वान्तर्भावेणार्थान्तरवारणाय **हिमवृत्तीति।** जातिविशेषणमभेदेन। हिमकरकोभयत्वमादायार्थान्तरवारणाय **जात्युपादानम्।** स्नेहस्य समवायसम्बन्धेन हेतुतालाभाय हेतुघट**काधिकरणत्वस्यो**पादानम। अन्यथा कालिकेन स्नेहस्य पृथिव्यादौ सत्वेन व्यभिचारप्रसंगात्, **तत्सिद्धिः** जलत्वसिद्धिः। तथाच न स्वरूपासिद्धिरिति भावः।

अनित्यं त्रिविधं शरीरादिभेदेन। शरीरं वरुणलोके, जलपरमाणवः शरीरारम्भका इन्द्रियारम्भकत्वात् पार्थिव परमाणुवत्। इन्द्रियारम्भकत्वं रसनस्याप्यत्वासिद्धम्। रसनमाप्यं रूपादिषु मध्ये रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्, सक्तुरसाभिव्यञ्जकजलवत्।

अनित्यजलं विभजयितुमाह **अनित्यं त्रिविधमिति। त्रिविधं** त्रिप्रकाकम्, आदिपदेन विषयेन्द्रिययोरुपग्रहः। तथाच कार्य्यजलं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयभेदादिति। शरीरमयोनिजं बोध्यम्। एवं नारकीयादि–शरीरमप्ययोनिजं बोध्यम्। ननु जलीयशरीरं लोके न दृष्टचरमित्यत आह **वरुणलोक** इति, प्रसिद्धमिति शेषः। तत्र चेतिहासपुराणायोः प्रमाणत्वात्। ननु जले काठिन्याभावात्तच्छरीरस्यानुभवागोचरत्वादित्यत आह **जलपरमाणव** इति। परम्परयेति शेषः। द्व्यणुकत्रसरेण्वादिक्रमेणेति यावत्। ननु रसनस्य जलत्वसिद्धौ जलपरमाणुषु शरीराम्भकत्वं संभवदुक्तिकं भवेत्। प्रथमतस्तत्रैव प्रमाणाभावादित्याशंक्योत्तरयति **रसनेति, रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्,** रसमात्रविषयकापरोक्षज्ञानजनकत्वात्। रसमात्रविषयकत्वान्तु रसेतरगुणाविषयकत्वम्। तेन रसत्वस्य तद्विषयत्वेऽपि न क्षतिरिति। न च निरूक्तहेतो रिन्द्रियसन्निकर्षेऽपि सत्वाद् व्यभिचार इति वाच्यं, द्रव्यत्वे सतीत्यस्य हेतौ निवेशात्। सन्निकर्षे द्रव्यत्वस्य विरहेण व्यभिचारवारणसम्भवात्।

रसनसिद्धिस्तु रसोपलब्धिः करणसाध्या अपरोक्षप्रतीतित्वात् रूपोपलब्धिवदिति। विषयस्तु सरित् समुद्रहिमकरकादिः। न च करकायाः काठिन्यात् पार्थिवत्वमाशङ्कनीयम्। अनन्तरमेव स्वभावापगमात् इत्यापः।

ननु रसनस्येन्द्रियत्वे मानाभावादत आह **रसनसिद्धिस्त्विति।** रसनस्येन्द्रियत्वसिद्धिरित्यर्थः। **रसोपलब्धिः,** रसविषयकप्रत्यक्षज्ञानं, **करणसाध्या** करणजन्यम्। विषयभेदं दर्शयति **विषयस्त्विति।** आदिपदं कूपतडागादिजलपरम्। ननु करका पृथिवी काठिन्यात् घटवदित्यनेन पृथिवीत्वसिद्धौ जलत्वे नित्यवृत्तित्वसाधकानुमाने हिमवृत्तितादृशजातौ करकावृतित्वविरहेण हेत्वसिद्धिप्रसंगः। विषयभेदकथनञ्चानुपपन्नम्। एवं करकायां जलत्वसाधकानुमाने बाधप्रसंगोऽपीति। करकेत्यनेनाशंकां न च स्वभावेत्यनेनोत्तरयति **अनन्तरेति। अनन्तरमेव** करकादर्शनानन्तरमेव स्वभावापगमात्। उपाधिं विना काठिन्यनाशात्। तथाच घटकाठिन्यस्य स्थिरत्वान्नहि काठिन्यं स्वतः कुत्रापि नश्यति। तथाच करका न कठिना तेजस्संयोगं विना द्रुतत्वात् सरिज्जवलवत्। एवं करका न कठिना सांसिद्धिकद्रवत्वात् जलवत्। करका न पृथिवी स्नेहवत्त्वात् अथवा सांसिद्धिकद्रवत्वात्। वस्तुतस्तु करका न पृथिवी करकादर्शनानन्तरं जलत्वेन प्रमीतत्वात्। स्वभावापगमानन्तरं प्रत्यक्षेण गृहीतजलत्वाच्च। तथाच नोक्तदोषाणामवकाश इति भावः। ननु करकायां सांसिद्धिकद्रवत्वसत्वे कथं न सर्वदा द्रुतत्वमिति चेन्न प्राणिनामदृष्टवशात् द्रुतत्वप्रतिरोधादिति। **इत्यापः,** जलस्य लक्षणं विभागश्चेत्यर्थः।

रसात्यन्ताभावसमानाधिकरणरूपाधिकरणं तेजः। करकाऽवृत्ति विद्युदाकरजवृत्ति जातिमद् वा।

तेजो निरूपयति **रसेति।** पूर्ववदत्रापि रसभेदादिकमादायातिव्याप्ति–निरासायात्यन्ताभावेत्यस्योपादानं बोध्यम्। पृथिवीजलादावतिव्याप्तिवाणाय **समानाधिकरणान्तं** रूपविशेषणम्। अधिकरणपदं समवायसम्बन्धेन रूपवदर्थकम्।अन्यथा कालिकादिसम्बन्धेन तथाविधरूपस्य महाकालादावपि सत्वेन तत्रातिव्याप्तिप्रसंगः स्यात्। ननु रसात्यन्ताभावरूपोभयत्वमेवास्तु लक्षणं लाघवात् समानाधिकरणान्तर्भाविण लक्षणस्य गौरवग्रस्तत्वदिति चेन्न, समवायेन रसाभावस्य स्वरूपसम्बन्धेन रूपस्य चावृत्तितया स्वरूपसमवाययोर्निवेशासंभवात्। कालिकसम्बंधेन निरुक्तोभयवत्वस्य पृथिवीजलकालादौ सत्वेनातिव्याप्तिप्रसंगात्।

केचित्तु उभयत्वाश्रयस्य रसाभावस्य वाय्वादौ रूपस्य च पृथिव्यादौ सत्वेनातिव्याप्तिः। यत्किञ्चिदुभयवत्वनिवेशेऽव्याप्तिर्यावदुभयवत्वनिवेशे चासंभवः। निरूक्तोभयत्वावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणतानिवेशे लाघवानवकाशः। उभयत्वस्य धीविशेषविषयतात्मकतया निरूपकतावच्छेदकस्य गुरुतरस्य निवेशादित्याहुः।

परे तु रूपस्यानेकत्वेन तादृशोभयस्यानेकत्वा ल्लक्षणेऽनेकत्वापत्तिश्च स्यात्। स्याच्च लक्षणे लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकत्वानुपपत्तिर**तस्समानाधिकरणेति**। तथा च रसाभाववत्वं पर्यवसितलक्षणार्थः। अभाववत्ता च स्वासमानाधिकरणरूपवत्वसम्बन्धेन, **स्वं** रसाभावः। तथाच रसाभावस्यैकत्वान्नोक्तदोषाणामवकाश इति। तादृशसम्बन्धलाभाय-समानाधिकरणरूपेतीति प्राहुः। ननु यथाश्रुतेऽनेकत्वादिदोषस्य विद्यमानत्वात्परम्परायाः संसर्गत्वानभ्युपगमाच्च अतो लक्षणान्तरमाह **करकावृत्तीति**। तथाच करकानिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावदन्यत्वे सति विद्युन्निरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्न-वृत्तितावत्त्वे सत्याकरजनिरूपितसमवाय सम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावज्जातिमत्तेज इति फलितार्थः। द्रव्यत्वसत्तामादाय पृथिव्यादावतिव्याप्तिवारणाय **करकावृत्तीति** जातिविशेषणम्। विद्युदाकरजयोरुपादानफलं पृथिवीलक्षणवदत्राप्यूहनीयम्। जात्युपादानफलमपि पूर्ववद् बोध्यमिति।

विद्युत्करकावृत्तित्वरहिताकरजवृत्तिजातिमती विद्युदतिरिक्ताकरजान्यत्वरहितत्वात् आकरजवत्। आकरजं सुवर्णादिः। ननु सुवर्णादिकं पार्थिवं नैमित्तिकद्रवत्वात् घृतवदित्यनेन पार्थिवत्वसिद्धाकरजवृत्तिजातिमत्त्वसाधनेऽपि विद्युत्तैजसो न तैजसत्वसिद्धिरिति चेन्न स्वर्णादिकमपार्थिव-मत्यन्ताग्निसंयोगेऽनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरण त्वादित्यनुमानेनापार्थिवत्वसिद्धावसां सिद्धिक द्रवत्वेन तत्सिद्धिः। अन्यत्र पार्थिवद्रवत्वमत्यन्ताग्निसंयोगे उच्छिन्नत्तीति तर्कोऽनुसरणीयः।

ननु तेजस्त्वजातौ मानाभावाज्जातिघटिततेजसो लक्षणं न संभवदुक्तिकमित्यत

आह **विद्युदिति**। द्रव्यत्वादिकमादायार्थान्तरवारणाय **करकावृत्तित्वरहितेति** विशेषणमभेदेन **जातावन्वेति**। विद्युत्त्वमादायार्थान्तरवारणाया**करजवृत्तीति**। द्वित्वादिकमादायार्थान्तरवारणाय **जातीति**। विद्युत्सामान्यभेदविशिष्टाकरजसामान्य भेदाभावो हेतुस्तेन नोभयभेदादिकमादाय स्वरूपासिद्धिदृष्टान्तासिद्ध्योरवकाशः। तथा च तादृशी जातिस्तेजस्त्वमेवेति सिद्धा तेजस्त्वजातिस्तामादाय लक्षणसम्भवादिति भावः। आकरजं ज्ञापयति **आकरजं सुवर्णादिरिति**। सुवर्णादौ पार्थिवत्वं संसाध्य विद्युदादौ तेजस्त्वजात्यभावं दर्शयति **ननु सुवर्णादिकं पार्थिवमिति**। इदमुपलक्षणम्। सुवर्णादिकं पार्थिवं पीतरूपवत्वात्। अन्यत्सर्वं स्पष्टम्, सुवर्णादौ पार्थिवत्वाभावं साधयति **सुवर्णादिकमपार्थिवमिति**। तथाच सुवर्णादिकं पार्थिवत्वाभाववत् अत्यन्ताग्निसंयोगविशिष्टानुच्छिद्यमानद्रवत्वात्। यन्नैवं तन्नैव यथा घृतम्।

अत्र तर्कं दर्शयति **अन्यत्रेति**। **अन्यत्र** सुवर्णादिभिन्ने, पृथिव्यां जले चेति यावत्। तथाच पृथिव्यां जले चात्यन्ताग्निसंयोगे द्रवत्व**मुच्छिनत्ति** नश्यतीति। पृथिवीद्रवत्वं जलीयद्रवत्वं चात्यन्ताग्निसंयोगे सति कथमपि न स्थास्यति। एवं च पार्थिवद्रवत्वं जलीयद्रवत्वं च न चिरकालीनात्यन्ताग्निसंयोगविशिष्टद्रव्यवृत्ति उच्छिद्यमानत्वात् घृतादिद्रवत्ववत् तप्तलौहस्थजलबिन्दुद्रवत्ववद्वेति। अनेन पार्थिवजलीयद्रवत्वे उच्छिद्यमानत्वसिद्धावनुच्छिद्यमानद्रवत्वस्य तत्र तत्र बाधात्सुवर्णादौ पार्थिवत्वस्यासिद्धिरिति भावः। ननु तदानीमपि पीतिमगुरुत्वाश्रयस्य द्रुतत्वदर्शनात्तस्य च पार्थिवत्वात् कथं पार्थिवद्रवत्वत्वावच्छेदेनोच्छिद्यमानत्वमिति चेन्नात्यन्ताग्निसंयोगे सति पीतिमगुरुत्वाश्रयोऽत्यन्ताग्निसंयोगे सति पूर्वरूपपरावृत्तिप्रतिबन्धकविजातीयद्रव्यसंयुक्तः अत्यन्ताग्निसंयोगे सति पूर्वरूपविजातीयरूपानाधिकरणपार्थिवत्वादत्यन्ताग्निसंयोगे जलमध्यस्थपीतपटवदित्यनेन पीतिमगुरुत्वाश्रये विजातीयद्रव्यसंयुक्तत्वसिद्धौ वैजात्याश्रये पार्थिवत्वाभावस्यापि सिद्धिसम्भवात्, सिद्धं सुवर्णादिकमपार्थिवमिति। तथा चाकरजवृत्तिजातिमत्वस्य विद्युदादौ पूर्वानुमानेन सिद्धौ तेजस्त्वस्य तत्र सिद्धिसम्भवाल्लक्षणसमन्वय इति भावः।

तच्च द्विविधम् नित्यमनित्यं चेति। तेजस्त्वं नित्यवृत्ति विद्युदाकरजवृत्ति जातित्वात् सत्तावदिति नित्यत्वसिद्धिः।

तेजो विभजते तच्चेति, तत् तेजः, **द्विविधं** द्विप्रकारकं, **नित्यं**, परमाणुरूपं, अनित्यम्, कार्यरूपम्। ननु परमाणौ तेजस्त्वे मानाभावाद् द्वैविध्यानुपपत्तिरित्यत आह तेजस्त्वमिति। विद्युत्त्वसुवर्णत्वान्तर्भावेण व्यभिचारवारणाय विद्युदाकरजयोरुपादानम्। द्वित्वसंयोगाद्यन्तर्भावेण व्यभिचारवारणाय जात्युपादानम्। नित्यत्वसिद्धिरिति, तेजस्त्वाश्रय इति शेषः। तथाच न द्वैविध्यानुपपत्तिरिति भावः।

साधितं तेजस्त्वम्। अनित्यं त्रिविधम् शरीरादिभेदेन। शरीरमादित्यलोके, तस्यापार्थिवत्वसिद्धिः। इन्द्रियं रूपोपलम्भकम्। रूपोपलब्धिः करणसाध्या क्रियात्वात् छिदिक्रियावदिति तत्सिद्धिः। कर्तृप्रेर्यं करणं धातुवाच्यव्यापारेण।

ननु विद्युदादावाकरजादौ च तेजस्त्वे मानाभावादित्यत आह **साधितमिति**। विद्युदादावाकरजादौ च तेजस्त्वं प्रागिति शेषः। अनित्यं विभजते **त्रिविधमिति**, आदिपदेन विषयेन्द्रिययोरुपग्रहः। ननु तैजसशरीरं लोके न दृष्टिगोचरमिति त्रैविध्यानुपपत्तिरित्य आह **शरीरमिति**। पुराणोतिहासतो ज्ञातत्वेन प्रसिद्धमिति शेषः। ननु तच्छरीरं पार्थिवमेवेत्यत आह **तस्येति**। **तस्य** तैजसशरीरस्य, **अपार्थिवत्वसिद्धिरिति**। पूर्ववदितिशेषः। तथाच तैजसशरीरं न पार्थिवं रसाभावसमानाधिकरणरूपवत्वात् प्रभावत्। यद्वा तैजसशरीरं न पार्थिवमत्यन्तानल संयोगे सत्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणद्रव्योपादानोपादेयत्वात् सुवर्णवत्। यन्नैवं तन्नैवम्। अथवा तैजसपरमाणवो न पार्थिवशरीरारम्भकाः पार्थिवत्वशून्येन्द्रियारम्भकत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा घटः। चक्षुस्तैजसं रूपस्यैवोपलम्भकत्वात् प्रभावदित्याद्यनुमानसाम्राज्यात्तैजसशरीरे पार्थिवत्वाभावः सिद्ध्यतीति भावः।

इन्द्रियं दर्शयति **रूपेति**। **रूपोपलम्भकं** रूपविषयकापरोक्षज्ञानजनकं चक्षुरित्यर्थः। ननु तस्येन्द्रियत्वे मानाभावादित्यत आह **रूपोपलब्धिरिति**। तथाच यथा छिदिक्रियोद्यमननिपतनाभ्यां कुठारदात्रादिसाध्या तथोपपूर्वकलभधात्वर्थरूपा क्रिया रूपादिगोचरापरोक्षज्ञानरूपापि करणसाध्येति। तत्सिद्धौ रूपादिगोचरापरोक्षज्ञानात्मकक्रियाकरणताकस्येत्यनुसन्धाने अन्वयव्यतिरेकाभ्यां चक्षुष एव तदिति सिद्धं शरीरसंयुक्तापरोक्षज्ञानसाधनातीन्द्रियत्वस्वरूपमिन्द्रियत्वं तस्येति भावः। करणं निरूपयति **कर्तृप्रेर्य्यमिति, कर्त्रा प्रेर्यं** प्रेरणीयम्।

कर्तृवृत्तिव्यापारवत्वं करणत्वमित्यर्थः। ननु यत्र गुरुप्रेरितः शिष्यः पठति तत्र पाठकर्तृशिष्ये करणत्वापत्तिरित्यत आह **धातुवाच्येति**, व्यापारेणेत्यत्र जन्यत्वं तृतीयार्थः। कर्तृवृत्तिर्यः समभिव्याहृतधातुवाच्यो व्यापारस्तज्जन्यव्यापारवत् करणमित्यर्थः। कुठारादिव्यापारस्य छिदिधातूपस्थाप्यकर्तृ-वृत्तिव्यापारजन्यत्वाल्लक्षणसमन्वयः। शिष्यकर्तृकपाठे गुरुवृत्तित्वस्य गुरुवृत्तिव्यापारजन्यत्वस्य चाभावात्। गुरुवृत्तिव्यापारस्य शिष्यवृत्त्यध्ययनं प्रत्यन्यथासिद्धत्वादिति भावः। वस्तुतस्तु स्वजनकत्व स्वजन्यजनकत्वोभयसम्बन्धेन वस्तुविशिष्टं करणमिति, विषयेन्द्रियसम्बन्धविशिष्टत्वस्य चक्षुरादौ, परामर्षविशिष्टत्वस्य व्याप्तिज्ञाने, उपस्थितिविशिष्टत्वस्य पदज्ञाने, अतिदेशवाक्यार्थस्मृतिविशिष्टत्वस्य सादृश्यज्ञाने, संस्कारविशिष्टत्वस्यानुभवे, अपूर्वविशिष्टत्वस्य यज्ञादौ सत्वेन, सर्वत्र करणे लक्षणसमन्वयः। न च कुलालजनके कुलाले कुलालात्मकवस्तु विशिष्टत्वस्य सत्वादतिव्याप्तिरिति वाच्यं, द्रव्यभिन्नवस्तुविशिष्टत्वस्य विवक्षितत्वात्। कुलाले द्रव्यभिन्नत्वाभावात्। किञ्च कुलालपुत्रजन्य घटव्यक्तिजनकत्वस्य कुलालजनके विरहात् यथाश्रुतस्यैव सम्यक्त्वात्। न च कार्यमात्रं प्रतीश्वरज्ञानस्य कारणत्वात्तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यं जन्यत्वे सतीति विवक्षितत्वात्। न च तथाप्यदृष्टेऽतिव्याप्तिस्तस्य कार्यमात्रजनकत्वाच्चेति वाच्यं स्वजनकत्वेत्यनेन स्ववृत्त्यसाधारणधर्मावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकत्वस्य विवक्षितत्वादीश्वरज्ञानादृष्टयोः घटादिसाधारणकार्यत्वादिधर्मावच्छिन्नं प्रत्येव जनकत्वात्तयोर्व्यावृत्तिसंभवात्। अथवा स्वजन्यवत्वसंबन्धावच्छिन्नाया स्वजन्यजनकताया विवक्षितत्वात्। चक्षुरादेश्च प्रत्यक्षं प्रति स्वजन्यसंयोगवत्वादिसम्बन्धेन जनकत्वादीश्वरज्ञानादेरतथात्वात्। अव्याप्त्यतिव्याप्त्योरनवकाशात्। यत्तु स्वजनकत्वस्वजन्यवत्वोभयसंम्बन्धेन वस्तुविशिष्टत्वस्य विवक्षितत्वात्। स्वजन्यवत्ता च स्वजनकत्व स्वसामानाधिकरण्योभयसंम्बन्धेन। तथाचेश्वरज्ञाने सामानाधि करण्याभावान्नातिव्याप्तिरिति, तत्तुच्छम्। चैत्रीयादृष्टेऽतिव्याप्तेः। चैत्रीयकार्यसामानाधिकरण्यस्य सत्वात्। अथ श्रवणसन्निकर्षस्य समवायस्य नित्यत्वेन श्रावणप्रत्यक्षकरणे श्रवणेऽव्याप्तिरिति चेन्न स्वाधिकरणत्वस्ववत्वान्यतरसम्बन्धेन वस्तुविशिष्टत्वस्य विवक्षितत्वात्।

स्वाधिकरणत्वं च स्वजनकत्व स्वजन्यजनकत्वोभयसम्बन्धेन। स्ववत्ता च स्वजन्यजनकत्व स्वाभिन्ननित्यनिरूपितानुयोगितावत्त्वोभयसंबन्धेन। स्वाभिन्ने नित्यत्वविशेषणात् संयोगे नित्यत्वविरहेण चक्षुःसंयुक्तघटादावतिव्याप्त्यनवकाशः। अनुयोगित्वनिवेशाच्छब्दादावतिव्याप्तिनिरासः। **परे** तु शब्दस्यानित्यतया तत्प्रतियोगिकत्वविशिष्टसमवायस्य श्रवणजन्यत्वस्वीकारान्नोक्ताव्याप्तिरिति प्राहुः। **मीमांसकास्तु** जनकतासंम्बन्धेन व्यापारवत् करणं, फलेच्छाधीनेच्छाविषयो व्यापारः। तथाच स्वर्गेच्छाधीनेच्छाविषयापूर्वजनके यागे लक्षणसमन्वय इत्याहुः, तत्र इच्छोत्तीर्णतादशायां जायमानं यद्रूपादिगोचरापरोक्षज्ञानं तत्करणे चक्षुरादौ, घनगर्जनाधीनानुमितिकरणे व्याप्तिस्मरणे चाव्याप्तेः। फलेच्छां विनाप्यनुमितिदर्शनात्। एवं व्यापारेऽपि चक्षुस्संयोगादौ परामर्षे चाव्याप्तेः, व्यापारलक्षणस्य तत्र तत्रासत्वात्।

चक्षुस्तैजसं रूपादिषु मध्ये तस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् आलोकवत्। विषयस्तु भौमादिरिति तेजः।

ननु चक्षुषि तैजसत्वे मानाभावात् त्रैविध्यानुपपत्तिरित्यत आह **चक्षुस्तैजसमिति**। एवकारस्योपादानान्न घटस्य स्वरूपाभिव्यञ्जकत्वेन तत्रातिव्याप्तिस्तस्य रूपवत्स्वकीयस्पर्शस्याप्यभिव्यञ्जकत्वात्। नचालोकसन्निकर्षे हेतोः सत्त्वेन व्यभिचार इति वाच्यं, द्रव्यत्वे सतीत्यस्य हेतुविशेषणत्वात्। विषयं दर्शयति **विषयेति**। आदिपदेन दिव्यौदर्य्याकरजप्रभामणिचन्द्रसूर्यनक्षत्रादीनां ग्रहणम्। भूम्यां भवतीति **भौमो** वह्न्यादिः। दिवि भवं दिव्यं, अबिन्धनं, आपः इन्धनानि यस्य तदबिन्धनं, विद्युदादिरित्यर्थः। उदरे भव औदर्यो भुक्तान्नपरिणामहेतुः जठराग्निरिति यावत्। आकरजं पूर्वमुक्तम्। अन्यत्प्रसिद्धम्। नन्वग्न्यादौ भास्वरशुक्लरूपस्य, मरकतमण्यादौ शुक्लरूपोष्णस्पर्शयोरभावात्। चन्द्रे आकरजे चोष्णस्पर्शस्याननुभवात्कथं तेषां तेजस्त्वमिति चेन्न–जपाकुसुमसन्निहित–स्फटिकरूपचन्द्रकान्तमणिमहौषध्यादि समवहितपावकोष्णस्पर्शवत् पार्थिवरूपस्पर्शाभ्यां तेषां रूपस्पर्शयोः पराभवात्। चन्द्रमण्डलान्तर्वर्तिजलस्पर्शेन तदीयोष्णस्पर्शस्य पराभवादिति भावः। **इति तेजः** तेजोनिरूपणं विभागश्च।

शङ्करमिश्रास्तु रसवदवृत्तिद्रवत्ववद्वृत्तिजात्यधिकरणत्वं तेजस्त्वम्। नित्यरूपसमानाधिकरणत्वे सति नैमित्तिकद्रवत्वसमानाधिकरण–

द्रव्यत्वव्याप्यजात्यधिकरणत्वं वा। गुरुत्वसमानाधिकरणात्यन्ता–भावप्रतियोगिरूपसमानाधिकरण द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजात्यधिकरणात्वं वेत्याहुः[१२], तच्चिन्त्यम्। यत्तु उष्णस्पर्शवत्वं, भास्वरशुक्लरूपवत्वमित्यादिलक्षणं, तत्तुच्छम्। उत्पत्तिकालेऽव्याप्तिरव्यापकत्वादिदोषश्च स्यात्।

रूपात्यन्ताभावसमानाधिकरण स्पर्शवान् वायुः। विप्रतिपन्न स्पर्शः रूपरहितद्रव्यवृत्तिः स्पर्शत्वरहितशब्दान्यत्वरहितत्वात् शब्दवत्।

वायुं निरूपयति **रूपेति**। पृथिव्यादावतिव्याप्तिवारणाय **समानाधिकरणान्तम्** स्पर्शविशेषणम्। गगनादावतिव्याप्तिवारणाय **स्पर्शवानिति**। अत्यन्ताभावसमानाधिकरणानां व्यावृत्तिः पूर्ववदत्राप्यूहनीयेति। स्पर्शस्यानेकत्वादुक्तदोषाणां वारणं पूर्ववद् बोध्यमिति। ननु स्पर्शस्य रूपसामानाधिकरण्यानुभवाद्रूपाभावसमानाधिकरणस्पर्शस्याप्रसिद्ध्या तादृशलक्षणाभिधानमनुचितमित्याह– **विप्रतिपन्नेति**। पृथिव्यादिस्पर्शान्तर्भावेण बाधवारणाय विप्रतिपन्नत्वेन पक्षो विशेषितः। विप्रतिपन्नः रूपवद्भिन्नवृत्तित्व प्रकारकसंशयविशेष्यः। तथाच रूपाभावसमानाधिकरणस्य स्पर्शस्य सिद्धिस्तादृशस्पर्शाधारतया च वायुस्सिद्ध्यतीति। लक्ष्यलक्षणयोर्नाप्रसिद्ध्यावकाश इति भावः। केचित्तु वियति चलायमानं तृणं स्पर्शवद्द्रव्याधिष्ठितं धृतिमत्वादस्म च्छिरस्थितोष्णीषवत्। वृक्षकम्पनं तत्पत्रचलनं च स्वातिरिक्तद्रव्यप्रयोज्यं चेतनातिरिक्तक्रियात्वात् रथक्रियावदित्याद्यनुमानसाम्राज्याद् वायुः सिद्ध्यतीति प्राहुः। **नव्यास्तु** वायुं स्पृशामीति प्रत्यक्षस्यैव प्रमाणत्वात्। न च द्रव्यप्रत्यक्षे रूपवत्वस्य कारणत्वात्तद्बाधेन न प्रत्यक्षं वायोरिति वाच्यं, मानाभावेन द्रव्यप्रत्यक्षसामान्यं प्रति रूपस्याकारणत्वादन्यथास्पर्शवत्वस्यैव द्रव्यप्रत्यक्षे कारणत्वमस्तु। न च प्रभाप्रत्यक्षे व्यभिचार इति वाच्यं तावतापि वायुप्रत्यक्षे व्यभिचारप्रसङ्गः। न च वायुरनुमेयो न प्रत्यक्ष इति वाच्यं, प्रभैवानुमेया न प्रत्यक्षेत्येवास्तु विनिगमकाभावात्। न च प्रभां प्रश्यामीत्यस्यैव विनिगमनकत्वादिति वाच्यं वायुं स्पृशामीत्यनुभवस्यापि तत्र विनिगमकस्य सत्त्वादेकशेषस्य कर्त्तुमशक्यत्वादित्यग्रे पुनः स्फुटीभविष्यतीति।

स नित्यानित्यभेदेन द्विविधः। अनित्यस्त्रिविधः शरीरादिभेदेन। वायुत्वं शरीरवृत्ति उत्पाद्येन्द्रियवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति तत्सिद्धिः। स्पर्शोपलम्भकमिन्द्रियं वायवीयं रूपादिषु मध्ये स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् व्यजनपवनवदिति। विषयस्तूपलभ्यमानस्पर्शाधिष्ठानभूतः।

वायुं विभजते **स इति, स** वायुः, **द्विविधः** द्विप्रकारकः, **नित्यः**, परमाणुरूपः, **अनित्यः** कार्य्यरूपः। अनित्यं विभजते **अनित्येति,** अनित्यो वायु**स्त्रिविधः**, त्रिप्रकारक इत्यर्थः। शरीरादिभेदेनेत्यत्रादिपदेन–विषयेन्द्रिययारुपग्रहः। ननु शरीरे वायुत्वस्वीकारेप्रभाणा भावात्त्रैविध्यानुपपत्तिरित्यत आह **वायुत्वमिति। उत्पाद्यत्वम्** उत्पत्तिमत्वं, **तत्सिद्धिः** वायुत्वे शरीरवृत्तित्वसिद्धौ शरीरे वायुत्वसिद्धिरित्यर्थः।

ननु त्वचीन्द्रियत्वसिद्धौ पुनस्तत्रैव मानाभावादतस्त्वचीन्द्रियत्वं साधयन् वायवीयत्वं साधयति **स्पर्शेति**। तथा च स्पर्शोपलब्धिः करणसाध्या क्रियात्वात् च्छिदिक्रियावत्। किंच स्पर्शोपलब्धिरिन्द्रियजन्या उपलब्धित्वाद्रूपोपलब्धिवदित्यनेन त्वचीन्द्रियत्वसिद्धिरिति भावः। पक्षे स्पर्शोपलम्भकत्वविशेषणादंशतो बाधवारणं स्वरूपासिद्धिवारणञ्च बोध्यम्, अन्यथेन्द्रियत्वाश्रये चक्षुरादौ वायवीयत्वस्य स्पर्शोपलम्भकत्वस्य चासत्वेन बाधस्वरूपासिद्ध्योः प्रसंगः स्यात्। सन्निकर्षान्तर्भावेण बाधादिवारणा**येन्द्रियेति**। सन्निकर्षान्तर्भावेण व्यभिचारवाणाय हेतौ द्रव्यत्वे सतीति पूरणीयम्। प्रदीपादौ व्यभिचारवारणा**यैवकारस्यो**पादानम्। स्पर्शेतरगुणाभिञ्जकत्वाभावार्थकमिति। प्रदीपादौ रूपादिव्यञ्जकत्वान्न व्यभिचार इति भावः। **व्यजनपवनवदित्यस्य** पूर्वमङ्गसङ्गिसलिलशैत्याभिव्यञ्जकेति पूरणीयमुपरञ्जकमिति। विषयं दर्शयति **विषयस्त्विति**। उपलभ्यमानत्वं त्वाचप्रत्यक्षविषयत्वमधिष्ठानत्वमाश्रयत्वम्। तथाचापरोक्षविषयस्पर्शाधिकरणं वायुर्विषय इत्यर्थः।

प्राणस्तु शरीरान्तः प्रेरणहेतुर्वायुरिति वायुः।

स च विषयः प्राणादिभेदेनानेकविधस्तत्र प्रमाणं लक्षयति **प्राणस्त्विति**। स च प्राण एकोऽपि स्थानभेदेन पञ्चसंज्ञां लभते, प्राणोऽ पानःसमानश्चोदानव्यानौ च वायावित्यमरकोषात् इति **वायुः** वायोर्लक्षणं विभागश्च।

शब्दात्यन्ताभावानधिकरणं नभः। शब्दः क्वचिदाश्रितः गुणत्वात् रूपवदिति। न च शब्दः स्पर्शवदाश्रयः स्पर्शासहकारित्वात् बुद्धिवत्। न च कालाद्याश्रयो बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वाद् रूपवदिति परिशेषात् तत्सिद्धिरिति।

आकाशं निरूपयति **शब्देति**। अत्राप्यत्यन्तपदव्यावृत्तिः पूर्ववत्। अथ शब्दाधिकरणं नभ इत्यस्यैव सम्यक्त्वे गुरुतरलक्षणानुसरणमनुचितमिति चेन्न यावच्छब्दवत्वं यत्किञ्चिच्छब्दवत्वं वा लक्षणम्? नाद्य, एकदाभावात्, ज्ञानासंभवाच्च। नान्त्यः, यत्किञ्चित्पदेनैकव्यक्तेरपि धर्तुं शक्यतया तस्या विनाशेऽप्याकाशस्य लक्ष्यस्य विद्यमानत्वात्, नहि लक्षणरहितं लक्ष्यं क्वचिदपि दृष्टचरमिति। कालान्तरे पुरुषान्तरस्य लक्षणप्रकारकज्ञानासंभवाच्च। लक्षणस्य विनाशादितरभेदाननुमापकत्वाच्च। न च शब्दसामान्यवत्वं लक्षणमतो नोक्तदोषाणामवकाश इति वाच्यं शब्दस्यानेकत्वेन लक्षणे नानात्वव्यवहारापत्तेरेकत्वव्यवहारानुपपत्तेश्च। शब्दस्यानित्यतया प्रलये शब्दस्याभावे नाव्याप्तिप्रसंगाच्च। शब्दसामान्योपलक्षितत्वस्य तथात्वेऽव्याप्तिवारणेऽप्युपलक्षिततत्वस्य प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नतदभावाभावरूपस्य गुरुशरीरतयैतल्लक्षण एव गौरवप्रसंगात्। स्वमतेऽत्यन्ताभावस्य ध्वंसप्रागभावाधिकरणेऽसत्वात्। देशकालानवच्छिन्नस्वरूपसम्बन्धेन शब्दाभावाधिकरणभिन्नत्वस्य लक्षणत्वाद्वा, न कोऽपि न दोषः। तादृशभेदस्य नित्यत्वादेकत्वाच्चेति।

नन्वाकाशे प्रमाणाभावाल्लक्ष्यासिद्ध्या लक्षणकरणं न सम्भवदुक्तिक मित्यत आह **शब्द इति**। तथाच गुणत्वेन शब्दस्य क्वचिदाश्रितत्वसिद्धौ कः शब्दाश्रय इति–विशेषतोऽभिज्ञानार्थमनुमानान्तरमाह **नचेति। स्पर्शासहकारित्वं** स्पर्शासामानाधिकरण्यम्। तथा च पृथिवीजलतेजोवायुषु न शब्दाश्रयत्वमिति सिद्धम्। कालदिगात्ममनस्सु शब्दाश्रयत्वं निषेधयति **न चेति**। तथा च पृथिव्याद्यष्ट द्रव्याश्रितत्वाभाव सिद्धौ गुणश्चाश्रयं विना न तिष्ठतीति तदाश्रयाकाश एवेति वक्तव्यो भवतीति। शब्दाश्रयतयाऽऽकाशसिद्धिसम्भव इति। स चाकाशो नित्यो विभुरेकश्च। तथाचाकाशो नित्यो निरवयवद्रव्यत्वात् परमाणुवत् विभुत्वात् आत्मवद्वा। आकाशस्य

शरीरविषययोरभावान्न विभजनं, श्रोत्रेन्द्रियन्त्वाकाश एव। नन्वेकस्याकाशस्य कथमिन्द्रियत्वमिति चेन्नोपाधिभेदात्तत्संभवात्। अथ शब्दस्य गुणत्वसिद्धौ तदाश्रयतयाऽऽकाशस्य सिद्धिर्भवति, गुणत्वस्यैव तत्र विवादग्रस्तत्वात्। तथाह्यत्र मीमांसकाः शब्दो न गुणः प्रत्यक्षद्रव्यगुणत्वाभाववत्वे सति प्रत्यक्षत्वात् घटवदित्यनेन गुणभेदस्तत्र साधयन्ति। सिद्धे च गुणभेदे शब्दो द्रव्यं साक्षात्सन्निकर्षग्राह्यत्वात् घटवदित्यनेन द्रव्यत्वं तत्र साधयन्ति। तथाच शब्दस्य द्रव्यात्मकत्वात् गुणभिन्नत्वाच्च न तदाधारतया ऽऽकाशस्य सिद्ध्यवकाश इति चेन्न प्राचीनमते वायोरनुमेयत्वात्। प्रत्यक्षद्रव्यगुणत्वाभाववत्वे सति प्रत्यक्षत्वहेतोः वायुस्पर्शे सत्वेन तत्र साध्यस्य गुणभेदस्य विरहेण प्रथमहेतौ व्यभिचारप्रसंगात्। तथाच प्रथमहेतुना शब्दे गुणभेदस्य सिद्ध्यसंभवात्। किंच वायुः प्रत्यक्षोऽनुमेयो वेति सन्देहे निरुक्तहेतोस्सन्दिग्धानैकान्तिकत्वाद् व्याप्तिनिश्चयस्यासंभवेन परामर्षासंभवात्। न च द्रव्यप्रत्यक्षसामान्यं प्रति स्पर्शवत्वस्य कारणत्वात् वायुः प्रत्यक्ष एव न संशयस्यावसर इति वाच्यं प्रभाप्रत्यक्षे व्यभिचारात्तादृशकार्यकारणभावस्य वक्तुमशक्यत्वात्। आकाश दिगादिचाक्षुषप्रत्यक्षवारणाय द्रव्यप्रत्यक्षसामान्यं प्रति रूपत्वस्यैव कारणत्वात्। वायोः प्रत्यक्षाभावात् विशेषरूपेण कार्यकारणभावस्यावश्यकत्वेन सामान्यकार्य्यकारणभावस्यानावश्यकत्वे सन्देहस्य दुर्वारत्वात्। यदि च वायुं स्पृशामीत्यनुभवप्रामाण्यानुरोधाद्वायोः प्रत्यक्षमवश्यमंगीकार्य्यमित्युच्यते तदा पुष्पं जिघ्रतीतिवत्तस्याप्युपपत्तेर्न वायोः प्रत्यक्षावसरावकाश इति। न च वायुः प्रत्यक्षः स्पर्शवत्वे सति महत्वात् घटवदित्यनुमानेन प्रत्यक्षत्वं तस्येति वाच्यं वायुर्न्न प्रत्यक्षो द्रव्यत्वे सति रूपरहितत्वात् दिग्वदिति सत्प्रतिपक्षापत्तेः। किञ्च हन्त भो वायुप्रत्यक्षेऽप्यनुमानापेक्षेति। वस्तुतस्तु शब्दो गुणोऽसर्पचक्षुर्ग्रहणायोग्य–वहिरिन्द्रियग्राह्यजातिमत्वात् स्पर्शवदित्यनेन शब्दे गुणत्वस्यैव सिद्धिसम्भवात्। द्रव्यत्वसाध्यकद्वितीयहेतोश्च शब्दाभावे सत्वेन तत्र साध्यविरहात्तत्रापि व्यभिचारप्रसंगः। वस्तुतस्तु शब्दो न द्रव्यं गुणानधिकरणत्वाद्रूपवत्। शब्दो न द्रव्यं चक्षुस्त्वग्व्यतिरेकित्वविशिष्टबहिरिन्द्रियग्राह्यत्वात्। वस्तुतस्तु साक्षात्सन्निकर्षग्राह्यत्वेन यदि द्रव्यत्वं शब्दे **मीमांसका**भिप्रेतं तदा शब्दोऽनित्यः साक्षाद्वहिरिन्द्रियसन्निकर्षग्राह्यत्वात् घटवदित्यनेन तस्यानित्यत्वप्रसंगेन शब्दनित्यतासिद्धान्तासङ्गतिः। अनित्यत्वस्वीकारेऽपि न निर्वाहस्तथाहि

अनित्यद्रव्यस्य सावयवत्वनियमात्। शब्दस्याशुविनाशित्वात् शब्दस्य शब्दं प्रति समवायिकारणत्वासंभवात्। द्रव्यनाशस्य समवायिनाशाधीनत्वात्। प्रथमशब्दस्य शब्दं विनाप्युत्पत्तेरानुभविकत्वाद्विजातीयस्य विजातीय द्रव्यसमवायिकारणत्वासम्भवात्। तथाच शब्दो गुणो वेति तदाधारतयाऽऽकाशस्य सिद्धिसम्भवात्। न च शब्दस्य द्रव्यानात्मकत्वे अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूदित्यनेन बोधितस्य शब्दे महत्वस्यानुपपत्त्या तादृशवाक्य स्याप्रामाण्यापत्तिर्गुणे गुणानंगीकारादिति वाच्यं, तत्र महत्वं न महत्परिमाणवत्वम्। किन्त्वधिकदेशावच्छिन्नाकाशवृत्तित्वमिति प्रामाण्यानुपपत्तिविरहादिति। अथ शब्दस्य गुणत्वेऽमूर्ततया शतघ्नीशब्दात् घनगर्जनाच्च कथं गृहादितो मृत्तिकातृणादेर्निपातसंभवः। संयोगाभावात् गुरुत्वाभावाच्चेति चेन्न शब्दनिमित्तवायुना तत्संभवात्। एवं तर्हि वायुगुण एव शब्दोऽस्त्विति किमित्याकाशस्य गुणः। शब्दः स्वीक्रियत इति चेन्न शब्दो न वायुवृत्तिः स्पर्शासमानाधिकरणात्वात् सुखवत्। स्पर्शाव्यापकत्वात् रूपवद्वेत्यनेन शब्दे वायुवृतित्वाभावस्यैव सिद्धिसंभवात्।

केचित्तु शब्दो न स्पर्शवद्विशेषगुणोऽग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभाव–वत्वे सत्यकारणगुणपूर्वकप्रत्यक्षत्वात् सुखवदित्यनेन वायौ तदभावस्यैव सिद्धेः। पाकजरूपादौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्। पटरूपादौ व्यभिचारवारणाया कारणगुणपूर्वकेति। जलरूपादौ व्यभिचारवारणाय प्रत्यक्षेति। न दिक्कालमनसां गुणः विशेषगुणत्वाद्रूपवत्। नात्मविशेषगुणः बहिरिन्द्रियग्राह्यत्वाद्रूपवत्। इत्थञ्च शब्दाधिकरणं नवमं गगनात्मकं द्रव्यं सिध्यति। न च वाय्ववयवेषु सूक्ष्मशब्दक्रमेण वायौ कारणगुणपूर्वकः शब्द उत्पद्यतामिति वाच्यम् अयावद्द्रव्यभावित्वेन वायुविशेषगुणत्वाभावात्। अयावद् द्रव्यभावित्वं च स्वाश्रयनाशजन्यनाशप्रतियोगि यत् तद्भिन्नत्वम्। वस्तुविशिष्टान्यत्वं वा। तस्यानुगमः—वस्तुवैशिष्ट्यं च स्वतादात्म्य स्वाश्रयनाशजन्यनाशप्रतियोगित्वोभयसम्बन्धेन। स्वपदं वस्तुपरमिति वायोर्विनाशित्वादुपलभ्यमानवायुं विनापि शब्दस्योत्पत्तिदर्शनाच्चेत्याहुः। अथात्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायु रित्यादि श्रुत्या द्यावाभूमी जनयन्नित्यादि श्रुत्या चाकाशस्य जन्यत्वावगमाच्छब्दस्यायावद्द्रव्यभावित्वं न संभवदुक्तिकमिति चेन्न। खं बह्मेति श्रुतिविरोधेने दृशश्रुत्यादेरन्यत्र तात्पर्य्यात्। प्रथमश्रुतेस्संहारसृष्टिक्रमेण भूतशुद्धिपरत्वाच्च। भ्रमात्मकज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वात् द्वितीयश्रुतेरपि परमेश्वरभावनायां तात्पर्यात्। आकाशस्य निरवयवत्वेन परममहत्परिमाणवत्वेन

परमाण्वात्मवन्नित्यत्वसिद्धिसंभवात्। लाघवाच्चैकत्वसंभवादिति दिक्। **वादिविनोदे शंकरमिश्रास्तु** शब्दाश्रयत्वमाकाशत्वम्।[१३] ज्ञानानधिकरणविशेषगुणाधिकरणकर्म्मानधिकरणत्वं वा। ज्ञानासमानाधिकरणमूर्तत्वासमानाधिकरणविशेषगुणत्वं वा। ज्ञानस्पर्शाधिकरणानधिकरणविशेषगुणवत्वं वा। द्रव्यत्वव्याप्यजात्यनधिकरणत्वे सति विशेषगुणवत्वं वेत्याहुस्तच्चिन्त्यम्।

अनियतपरत्वासमवायिसमवायित्वरहितपरत्वासमवायिसमवायी मूर्तत्वरहितः कालः।

कालं निरूपयति **अनियतपरत्वेति**। अयं भावः। **अनियतपरत्वं** दैशिकं, तथाहि काश्यां चैत्रस्य स्थितिदशायां मिथिलास्थमैत्राच्चैत्रः पर इति बुद्धिरुत्पद्यते। सा च परत्वनिबन्धना। यदा च मैत्रः काश्यां चैत्रश्च मिथिलायां तदा तद्बुद्धिर्नोत्पद्यते। उत्पद्यते च चैत्रो मैत्रादपर इति दैशिकपरत्वमनियतं भवति। कालिकपरत्वं च नानियतं किन्तु नियतमेव। तथाहि ज्येष्ठे कनिष्ठात्परत्वबुद्धिरेवोत्पद्यते न त्वपरत्वबुद्धिरपीति। तथा चानियतपरत्वासमवायी चैत्रदेशयोस्संयोगस्तत्समवायित्वं दिशि तद्रहितत्वे सतिज्येष्ठगतपरत्वासमवायी ज्येष्ठकालयोस्संयोगस्तत्समवायित्वे सति मूर्त्तत्वरहितो यस्स काल इति समुदितलक्षणार्थः। अत्र दिश्यतिव्याप्तिवारणाय प्रथमसत्यन्तं, आकाशात्मन्यतिव्याप्तिवारणाय द्वितीयसत्यन्तं, ज्येष्ठेऽतिव्याप्तिवारणाय मूर्तत्वरहितत्वोपादानमिति बोध्यम्।

गगनमनियतपरत्वासमवायिसमवायित्वरहितमूर्तत्वरहितज्ञानसमवायित्वरहितद्रव्यान्यदमूर्तत्वादात्मवदिति तत्सिद्धिरिति कालः।

ननु काले प्रमाणाभावाल्लक्ष्यासिद्धौ लक्षणकरणमनुचितमित्यतः कालसाधकमानमाह **गगनमिति**। अनियतपरत्वासमवायिसमवायित्वाभावविशिष्टत्वे सति मूर्तत्वसामान्याभावविशिष्टत्वे सति ज्ञानसमवायित्वाभावविशिष्टद्रव्यत्व व्याप्यधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवदित्यर्थः। दिगात्मकद्रव्यभेदमादायार्थान्तरवारणाय प्रथमसत्यन्तम्। चैत्रादिद्रव्यभेदमादायार्थान्तरवारणाय वा। यत्रानियतपरत्वं नोत्पन्नं तद्द्रव्यभेदमादाय मनोभेदमादाय वार्थान्तरवारणाय द्वितीयसत्यन्तम्। आत्मभेदमादायार्थान्तरवारणाय तृतीयं विशिष्टान्तं

द्रव्यविशेषणम्। रूपादिकमादायार्थान्तरवारणाय द्रव्यपदं साध्यघटकमिति बोध्यम्। अत्र ज्ञानसमवायित्वं समवायसम्बन्धेन ज्ञानवत्त्वं न तु ज्ञानसमवायिकारणत्वं गौरवादिति ध्येयम्। तथा च गगने तादृशद्रव्यसिद्धौ भेदप्रतियोगितया कालस्य सिद्धिसम्भवान्न लक्षणकरणमनुचितमिति भावः। स च कालो विभुरेको नित्यश्च। न चैकत्वे क्षणादिव्यवहारो न स्यादिति वाच्यम् उपादिभेदाद् व्यवहारसम्भवात्। उपाधिश्च स्वजन्यविभागावच्छिन्नं कर्म इत्यन्यत्र विस्तरः।

अनियतपरत्वासमवायिसमवायिनी मूर्तत्वरहिता दिक्। कालो विशेषगुणरहितामूर्तद्रव्यान्यः मूर्तत्वरहितत्वात् आकाशवदिति तत्सिद्धिः।

दिशं निरूपयति **अनियतेति**। आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय **समवायी**त्यन्तम्। चैत्रादावतिव्याप्तिवारणाय **मूर्त्तत्वरहितेति**। ननु दिक्सत्त्वे लक्षणं सम्भवति, तत्रैव प्रमाणाभावादित्यत आह **कालेति**। तथाच विशेषगुणसामान्याभावविशिष्टमूर्त्तसामान्यभेदविशिष्टद्रव्यत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकभेदस्साध्यः। अत्र गुणरहितद्रव्यस्याप्रसिद्ध्या साध्यासिद्धिवारणाय **विशेषेति** गुणविशेषणम्। विशेषगुणवत्ता च पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशात्मस्वेव इति न साध्याप्रसिद्धिरिति। आकाशात्मभेदमादायार्थान्तारवारणाय प्रथमविशिष्टान्तम् द्रव्यविशेषणम्। मनोभेदमादायार्थान्तरवारणाय द्वितीयविशिष्टान्तं द्रव्यविशेषणम्। रूपादिभेदमादायार्थान्तरवारणाय द्रव्यस्य भेदप्रतियोगितयोल्लेखः। तथाच कालवृत्तिभेदप्रतियोगित या दिक्सिद्धिः। सा च विभ्वी लाघवादेका नित्या च। ननु तस्या एकत्वे प्राच्यादिव्यवहारो न स्यादिति चेन्न उपाधिभेदात्तदुपपत्तेः। तथा हि यत्पुरुषस्योदयगिरिसन्निहिताया दिक् सा तत्पुरुषस्य प्राची। एवमुदयगिरिव्यवहिता या दिक् सा प्रतीची। एवं यत्पुरुषस्य सुमेरुसन्निहिता या दिक् सोदीची। तद्व्यवहिता त्ववाची। **केचित्तु** दैशिकपरत्वापरत्वे दूरत्वान्तिकत्वरूपे अस्मादयं पर इतिबुद्धे रसाधारणकारणं दिगेव। दैशिकपरत्वापरत्वयोरसमवायिकारणसंयोगाश्रयतया लाघवादेका दिक् सिद्ध्यतीति। अत्र दिशि द्रव्यत्वसिद्धिस्त्वाचार्यानुमानेनैव भवतीति बोध्यम्। एवं कालिकपरत्वमपरत्वञ्च ज्येष्ठत्वकनिष्ठत्वरूपम् ज्येष्ठोऽयमस्मात्पर इति बुद्धेरयमस्मादपर इति बुद्धेश्चासाधारणं कारणं काल एव।

कालिकपरत्वापरत्वयोरसमवायिकारणसंयोगाश्रय काल एव, स च लाघवादेकः सिद्ध्यतीति। शेषः पूर्ववदिति प्राहुः।

ज्ञानात्यन्ताभावरहित आत्मा।

आत्मानं निरूपयति **ज्ञानेति। अत्यन्त**पदव्यावृत्तिः पूर्ववत्। यत्तु ज्ञानवदात्मेति तत्तुच्छम्, मुक्तात्मन्यव्याप्तेः। सुषुप्तिदशायाञ्चाव्याप्तेः। तदानीं ज्ञानस्य तत्र तत्रासत्वात्। स्वमतेऽत्यन्ताभावस्य ध्वंसप्रागभावाधिकरणे सत्वायोगान्नातिव्याप्तिः। अथवा ज्ञानाभावस्य निरवच्छिन्नस्वरूपसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य विवक्षितत्वात् वा ज्ञानाधिकरणभेदवद्-वृत्तित्वविशिष्टस्य ज्ञानाभावस्याभाववदात्मेत्यस्य लक्षणसमन्वयसम्भवात्। ज्ञानाधिकरणभेदरहितत्वस्य परमार्थत्वादिति। न च ज्ञानवत्त्वस्योपलक्षणविधया निवेशे यत्तु कल्पस्यापि निर्दोषत्वमिति वाच्यम्, उपलक्षणत्वस्य प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नतदभावाभाववत्त्वस्य गुरुशरीरतया गौरवापत्तेर्ज्ञानस्यानेकत्वेन लक्षणे अनेकत्वव्यवहारापत्तेः। एकत्वव्यवहारानुपपत्तेश्च। लक्षणे लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणाभावप्रतियोगित्वापत्तेश्च। परमेश्वरे जन्यज्ञानाभावस्य, जीवात्मनि नित्यज्ञानाभावस्य सत्त्वात् जीवात्मनि चालिनिन्यायेन तत्तज्ज्ञानाभावस्य सत्त्वाच्चेति।

परत्वासमवायिसमवायित्वरहितशब्दासमानाधिकरण कार्याश्रयो वा। ज्ञानं क्वचिदाश्रितं गुणत्वाद् रूपवदिति तत्सिद्धिः। न च शरीरेन्द्रियाणां तदाश्रयत्वं कार्यत्वात् घटवत्।

केवलजीवात्मनो लक्षणमाह **परत्वेति**। कार्यमदृष्टादिकं पृथिवीजलतेजोवायु दिक्कालमनः प्रभृतिषु अतिव्याप्तिवारणाय **रहितान्तं कार्याश्रयविशेषणम्**। आकाशेऽतिव्याप्तिवारणाया**समानाधिकरणान्तं कार्यविशेषणम्**। ननु शरीराद्यतिरिक्तात्मनि प्रमाणाभावाल्लक्ष्यासिद्धौ लक्षणकरणमनुचितम्। न चाहं सुखीत्यादिप्रत्यक्षस्यैव शरीराद्यतिरिक्तात्मनि प्रमाणत्वमिति वाच्यम्। विप्रतिपन्नं प्रत्यहंबुद्धिविषय आत्मा इति प्रथमतो वक्तुं न शक्यते। तथाहि स्थूलोऽहं कृशोऽहम् श्यामोऽहंगौरोऽहम् सुन्दरोऽहमित्यादि प्रत्यक्षविषयत्वस्य शरीरेऽपि अनुभूयमानत्वात्। अतः शरीरातिरिक्तात्मनि अनुमानप्रमाणमाह **ज्ञानमिति**। तत्सिद्धिर्ज्ञानाधारतया आत्मसिद्धिरित्यर्थः। ननु शरीरेन्द्रियाणामेव ज्ञानत्वमस्तु

किमिति शरीराद्यतिरिक्तात्मस्वीकारेणेत्यत आह **नचेति**। तथाच शरीरं न ज्ञानवत् कार्यत्वाद् घटवत् बहिरिन्द्रियाणि न ज्ञानवन्ति कार्यत्वाद् घटवत् मनो न ज्ञानवत् करणत्वाच्चक्षुर्वत्। तथाच शरीरादौ ज्ञानाभावसिद्धौ तेषां ज्ञानाश्रयत्वासंभवात् ज्ञानाधारतयात्मसिद्धिरिति भावः।

कार्यस्य तदाश्रयत्वे स्वर्गार्थिनां गयाज्योतिष्टोमादिव्यपदेशो न स्यात्, न च मनसस्तदाश्रयत्वं करणत्वाच्चक्षुर्वत्।

शरीरादौ ज्ञानादिकार्याश्रयत्वे बाधकमप्याह **कार्येति** शरीरादेरित्यर्थः। **तदाश्रयत्वे स्वर्गार्थिनां** स्वर्गेच्छूनां **ज्योतिष्टोमादिव्यपदेशो** व्यवहारो न स्यात्, तत्तत्कामनया तत्तत्कामनाविषयोपाये प्रवृत्तिर्न स्यादित्यर्थः। ज्योतिष्टोमादावित्यत्रादिपदेन वेदाध्ययनतदर्थविचारात्ममीमांसाध्ययना-त्यन्तिकदुःखनिवृत्तिप्रयोजकान्वीक्षिक्यादिशास्त्राध्ययनब्रह्मचर्यादीनां परिग्रहः। अयंभावः, शरीरेन्द्रियाणां आशुविनाशितया तद्गतगुणादेरपि तथात्वात्। जन्याधारकगुणनाशस्य आश्रयनाशाधीनत्वात्। धर्म्मादीनां स्वर्गादिफलकत्वाभावेन स्वर्गार्थितया यागादौ गयापिण्डदानादौ च प्रवृत्त्यनुपपत्तिः। प्रवृत्तेरिष्टसाधनताधीसाध्यत्वात्। इष्टस्य चैतच्छरीरावच्छेदेनासंभवात् इति। अविनाशी आत्मैव ज्ञानधर्माद्याश्रय इति। **परे** तु जातमात्रस्य स्तनपानादौ प्रवृत्तिर्न स्यात् तदानीमिष्टसाधनताधीविरहात्। मम तु पूर्वजन्मानुभूतेष्टसाधनतानुभवाहित-संस्कारजनितेष्टसाधनतास्मरणधीर्निराबाधा। न चोद्बोधकाभाव इति वाच्यम्। अनायत्या जीवनादृष्टस्यैव तदानीमुद्बोधकत्वादिति प्राहुः। **केचित्तु** शरीरे ज्ञानवत्त्वस्वीकारे बाल्यावलोकितघटादेर्युवावस्थायां स्मरणानुपपत्तिः। स्मृतिं प्रति समवायेन स्वसमानविषयकानुभवजन्यसंस्कारस्य हेतुत्वात्, तस्य शरीरनिष्ठत्वात् बाल्यशरीरस्य तदानीमभावेन संस्कारस्याभावात्। नहि चैत्रानुभूतमर्थं मैत्रः स्मरतीति। न च विषयतासंबन्धेनैवास्तु कार्यकारणभाव इति वाच्यं मैत्रसंस्कारात् चैत्रस्य स्मरणापत्तिर्विषयस्याविशेषात्। तदीयत्वनिवेशे चोक्तानुपपत्तेस्तादवस्थ्यात्। न च पूर्वशरीरगतसंस्कारस्योत्तरशरीरे संक्रमस्वीकारे नोक्तापत्तिरिति वाच्यम्, वासनासंक्रमे मानाभावात्। न च यद्द्रव्यं यद्द्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयमिति तदुपादानोपादेयत्वसिद्धौ तद्गतगुणसंक्रमस्यापि सत्वात्। दृष्टं च शुक्लपटध्वंसजन्ये खण्डशुक्लपटे इति वाच्यम्, भस्मनि तद्व्यभिचारात्। तत्र विजातीयरूपादिदर्शनात्।

एवमिन्द्रियादौ ज्ञानादिस्वीकारे चाक्षुषानुभवविषयस्य चक्षुर्विनाशदशायां स्मरणानुपपत्तिरनुभवकर्त्तुरभावात् अन्यत्सर्वं पूर्ववदित्याहुः।

ननु मनसो नित्यत्वात् तस्य ज्ञानाश्रयत्वस्वीकारे नोक्तदोषाणामवकाश इत्यत आह **न च मनस** इति। केचित्तु मनस इन्द्रियत्वे मानाभावात् करणत्वासिद्धौ स्वरूपासिद्धिः। न च मनः षष्ठेन्द्रियाणीति भगवद्वचनं प्रमाणमिति वाच्यम् अनिन्द्रियेणापि मनसा षट्संख्यापूरणाविरोधात्। न हीन्द्रियगतसंख्यापूरणमिन्द्रियेणैव भवतीति नियमः। यजमानपञ्चमा इडां भक्षयतीत्यत्र ऋत्विक्गतपञ्चसंख्यया। अनृत्विजापि यजमानेन। वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् इत्यादौ वेदगतपञ्चत्वसंख्याया अवेदेनापि महाभारतेन पूरणदर्शनात्। इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः इत्यादिश्रुत्या मनसो ऽनिन्द्रियत्वावगमाच्चेत्याहुस्तन्न इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना इतिभगवद्वचनविरोधात्। नहि विजातीयगतनिर्द्धारणत्वं प्रतीयत इति। वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः। इन्द्रियाणां मनश्चास्मि इत्यादिप्रकरणविरोधाच्चेति। वस्तुतस्तु मनसैवानुद्रष्टव्यमिति श्रुत्या मनसः करणत्वप्रतिपादनात्। मनः षष्ठेन्द्रियाणीत्यस्य यथाश्रुतार्थपरत्वमेव सम्यक्। इन्द्रियेभ्यः परेत्यत्र इन्द्रियभेदविशिष्टार्थभेदस्य मनसि सत्वे न हि मनसि इन्द्रियसामान्यभेदः सिद्ध्यति। घटे भेदविशिष्टपटभेदस्य घटसत्वेऽपि घटसामान्यभेदस्य घटेऽसंभवात्। तथा च मनस इन्द्रियत्वं सिद्धमिति। ननु मनसि इन्द्रियत्वस्वीकारेऽपि नित्यत्वे मानाभावात्, तस्यानित्यत्वे च तन्मनोऽसृजदिति श्रुतेः प्रमाणत्वाच्चेति चेन्न, मनो नित्यं निरवयवद्रव्यत्वात् परमाणुवत्। मनो नित्यं द्व्यणुकान्यत्वे सत्यणुत्वात् परमाणुवदित्याद्यनुमानस्य प्रमाणत्वात्। अणुर्म्मनो ज्ञानानामयौगपद्यात्। मनस उत्पत्तिबोधकश्रुतेरन्यार्थकत्वात्। तथाहि तत् ब्रह्म मनः मनसो विषयेन्द्रियेण संबन्धमसृजत् असंपादयदित्यर्थः। वस्तुतस्तु द्वितीयलक्षणम् जीवात्मपरमात्मसाधारणम्। ननु परमेश्वरे जन्यज्ञानादेरभावसत्वादव्याप्तिरिति वाच्यं प्रतिष्ठितं प्रपूजयेदित्यनेन प्रतिष्ठाविधानेन प्रतिमायां अहंकारममकारौ भवतः। प्रतिपादितञ्च प्रथमस्तवके कुसुमाञ्जलिग्रन्थे।

निमित्तभेदसंसर्गादुद्भवानुद्भवादयः।

देवतासन्निधानेन प्रत्यभिज्ञानतोऽपि वा।।

इत्यनुसूयमेवेति। तथा चाहंकारात्मकममकारात्मकजन्यज्ञानमादाय परमेश्वरे

लक्षणसमन्वयसम्भवात्। अथ तत्साक्षादपरोक्षात् ब्रह्मेति श्रुत्या सत्यज्ञानमानन्दं ब्रह्मेत्यादिश्रुत्या च आत्मकत्वावधारणाल्लक्षणद्वयेऽप्यात्मन्यव्याप्तिर्ज्ञानाभावस्य सत्वात् इति चेन्न

सर्वज्ञतातृप्तिरनादिबुद्धिः स्वतन्त्रतानित्यमलुप्तशक्तिः।

अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।।

इत्यादिस्मृतीनां यस्सर्वज्ञः स सर्ववित् स ऐच्छदित्यादि ज्ञानेच्छाविशिष्टपरमेश्वरबोधकश्रुतिविरोधभयेन पूर्वश्रुतिघटकज्ञानपदस्य ज्ञानाश्रयार्थकत्वादव्याप्त्यसंभवात्। एतेन ब्रह्मणः सुखरूपत्वमपि निरस्तम्। असुखामिति श्रुतेश्च सुखबोधकपदघटितश्रुतिघटकसुखपदस्य दुःखाभाववदर्थकत्वात्। सुखासत्वेऽपि भारोत्तारदशायां वाहिकस्य संप्रति सुखी अहमित्यनुभवात्। दुःखाभावे सुखोपचारात्। एतेन प्रकृतिरेव कर्त्री ज्ञानादीनां प्रकृतावेव स्वीकारादिति सांख्यमतमपास्तम्। चेतनोऽहं करोमि जानामि इच्छति यतते करोति जानाति स करोतीत्याद्यनुभवाच्चैतन्याश्रय एव ज्ञानेच्छाकृतीनां स्वीकारस्यावश्यकत्वात्। प्रकृतिरचेतना परिणामित्वात् प्रकृतिर्न ज्ञानेच्छाद्याश्रया अचेतनत्वात् घटवदित्यधिकं वर्धमाने द्रष्टव्यमिति।

स द्विविधः ईश्वरानीश्वरभेदात्। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः एकः। अङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवदिति तत्सिद्धिः।

आत्मानं विभजते **स इति। स** आत्मा द्विविधः द्विप्रकारक ईश्वरानीश्वरभेदात् जीवात्मपरमात्मभेदात्। नन्वीश्वरे मानाभावात् विभागानुपपत्तिरित्यत आह **अङ्कुरादिकमिति।** ननु अङ्कुरत्वं यदि जन्यत्वं तदा हेतुपक्षता–वच्छेदकयोरैक्यप्रसंगः। न चेष्टापत्तिः, हेत्ववच्छेदेन साध्यसंशयसत्त्वेन व्याप्तेरनिश्चयात्। परामर्शासंभवात् दृष्टान्तानुपपत्तेश्चेति चेन्न उत्पत्तिमत्त्वस्याङ्कुरपदार्थ तावच्छेदकत्वात्। प्रागभावप्रतियोगित्वात्मककार्यत्वस्य च हेतुत्वाद्धेतुपक्षतावच्छेदकयोर्भेदसंभवात्। उत्पत्तिमत्त्वञ्च स्ववृत्तिध्वंस प्रतियोग्यवृत्तित्वस्ववृत्तित्वोभयसंवन्धेन समयवत्वम्। न च पक्षतावच्छेदकस्य ध्वंसे सत्त्वेन तत्र साध्यस्याभावेन वाधापत्तिरिति वाच्यम्, जन्याभावस्य पक्षत्वात् ध्वंसे भावत्वविरहेण वाधापत्त्यसंभवात्। न च तथापि ध्वंसे प्रागभावप्रतियोगित्वस्य हेतोस्सत्वेन व्यभिचार इति वाच्यम्, प्रागभावप्रतियोगिभावत्वस्य हेतुत्वात्। न

च पक्षतावच्छेदकाश्रये घटादौ साध्यस्य सत्त्वेनांशिकसिद्धिसाधनापत्तिरिति वाच्यम्। जन्यकृत्यजन्यजन्यभावत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वात्। कृतौ जन्यत्वानिवेशे पक्षासिद्धिप्रसंगात्। जन्यमात्रस्य परमेश्वरकृतिजन्यत्वात्। परमते तूपरञ्जकमेव तत्। उपरञ्जकस्यापि पक्षाविशेषणत्वात्। सकर्तृकत्वञ्च स्वोपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमज्जन्यत्वम्। प्रकृते साध्यता च तादृशकृतिजन्यत्वस्यैव कार्यं प्रति कृतिमत्त्वेन कारणत्वापेक्षया कृतित्वेन कारणतायाः लघुशरीरत्वात्। अत्र कृतित्वजातेः कारणतावच्छेदकत्वात्। न च स्वत्वस्याननुगतत्वात् स्वपदेन द्व्यणुकग्रहणे दृष्टान्तासिद्धिः। घटादिग्रहणे च बाधापत्तिरिति वाच्यम्। स्वाविषयसमवेतत्व स्वजन्यत्वोभय-संबन्धेनापरोक्षज्ञानादिमत्त्वस्य साध्यत्वात्। स्वपदस्य संसर्गघटकतया परिचायकत्वात्। जन्यत्वं च स्वाव्यवहितोत्तरक्षणोत्पत्तिकत्वम् एतदतिरिक्तस्य तस्य दुर्वचत्वात्। अव्यवहितोत्तरत्वञ्च स्वाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वे सति स्वाधिकरणत्वं स्वाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणत्वं वा। तथा च नित्यकृत्यव्यवहितोत्तरत्वस्याप्रसिद्ध्या तज्जन्यत्वासंभव इति तु नाशंक्यं स्वाधिकरणविशिष्टत्वस्याव्यवहितोत्तरत्वात्। वैशिष्ट्यञ्च स्वध्वंसाधि-करणक्षणध्वंसानाधिकरणत्व स्वध्वंसाधिकरणत्वोभयसंबन्धेन। स्वपदमधिकरणीभूतक्षणपरम्। तथाच नाप्रसिध्यवकाशः। उत्पत्तिकत्वञ्च पूर्वोक्तोभयसंबन्धेन समयविशिष्टत्वम्। तथाचायं संप्रयोगः, जन्यकृत्यजन्यजन्यो भावः अपरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमान् प्रागभावप्रतियोगिभावत्वात् घटवत् तादृशकृत्याधारतया परमेश्वरः सिद्ध्यतीति। अत्र केवल कृतिजन्यत्वस्य साध्यत्वे समीहितसिद्धिसंभवेऽपि त्रितयजन्यत्वस्य साध्यत्वमैच्छिकं बोध्यम्।

ननु प्रत्येककृतिजन्यत्वस्य साध्यत्वे अस्मदादिकृतिजन्यत्वस्यादृष्टद्वारा अङ्कुरादौ सत्वेनार्थान्तरप्रसंगात्। अदृष्टस्य कार्यमात्रं प्रति जनकत्वादिति चेन्न अदृष्टाद्वारकजन्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। स्वाविषयसमवेतत्व स्वविषयत्वोभयसंबन्धावच्छिन्ना विषयतासंबन्धावच्छिन्ना वा या कृतित्वावच्छिन्नजनकता तन्निरूपितसमवायसंबन्धावच्छिन्नजन्यत्वस्य साध्यत्वान्न कोऽपि दोषः। अथ केवलोपादानगोचरापरोक्षज्ञानजन्यत्वस्य साध्यत्वपक्षे योगि प्रत्यक्षात्मकापरोक्षज्ञानाविशिष्टत्वस्य निरूक्तसाध्यस्याङ्कुरे सत्वेनार्थान्तरापत्तिवारणाय कृतिजन्यत्वस्याप्यावश्यकत्वादिति ध्येयम्।

अङ्कुरं कर्त्रजन्यं शरीराजन्यत्वात् आकाशवदित्यनेन सत्प्रतिपक्ष इति चेन्न अप्रयोजकत्वात्। अर्थात् शरीराजन्यत्वं कर्त्रजन्यत्वव्यभिचारि न वेति संशयनिवर्तकानुकूलतर्करहितत्वेन प्रतिबन्धकीभूतविपरीतकोटिव्याप्यवत्ता-निश्चयस्यासंभवात्। मम तु कृतित्वेन कार्यत्वेन कार्यकारणभावस्यैवानुकूलतर्कस्य सत्वात्। व्याप्तिनिश्चयसम्भवेन साध्यसिद्धिर्निराबाधा। एवं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन वा जातानि जीवन्ति यत्प्रेत्याभिसंविशन्ति तद्ब्रह्मेति। द्यावाभूमी जनयन् देव एक आस्ते, विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता इति। यः सर्वज्ञः स सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः यस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नञ्च जायते इत्यागमानां, पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह इत्यादिस्मृतीनाञ्च तत्र प्रमाणत्वात् इति दिक्।

द्वितीयस्त्वहं प्रत्ययवेद्यः। स च नाना व्यवस्थावचनात्। इति आत्मा।

अनीश्वरः क इत्याशंकायामाह **द्वितीयेति**। अहंप्रत्ययस्य वेद्यो विषयः इदमुपलक्षणं धर्माधर्म्माश्रयः सुखदुःखज्ञानादिमत्वेन प्रत्यक्षविषयः। अदृष्टात्यन्ताभावानधिकरणमनीश्वर इति। अनीश्वरं विभजते **स चेति**। स अनीश्वरः जीवस्यैकत्वे एकस्मिन् जाते सर्वे जायेरन्, एकस्य मृते सर्वे म्रियेरन्, एकस्मिन् सुखिनि सर्वे सुखिनः स्युः। चैत्रो जानाति न मैत्रः, मैत्रो मूर्खो न चैत्रः, चैत्रो धनी न मैत्रः, जनकशुकव्यासवामदेवादयो मुक्ता अन्ये वद्धा इत्यादि व्यवस्थानुरोधादनीश्वरो नाना इत्यर्थः। अत्र चैकजीववादिनो वेदान्तिनस्तु

एक एव हि भूतात्मा देहे देहे व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।
स हि सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चलेषु च।
वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम्।।
एकोऽयमात्मा जगति स केन वहुधा कृतः।
पृथग् वदति चात्मानं ज्ञानादेकः प्रवर्त्तते।।
एकमेव यथासूत्रं सुवर्णे वर्त्तते पुनः।
मुक्तामणिप्रवालेषु मृन्मये रजतेषु च।।

यद्वद्गोषु मनुष्येषु तद्वद्धस्तिमृगादिषु।
एकोऽयमात्मा विज्ञेयः सर्वत्रैव व्यवस्थितः।।

इत्यादिवचनादेक एवात्मा इति वदन्ति तच्चिन्त्यम्।

स्पर्शरहितत्वे सति मूर्तं मनः। विशेषगुणात्यन्ताभावाधिकरणत्वे सति मूर्तं वा। पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहितगुणत्वव्याप्यजातिमान् विशेष गुणः।

मनो निरूपयति **स्पर्शेति**। पृथिव्यादिवारणाय **सत्यन्तं** आकाशादिवारणाय **मूर्त्तेति**। लक्षणान्तरमाह **विशेषेति**। पृथिव्यादिवारणाय **सत्यन्तं** कालादिवारणाय **मूर्त्तेति**। मनसो लक्षणघटकत्वादत्रैव विशेषगुणं निरूपयति **पृथिवीति**। पृथिवीनिरूपितसमवायसंबन्धावच्छिन्नवृत्तितावत् पृथिवीत्वाभाववन्निरूपित समवायसंबन्धावच्छिन्नवृत्तितावन्निरूपितसमवायसंबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाववद्गुणत्वव्याप्यजातिमत्वं विशेषगुणत्वमिति फलितम्। तथाच पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिसंयोगविभागादिस्तद्वृत्तित्वरहितत्वस्य गुणत्वव्याप्यत्वस्य नीलत्वपीतत्वगन्धत्वसुरभित्वासुरभित्वमधुरत्वापाकजानुष्णाशीतस्पर्शत्वशब्दत्वज्ञानत्वादिजातौ सत्वाल्लक्षणसमन्वयः। रूपरसगन्धस्पर्शशब्दस्नेहसांसिद्धिकद्रवत्वंद्वेषबुद्धिसुखदुःखेच्छायत्नधर्माधर्म्मभावनाख्यसंस्काराश्चैते विशेषगुणाः। संयोगादावतिव्याप्तिवारणाय **रहितान्तं** गुणत्वव्याप्यजातिविशेषणम्। घटत्वादिजातिमादाय घटादावतिव्याप्तिवारणाय **गुणत्वव्याप्येति**। समवायेन गुणत्वव्याप्यवत्वलाभाय जात्युपादानम्। अन्यथा नीलत्वादिजातिमत्वस्य कालिकेन क्रियादौ सत्वेन तत्रातिव्याप्तिवारणमशक्यमिति।

आत्मप्रतीतिः करणसाध्या अपरोक्षप्रतीतित्वात् रूपोपलब्धिव दिति तत्सिद्धिरिति मनः। इति द्रव्य पदार्थः समाप्तः।

संयोगाजन्यसंयोगासमवायिसमवेतत्वरहितसंयोगासंयोग समवेतवान् गुणः।

मनसि प्रमाणं दर्शयति **आत्मेति**।

गुणं निरूपयति **संयोगेति** सत्तामादायतिव्याप्तिवारणाय **रहितान्तं**

समवेतविशेषणम्। संयोगजसंयोगं प्रति संयोगस्याप्यसमवायिकारणत्वात् तत्समवेतत्वस्य गुणत्वे सत्वेनासम्भववारणाय संयोगे संयोगाजन्यत्वविशेषणम्। तथाच संयोगजसंयोगभिन्नसंयोगं प्रत्यसमवायिकारणं क्रियैव तत्समवेतत्वरहितत्वस्य गुणत्वे सत्वात्। तमादाय लक्षणसमन्वयः। घटत्वादिकमादायातिव्याप्तिवारणाय **संयोगसमवेतत्वस्योपादानम्**। असंयोगसमवेतत्वस्यानुपादाने संयोगसमवेतत्वेन झटित्युपस्थितिकसंयोगत्वस्य रूपादावसत्वेनाव्याप्तिशंका स्यात्। स्याद्वा संयोगनिरूपितसंबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वविशिष्टस्य गुणत्वस्यापि रूपादावसत्वेनाव्याप्तिरतः तादृशवृत्तित्वस्योपलक्षणतया निवेशसूचनाय तस्योपादानम्। किञ्च गुणत्वलक्षणपूर्वकं गुणलक्षणं समवेतान्तं गुणत्वलक्षणमत्र। तस्यानुपादाने संयोगत्वेऽभिघातत्वे नोदनत्वे चातिव्याप्तिः। अतस्तदुपादानम्। तथाच संयोगत्वादौ असंयोगसमवेतत्वविरहान्नातिव्याप्तिरिति। अत्र संयोगाजन्यसंयोगासमवायीत्यनेन क्रियाया लाभः। तथाच क्रियासमवेतत्वरहितसंयोगसमवेतासंयोगसमवेतवान् गुण इति फलितार्थ इति।

यत्तु द्रव्याश्रितत्वं गुणत्वं तन्न कर्मण्यतिव्याप्तेः। न च कर्मभिन्नत्वे सतीति देयं सामान्यादावतिव्याप्तेः। न च सामान्यवत्वे सतीत्यपि देयं कपालाश्रितघटादावतिव्याप्त्यापत्तेर्निर्गुणत्वे सति द्रव्याश्रितत्वे सति कर्मभिन्नो गुण इति पर्यवसितलक्षणार्थ इत्यपि न, उत्पत्तिकालीनघटादावतिव्याप्तेर्गुणलक्षणे गुणस्य प्रवेशेनात्माश्रयप्रसङ्गश्च स्यात्। अथ द्रव्यत्त्वव्यापकतावच्छेदकजातिमान् गुण इति तस्य पर्यवसितमिति चेन्न द्रव्यलक्षणे गुणस्य गुणलक्षणे द्रव्यस्य प्रवेशेनान्योन्याश्रयप्रसङ्गात्। उत्पत्तिकालीनघटाद्यन्तर्भावेण व्यापकताभङ्गः स्वप्रतियोगिवैयधिकरण्यप्रवेशे आचार्यलक्षणापेक्षया गौरवापत्तेरिति।

रूपं संयोगाजन्य संयोगासमवायि समवेतत्वरहित संयोग समवेतवत्, रूपत्वरहितसंयोगजन्यत्वरहितत्वात्, संयोगवदिति गुणत्वसिद्धिः। स च चतुर्विंशति प्रकारो रूपादिभेदेन।

रसासमवेत नीलपीतसमवेतवद्रूपं, गुणत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यम् रूपम्।

गुणत्वे प्रमाणमाह **रूपमिति**। सत्तामादायार्थान्तरवारणाय सत्यन्तं क्रियानिरूपित समवायसंबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाववदर्थकमिति। संयोगवदित्यस्य

संयोगजसंयोगवदित्यर्थः। तेन क्रियाजन्यसंयोगेहेतोरसत्वेऽवच्छेदकावच्छेदेन दृष्टान्तासिद्धिरित्यस्यानवकाश इति। **वादिविनोदे शङ्करमिश्रास्तु** नित्यवृत्तिनित्यवृत्तिसत्तासाक्षाद्व्याप्यजातिर्गुणत्वमित्याहुः। गुणान् विभजते **स** चेति। स गुणः रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषयत्नगुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारधर्माधर्मशब्दभेदेन चतुर्विंशतिप्रकार इत्यर्थः। गुणनिरूपणे प्राथम्यात्प्रथमं रूपं निरूपयति **रसेति** सत्तागुणत्वमादायार्थान्तरवारणाय **रसासमवेतेति** अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। लक्षणान्तरमाह **गुणत्वे सतीति** रूपत्वे घटादौ चातिव्याप्तिवारणाय **गुणत्वे सतीति**। न च संयोगेऽतिव्याप्तिः तस्यापि चक्षुर्ग्राह्यत्वादिति वाच्यं विशेषगुणत्वे सतीत्यस्यैव **सत्यन्तेन** विवक्षितत्वात्। संयोगस्य सामान्यगुणतयातिव्याप्तिविरहात्। न च सांसिद्धिकद्रवत्वे चातिव्याप्तिः, तत्र विशेषगुणत्वस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वस्य च सत्वादिति वाच्यं विशेषगुणेतरवृत्तिगुणत्वसत्तान्यजातिशून्यत्वस्य सत्यन्तेन विवक्षितत्वात्। विशेषगुणेतरनैमित्तिकद्रवत्ववृत्तिद्रवत्वत्वजातिशून्यत्वस्य सांसिद्धिकद्रवत्वे विरहेणातिव्याप्तिविरहात्। न च परमाणुवृत्तिरूपे भर्जनकपालस्थवह्निगतरूपादौ चाव्याप्तिः चक्षुर्ग्राह्यत्वस्यासत्वादिति वाच्यं चक्षुर्ग्राह्यतावच्छेदकधर्मवत्वस्य विवक्षितत्वात्। तथाच तादृशस्य रूपत्वस्य रूपे सत्वान्नाव्याप्तिरिति।

न च रूपग्राहकं चक्षुः चक्षुर्ग्राह्यं रूपमित्यन्योन्याश्रयः।

नयनगोलाधिष्ठानत्वेन चक्षुर्निरूपणात्।

द्वितीयलक्षणे अन्योन्याश्रयमाशंकते **नचेति**। उत्तरयति **नयनेति**। नयनगोलमधिकृत्य तिष्ठतीत्यर्थः। **केचित्तु** चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्। संयोग एकत्वादौ चातिव्याप्तिवारणाय **मात्रेति**। रूपत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय **गुणस्योपादानम्**। न च प्रभाभित्तिसंयोगेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं गुणपदस्य विशेषगुणपरत्वात्। न च मात्रपदव्यर्थत्वप्रसङ्ग इति वाच्यं सांसिद्धिकद्रवत्वेऽतिव्याप्तेः। न च मनसो ज्ञानसामान्यं प्रति करणत्वादसम्भव इति वाच्यम्। मनोभिन्नचक्षुर्भिन्नेन्द्रियाग्राह्यत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यो गुणो रूपमित्यस्य विवक्षितत्वादित्याहुस्तन्न, अन्योन्याश्रयप्रसङ्गात्। आचार्यप्रथमलक्षणस्य चादोषादिति आचार्यप्रथमलक्षणापेक्षया गौरवप्रसङ्गाच्च। **वादिविनोदे शङ्करमिश्रास्तु** [१४]रसवदवृत्तिरूपवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजात्याधिकरणमात्र-

बहिरिन्द्रियजन्यनिर्विकल्पकविषयगुणत्वव्याप्यजातिमत्वं रूपत्वम्, स्पर्शावृत्तितेजस्त्वसमानाधिकरणविशेषगुणवृत्तिजातिमत्वं वा तेजोवृत्तिवृत्तिवायुवृत्तिवायुवृत्त्यवृत्तिविशेषगुणवृत्तिजातिमत्वं वेति प्राहुः।

शुक्लः रसासमवेतनीलसमवेतवान् नीलत्वरहितशुक्लान्यत्वरहितत्वात् नीलवदिति रूपत्वसिद्धिः। नीलः स्वमात्रसमवेतवत् स्वमात्रसमवेतरहित नीलान्यत्वरहितत्वात् घटवदिति नीलत्वजातिसिद्धिः। नीलत्वरहित घटत्वात्यन्ताभाववत्त्वरहितः स्वपदार्थः।

ननु रूपत्वजातौ मानाभावादित्यत आह। **शुक्ल इति**। गुणत्वमादायार्थान्तरवारणाय **रसासमवेतेति**। रूपं षड्विधं शुक्लनील-पीतरक्तहरितकपिशभेदात्। कश्चित्तु चित्रभेदेन सप्तविधं रूपं भवतीति वदति। ननु नीलत्वजातौ मानाभावादित्यत आह **नीलइति**। नीलमात्रसमवेतं नीलत्वमेवेति नीलत्वसिद्धिः। नीलमात्रसमवेतत्वञ्च नीलेतरासमवेतत्वे सति नीलसमवेतत्वं बोध्यम्। स्वपदस्य नीलपरत्वे दृष्टान्तासिद्धिर्घटपरत्वे बाधप्रसङ्गः। स्वपदार्थं व्याचष्टे **नीलत्वरहितेति**। तथाच स्वपदेन नीलस्य घटस्य च धारणसम्भवान्नोक्तदोषयोरवकाशः। स्वमात्रसमवेतत्वं च नीलभिन्न घटभिन्नासमवेतत्वमेवं पीतत्वादिसाधकमानमप्यूहनीयम्।

गुणत्वे सति रसनग्राह्यो रसः। स षोढा माधुर्यादिभेदेन। इक्षुक्षीरगुडतैलेषु माधुर्यस्य साम्येऽपि अवान्तरजातिभेदस्य विद्यमानत्वात्। विशेषगुणत्वसिद्धिः।

रसं निरूपयति **गुणत्वे सतीति**। रसत्वे मधुरत्वादौ चातिव्याप्तिवारणाय गुणत्वे सतीति। न च रसग्राहकं रसनं रसनग्राह्यो रसः इत्यन्योन्याश्रय इति वाच्यं जिह्वाग्राधिष्ठानत्वेन रसनाया निरूपणात्। गन्धासमवेतमधुराम्लसमवेतजातिमान् वा रस इत्यस्य लक्षणत्वादिति नान्योन्याश्रयावकाश इति सारम्। **वादिविनोदे शङ्करमिश्रास्तु** स्नेह[१५]वन्मात्रवृत्तिजात्यधिकरणेन्द्रियजन्यनिर्विकल्पकविषयगुणत्वव्याप्यजात्यधिकरणगुणत्वं रसत्वम्। गन्धस्नेहोभय समानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्-व्याप्यजात्यन्यतरव्याप्यतावच्छेदकजातिमद्विशेषगुणत्वं वेति प्राहुः।

रसं विभजते **स षोढा माधुर्यादिभेदेनेति। स** रसः, **षोढा** षट्प्रकारक इत्यर्थः। आदिपदेनाम्ललवणकटुकषायतिक्तानां परिग्रहः। ननु माधुर्यरसस्य, क्षीरेक्षुरसे अर्थात् जले, गुडे, अर्थात् पृथिव्यां च सत्वेन कथं तस्य विशेषगुणत्वमिति। क्षीरे इत्यादिनाशंक्यावान्तरजातिविशेषमादाय लक्षणसमन्वय इत्यभिप्रायेण समाधत्ते अवान्तरेति। तथाच मधुरत्वव्याप्यजातेर्भिन्नत्वात् गुडमाधुर्यगतजातौ जलमाधुर्यगतत्वाभावेन लक्षणसमन्वय इति भावः।

गुणत्वे सति घ्राणग्राह्यो गन्धः। जलादावौपाधिकी गन्ध प्रतीतिर्न स्वभावत इति विशेषगुणत्वसिद्धिः। जलं न गन्धाधिकरणमपाकजरूपाधिकरणत्वात्तेजोवत्। वायोः पक्षतुल्यत्वान्न व्यभिचारः।

गन्धन्निरूपयति **गुणत्वे सतीति**, गन्धत्वे सुरभित्वादौ चातिव्याप्तिवारणाय **सत्यन्तम्।** ननु गन्धग्राहकं घ्राणं घ्राणग्राह्यो गन्ध इत्योन्याश्रय इति चेन्न नासाग्राधिष्ठानत्वेन घ्राणस्य निरूपणात्। अथवा रूपासमवेतसुरभ्यसुरभिसमवेतवान् गन्ध इत्यस्योक्तत्वान्नान्योन्याश्रयावकाश इति। ननु जलादावपि गन्धोपलम्भात् कथं गन्धस्य विशेषगुणत्वमित्यत आह **जलादाविति**, आदिपदेन वायोर्ग्रहणम्।

अयंभावः उपाधिशून्यजले गन्धाननुभवात् जलस्य गन्धो न स्वाभाविको गुणः, यदि जलस्य गन्धः स्वाभाविको गुणः स्यात्तदा सर्वत्र जले उपलभ्येत स्नेहवत्। यतो नोपलभ्यतेऽतो न स्वाभाविक इत्यवगम्यत इति। जले गन्धाभावसाधकानुमानमप्याह **जलमिति।** ननु वायौ गन्धस्य सत्वेन पृथिवीत्वरहितवृत्तित्वस्यापि सत्त्वात् विशेषगुणत्वासिद्धिरत आह **वायोरिति।** पक्षतुल्यत्वान्न व्यभिचारः। न वाय्वन्तर्भावेण व्यभिचारः। वाय्वन्तर्भावेण न तस्य विशेषणगुणत्वासिद्धिरित्यर्थः। नहि पक्षे पक्षसमे वा व्यभिचारो दोषाधायक इति सिद्धान्तात्। तथा च वायौ गन्धप्रतीतिरौपाधिकी न स्वत इति भावः। वायुर्न गन्धवान् पाकजस्पर्शवत्वात्तेजो वदित्यन्वयिना यन्नैवं तन्नैवं रसालफलवदिति व्यतिरेकिणा वायौ गन्धाभावानुमानान्न तत्र गन्ध इति। अथवा जलवायू न गन्धवन्तावपाकजरूपस्पर्शान्यतरवत्वात् तेजोवदित्यनेन तत्र तत्र गन्धाभावः सिध्यतीति भावः। वायौ यदि गन्धः स्यात्तदाकुसुमकाननस्पर्शरहिते वायौ कथं नोपलभ्यते। यतो नोपलभ्यतेऽतो गन्धस्तत्र नास्तीति गन्धो न वायोर्गुण इति।

शङ्करमिश्रास्तु तिक्तसमानाधिकरण[१६] द्रव्यत्वसाक्षात् व्याप्यजातिमदिन्द्रियजन्य-निर्विकल्पकविषयगुणत्वव्याप्यजातिमत्वं गन्धत्वम्। स्नेहासमानाधिकरणर-ससमानाधिकरणजातिनिरूपितव्याप्यतावच्छेदकगुणत्व-साक्षाद्व्याप्यजातिमत्वम्, अनित्यमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षात्व्याप्यजातिमन्मूर्त-विशेषे गुणत्वं वेति प्राहुः।

गुणत्वे सति त्वगिन्द्रियग्राह्यः स्पर्शः। स त्रिविधः शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्। नन्वनुष्णाशीतस्य न विशेषगुणत्वं तस्य पृथिवीवायुसाधारणत्वात्। पाकजापाकजाभ्यामवान्तर जातिभेदेन विशेषगुणत्वे नैमित्तिकद्रवत्वस्याप्यत्यन्ताग्निसंयोगे सत्युच्छेदानुच्छेदाभ्यामवान्तरजातिसद्भावेन विशेषगुणता स्यात्। ततश्च नैमित्तिकद्रवत्वस्य सामान्यगुणपाठो निरर्थकः स्यात्। सेयमुभयतः पाशारज्जुः। मैवम् अवान्तरजातिभेदस्य इक्षुक्षीरमाधुर्यादिवदनुभवसिद्धत्वात्। अन्यथा महान्धकारे स्पर्शोपलम्भमात्रेण वायुर्वातीति प्रत्ययो न स्यात्। न चैवं सति नैमित्तिकद्रवत्वस्यावान्तरजातिभेदानुभवः। वायुस्पर्शः पृथिवीवृत्ति वृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वरहित गुणत्वव्याप्यजातिमान् अपाकजस्पर्शत्वात्तेजः स्पर्शवदित्यनुमानात्।

स्पर्शन्निरूपयति **गुणत्वे सतीति।** स्पर्शत्वे शीतस्पर्शत्वादौ चाति व्याप्तिवारणाय **सत्यन्तम्।** न च स्पर्शग्राहकं त्वक् त्वगिन्द्रियग्राह्यः स्पर्श इत्यन्योन्याश्रय इति वाच्यं, त्वगधिष्ठानत्वेन तन्निरूपणात्। रूपावृत्तिशीतोष्णवृत्ति-मान् स्पर्श इत्यस्याभिधानाद्वा दोषाभावात्। अनुष्णाशीतस्पर्शे विशेषगुणत्वाभावमाशंकते **नन्विति।** समाधत्ते पाकजेति। तथाच पृथिव्यां पाकजस्पर्शोऽस्ति वायौ चापाकजस्पर्शोऽस्तीत्यनुष्णाशीतस्पर्शत्वव्याप्यं पाकजानुष्णाशीतस्पर्शत्वमादाय पृथिवीस्पर्शे, अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शत्वमादाय च वायुस्पर्शे, विशेषगुणस्य लक्षणसमन्वयसंभवादिति भावः। उत्तरे प्रतिवन्दिमाह **नैमित्तिकेति।** तथाच तादृशोच्छिद्यमानद्रवत्वत्वस्य पृथिवीद्रवत्वे तादृशानुच्छिद्यमानद्रवत्वस्य तैजसद्रवत्वे सत्वेन द्रवत्वत्वावान्तर तादृशजातिद्वयमादाय द्रवत्वेऽपि विशेषगुणता स्यादिति तत्रातिव्याप्तिरिति भावः।

इष्टापत्तौबाधकमाह **ततश्चेति**। ननु विशेषगुणलक्षणे जातौ साक्षाद्गुणत्वव्याप्यत्वस्य निवेशान्नैमित्तिकद्रवत्वेऽतिव्याप्तिवारणं भवतीत्युक्तौ पाकजानुष्णशीत–स्पर्शत्वादिजातौ साक्षाद्गुणत्वव्याप्यत्वविरहेण स्पर्शेऽव्याप्तिरिति। साक्षान्निवेशानिवेशोभयपक्षे दोष इत्याह **सेयमुभयत** इति। **परे** तु ननु उच्छेदानुच्छेदाभ्यामवान्तरजातेरकल्पनान्नातिव्याप्तिरिति यदि मन्यते तदा पाकजापाकजाभ्यामवान्तरजातेः स्पर्शेऽप्यनुपगमात् स्पर्शेऽप्यव्याप्तिः। तथा चावान्तरजात्यस्वीकारस्वीकारोभयपक्षेऽप्यप्रतीकार इत्याह **सेयमुभयत** इत्याहुः। **अन्ये** तु ननु नैमित्तिकद्रवत्वस्य सामान्यगुणत्वेन विशेषगुणलक्षणस्य तत्रातिव्याप्तिः। विशेषगुणत्वस्वीकारान्नातिव्याप्तिरिति यद्युच्यते तदा सामान्यगुणपाठस्य निरर्थकत्वप्रसंग इति। तस्य सामान्यगुणत्व स्वीकारास्वीकारोभयपक्षे दोष इत्याह **सेयमुभयत** इत्याहुः। प्रतिबन्दिं खण्डयति **मैवमिति**। स्पर्शगतावान्तरजातिविशेषस्येक्षुक्षीरादिगतरसवृत्ति जातिविशेषवदनुभवसिद्धत्वात्। अत्र युक्तिमाह **अन्यथेति**। अन्यथा वायुस्पर्शादौ वैजात्यानभ्युपगमे, महान्धकारे, निविडान्धकारे, स्वशरीरस्याप्रत्यक्षदशायामित्यर्थः। तथाच तदानीं स्पर्शेन वायोरेव प्रत्ययो भवति नेतरेषां स च स्पर्शो वायोरेवेत्यवश्यं वक्तव्यं भवतीति, तादृशस्पर्शवैजात्यसिद्धिरिति भावः। ननु नैमित्तिकद्रवत्वे ऽप्यानुभाविकी विलक्षणा जातिरस्तीत्यत आह **नचैवमिति**। एवमनुष्णाशीतस्पर्शत्वव्याप्ययोः पाकजत्वापाकजत्वयोर्जातिद्वयोर्भेदेन पाकजापाकजयोर्भेदानुभववत् नैमित्तिकद्रवत्वत्वव्याप्योच्छिद्य–मानत्वानुच्छिद्यमानत्वयोर्भेदेन **भेदानुभव** इत्यर्थः। तथाचात्यन्तानलसंयोगे सत्युच्छिद्यमानद्रवत्वस्य पीतिमगुरुत्वाश्रये पार्थिवभागे तेजसि च सत्वेन तस्य पृथिवीवृत्तितया पृथिवीत्वरहिततेजोवृत्तितया च तद्वृत्तित्वरहितत्वस्यानुच्छिद्यमानत्वे विरहेण जले पृथिव्याञ्चोच्छिद्यमानद्रवत्वस्य सत्वेन तद्वृत्तित्व रहितत्वस्योच्छिद्यमानत्वे विरहेण द्रवत्वत्वे च तस्य विरहेण तत्र तत्रातिव्याप्तिविरहादिति भावः। वायुस्पर्शे विशेषगुणत्वस्यानुमानमप्याह **वायुस्पर्श** इति। वायुस्पर्शे विशेषगुणत्वसिद्धिरिति शेषः। तथाच द्रवत्वत्वव्याप्यं नैमित्तिकद्रवत्वत्वं सांसिद्धिकद्रवत्वत्वञ्च। तत्र सांसिद्धिकद्रवत्वत्वे पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वस्याभावेन पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्ति वृत्तित्वस्याभावसत्वात् तमादाय सांसिद्धिकद्रवत्वे लक्षणसमन्वयः। नैमित्तिक द्रवत्वत्वस्यावान्तरजातेरसत्वात्तस्य च पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहित

तेजोवृत्तिद्रवत्ववृत्तितया तादृशवृत्तित्वरहितत्वविरहेण ग्रहणासंभवात्। तमादाय नैमित्तिकद्रवत्वेऽतिव्याप्त्यसंभवादिति भावः। अथ द्रवत्वस्याश्रयभेदेन भिन्नतया पृथिव्यां यन्नैमित्तिकद्रवत्वं तन्न तेजसि, एवं तेजोवृत्तिद्रवत्वन्न पृथिव्यामिति द्रवत्वत्वे नैमितिकद्रवत्वत्वे च तादृशवृत्तित्वरहितत्वस्य गुणत्वव्याप्यत्वस्य सत्वेन तमादाय नैमित्तिकद्रवत्वेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न पृथिवीवृत्तिवृत्तित्व पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वोभयाभावस्य तादृशरहितान्तेन विवक्षितत्वात्। पृथिवीवृत्तिनैमित्तिकद्रवत्ववृत्तित्वस्य पृथिवीत्वरहिततेजोवृत्तिनैमित्तिक–द्रवत्ववृत्तित्वस्य चोभयस्यैव द्रवत्वत्वे नैमित्तिकद्रवत्वत्वे च सत्वेन तयोर्ग्रहणासंभवात्। वस्तुतस्तु पीतिमगुरुत्वाश्रये तेजसि चैकस्यैव द्रवत्वस्यानुभवान्नातिव्याप्त्यवकाश इति प्रागेवोक्तत्वात्। नीलरूपस्य पृथिवीभिन्नेऽभास्वरशुक्लरूपस्य जलभिन्ने, भास्वरशुक्लरूपस्य तेजोभिन्ने, गन्धस्य पृथिवीभिन्ने वृत्तित्वविरहेण रसस्य वैजात्याश्रयतया स्पर्शस्यापि तथाविधतया, ज्ञानादावात्मभिन्ने, शब्दस्याकाशभिन्ने, सांसिद्धिकद्रवत्वस्य जलभिन्नेऽविद्यमानतया सर्वत्र लक्षणसमन्वय[१७] इति।

पृथक्त्वासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणैक द्रव्यसमवेतसमवेतवती संख्या।

संख्यां निरूपयति **पृथक्त्वासमवेतेति**। सत्तागुणत्वमादायाति–व्याप्तिवारणाय पृथक्त्वासमवेतेति। एतच्च, चरमसमवेतविशेषणं, घटसमवेत रूपसमवेतरूपत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय सर्वान्योन्याभावसमानाधि–करणस्योपादानं, तस्य च द्रव्यसमवेतेऽन्वयः। तथा च घटीयरूपे घटान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वविरहेण सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेतमध्ये रूपादीनां ग्रहणासंभवान्नातिव्याप्तिरिति भावः। ननु कपालद्वयसमवेतघटस्य–सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरणतया तत्समवेतघटत्वमादाय घटेऽतिव्याप्तिरित्यत आह **एकद्रव्येति**। एकद्रव्यपदमन्त्यावयविपर[१८]म्। तथा चान्त्यावयविघटादिसमवेतत्वस्य घटे बाधान्नातिव्याप्तिरिति। ननु द्वित्वबहुत्वादौ सत्तावद्भेदसामानाधिकरण्यस्य द्रव्यभेदसामानाधिकरण्यस्य विरहेण सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यविरहात् सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणैक–द्रव्यसमवेताप्रासिद्ध्याऽसंभव इति चेन्न वस्तुत्वव्यापकत्वस्य

इष्टापत्तौबाधकमाह **ततश्चेति**। ननु विशेषगुणलक्षणे जातौ साक्षाद्गुणत्वव्याप्यत्वस्य निवेशान्नैमित्तिकद्रवत्वेऽतिव्याप्तिवारणं भवतीत्युक्तौ पाकजानुष्णशीत-स्पर्शत्वादिजातौ साक्षाद्गुणत्वव्याप्यत्वविरहेण स्पर्शेऽव्याप्तिरिति। साक्षान्निवेशानिवेशोभयपक्षे दोष इत्याह **सेयमुभयत** इति। **परे** तु ननु उच्छेदानुच्छेदाभ्यामवान्तरजातेरकल्पनान्नातिव्याप्तिरिति यदि मन्यते तदा पाकजापाकजाभ्यामवान्तरजातेः स्पर्शेऽप्यनुपगमात् स्पर्शेऽप्यव्याप्तिः। तथा चावान्तरजात्यस्वीकारस्वीकारोभयपक्षेऽप्यप्रतीकार इत्याह **सेयमुभयत** इत्याहुः। **अन्ये** तु ननु नैमित्तिकद्रवत्वस्य सामान्यगुणत्वेन विशेषगुणलक्षणस्य तत्रातिव्याप्तिः। विशेषगुणत्वस्वीकारान्नातिव्याप्तिरिति यद्युच्यते तदा सामान्यगुणपाठस्य निरर्थकत्वप्रसंग इति। तस्य सामान्यगुणत्व स्वीकारास्वीकारोभयपक्षे दोष इत्याह **सेयमुभयत** इत्याहुः। प्रतिबन्दिं खण्डयति **मैवमिति**। स्पर्शगतावान्तरजातिविशेषस्येक्षुक्षीरादिगतरसवृत्ति जातिविशेषवदनुभवसिद्धत्वात्। अत्र युक्तिमाह **अन्यथेति**। अन्यथा वायुस्पर्शादौ वैजात्यानभ्युपगमे, महान्धकारे, निविडान्धकारे, स्वशरीस्याप्रत्यक्षदशायामित्यर्थः। तथाच तदानीं स्पर्शेन वायोरेव प्रत्ययो भवति नेतरेषां स च स्पर्शो वायोरेवेत्यवश्यं वक्तव्यं भवतीति, तादृशस्पर्शवैजात्यसिद्धिरिति भावः। ननु नैमित्तिकद्रवत्वे ऽप्यानुभाविकी विलक्षणा जातिरस्तीत्यत आह **नचैवमिति**। एवमनुष्णाशीतस्पर्शत्वव्याप्ययोः पाकजत्वापाकजत्वयोर्जातिद्वयोर्भेदेन पाकजापाकजयोर्भेदानुभववत् नैमित्तिकद्रवत्वत्वव्याप्योच्छिद्य–मानत्वानुच्छिद्यमानत्वयोर्भेदेन **भेदानुभव** इत्यर्थः। तथाचात्यन्तानलसंयोगे सत्युच्छिद्यमानद्रवत्वस्य पीतिमगुरुत्वाश्रये पार्थिवभागे तेजसि च सत्वेन तस्य पृथिवीवृत्तितया पृथिवीत्वरहिततेजोवृत्तितया च तद्वृत्तित्वरहितत्वस्यानुच्छिद्यमानत्वे विरहेण जले पृथिव्याञ्चोच्छिद्यमानद्रवत्वस्य सत्वेन तद्वृत्तित्व रहितत्वस्योच्छिद्यमानत्वे विरहेण द्रवत्वत्वे च तस्य विरहेण तत्र तत्रातिव्याप्तिविरहादिति भावः। वायुस्पर्शे विशेषगुणत्वस्यानुमानमप्याह **वायुस्पर्श** इति। वायुस्पर्शे विशेषगुणत्वसिद्धिरिति शेषः। तथाच द्रवत्वत्वव्याप्यं नैमित्तिकद्रवत्वत्वं सांसिद्धिकद्रवत्वत्वञ्च। तत्र सांसिद्धिकद्रवत्वत्वे पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वस्याभावेन पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहितवृत्ति वृत्तित्वस्याभावसत्वात् तमादाय सांसिद्धिकद्रवत्वे लक्षणसमन्वयः। नैमित्तिक द्रवत्वत्वस्यावान्तरजातेरसत्वात्तस्य च पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्वरहित

तेजोवृत्तिद्रवत्ववृत्तितया तादृशवृत्तित्वरहितत्वविरहेण ग्रहणासंभवात्। तमादाय नैमित्तिकद्रवत्वेऽतिव्याप्त्यसंभवादिति भावः। अथ द्रवत्वस्याश्रयभेदेन भिन्नतया पृथिव्यां यन्नैमित्तिकद्रवत्वं तन्न तेजसि, एवं तेजोवृत्तिद्रवत्वन्न पृथिव्यामिति द्रवत्वत्वे नैमित्तिकद्रवत्वत्वे च तादृशवृत्तित्वरहितत्वस्य गुणत्वव्याप्यत्वस्य सत्वेन तमादाय नैमित्तिकद्रवत्वेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न पृथिवीवृत्तिवृत्तित्व पृथिवीत्वरहितवृत्तिवृत्तित्वोभयाभावस्य तादृशरहितान्तेन विवक्षितत्वात्। पृथिवीवृत्तिनैमित्तिकद्रवत्ववृत्तित्वस्य पृथिवीत्वरहिततेजोवृत्तिनैमित्तिक-द्रवत्ववृत्तित्वस्य चोभयस्यैव द्रवत्वत्वे नैमित्तिकद्रवत्वत्वे च सत्वेन तयोर्ग्रहणासंभवात्। वस्तुतस्तु पीतिमगुरुत्वाश्रये तेजसि चैकस्यैव द्रवत्वस्यानुभवान्नातिव्याप्त्यवकाश इति प्रागेवोक्तत्वात्। नीलरूपस्य पृथिवीभिन्नेऽभास्वरशुक्लरूपस्य जलभिन्ने, भास्वरशुक्लरूपस्य तेजोभिन्ने, गन्धस्य पृथिवीभिन्ने वृत्तित्वविरहेण रसस्य वैजात्याश्रयतया स्पर्शस्यापि तथाविधतया, ज्ञानादावात्मभिन्ने, शब्दस्याकाशभिन्ने, सांसिद्धिकद्रवत्वस्य जलभिन्नेऽविद्यमानतया सर्वत्र लक्षणसमन्वय[१७] इति।

पृथक्त्वासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणैक द्रव्यसमवेतसमवेतवती संख्या।

संख्यां निरूपयति **पृथक्त्वासमवेतेति**। सत्तागुणत्वमादायाति-व्याप्तिवारणाय पृथक्त्वासमवेतेति। एतच्च, चरमसमवेतविशेषणं, घटसमवेत रूपसमवेतरूपत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय सर्वान्योन्याभावसमानाधि-करणस्योपादानं, तस्य च द्रव्यसमवेतेऽन्वयः। तथा च घटीयरूपे घटान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वविरहेण सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेतमध्ये रूपादीनां ग्रहणासंभवान्नातिव्याप्तिरिति भावः। ननु कपालद्वयसमेवतघटस्य-सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरणतया तत्समवेतघटत्वमादाय घटेऽतिव्याप्तिरित्यत आह **एकद्रव्येति**। एकद्रव्यपदमन्त्यावयविपर[१८]म्। तथा चान्त्यावयविघटादिसमवेतत्वस्य घटे वाधान्नातिव्याप्तिरिति। ननु द्वित्वबहुत्वादौ सत्तावद्भेदसामानाधिकरण्यस्य द्रव्यभेदसामानाधिकरण्यस्य विरहेण सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यविरहात् सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणैक-द्रव्यसमवेताप्रसिद्ध्याऽसंभव इति चेन्न वस्तुत्वव्यापकत्वस्य

सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणपदार्थत्वात्। व्यापकता च स्वसमानाधिकरणभेदप्रतियोगित्वसंबन्धेन ग्राह्या। स्वतादात्म्य–स्वसमानाधिकरणभेदप्रतियोगिवृत्तित्वोभयसंबन्धेन वस्तुविशिष्टत्वस्य वा तदर्थत्वात्। भेदश्च प्रतियोग्यवृत्तिर्ग्राह्यः। तेनोभयभेदमादय तद्घटीयरूपादौ सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वस्य सत्वेऽपि नातिव्याप्त्यवकाशः। उभयभेदस्य केवलान्वयित्वेन प्रतियोगिवृत्तित्वात्। न च प्रतियोगित्वस्य केवलान्वयित्वात् प्रतियोग्यवृत्तिभेदाप्रसिद्ध्याऽसंभव इति वाच्यं स्वप्रतियोग्यवृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। न च स्वत्वस्याननुगतत्वात्, अनुगतत्वपक्षे चाव्यावर्तकत्वादिति वाच्यं, स्वस्वप्रतियोगिवृत्तयो ये ये भेदास्तत्तद्भेदकूटवत्वस्य विवक्षितत्वात्। अथासर्वज्ञस्य तादृशविवक्षायाः कर्तुमशक्यत्वादिति चेन्न स्वनिरूपकत्वस्वाश्रयावृत्तित्वोभयसबन्धेन प्रतियोगितावदन्यत्वस्य भेदविशेषणत्वात्। अथवा सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यम्, उभयावृत्तिधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वव्यापकत्वम्। व्यापकता च सामानाधिकरण्यसबन्धेनेति दिक्[१९]। अथ सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरण मेषद्वयसंयोगविभागसमवेत संयोगविभागत्वमादाय संयोगे विभागे चातिव्याप्तिरिति चेन्न द्रव्यसमवेते संयोगविभागभिन्नत्वस्य, द्वितीयसमवेते वा संयोगत्वविभागत्वभिन्नत्वस्य निवेशादतिव्याप्तिवारणसंभवात्।[२०] वस्तुतस्तु-रूपासमवेतैकत्वद्वित्वसमवेतवती संख्येति। एकत्वं रूपावृत्तिद्वित्ववृत्तिजातिमदेकत्वद्वित्वव्यतिरेकित्वरहितत्वात् द्वित्ववदिति संख्यात्वसिद्धिः। एकत्वद्वित्वादिपरार्ध भेदेनानेकविधा संख्या। तत्र नित्यगतमेकत्वं नित्यमनित्यगतं चैकत्वमनित्यं द्वित्वादिकं तु सर्वमनित्यमेवेति बोध्यम्।

आदाविन्द्रियसन्निकर्षघटनादेकत्वसामान्यधीः
एकत्वद्वयगोचरा मतिरतो द्वित्वं ततो जायते।
द्वित्वत्वप्रमितिस्ततोऽपि परतो द्वित्वं प्रमानन्तरं
द्वे द्रव्ये इति धीरियं निगदिता द्वित्वोदयप्रक्रिया।।

ननु द्वित्वादयः कथमुत्पद्यन्ते कथं वा नश्यन्तीत्यत आह **आदाविति**। आदौ, प्रथमतः, विषयेन्द्रियसन्निकर्षो भवति, तदनन्तरमयमेकोऽयमेक इत्याकारकै-कत्वद्वयविषयकज्ञानं, ततो द्वित्वोत्पत्तिः, तदनन्तरं द्वित्वत्वप्रमितिः। द्वित्व द्वित्वत्वविषयकनिर्विकल्पकज्ञानं, ततो द्वित्वत्वविशिष्टप्रत्यक्षं, ततो द्वे द्रव्य इति धीरुत्पद्यते इति। **द्वित्वोदये** द्वित्वोत्पत्तौ, **प्रक्रिया** रीतिः, एकत्वद्वयविषयकज्ञान नाशानन्तरं द्वित्वस्य नाशः। एवं त्रित्वादीनामपि बोध्यम्। एकत्वद्वयविषयकं यज्ज्ञानं तदेवापेक्षाबुद्धिशब्देनोच्यते। सा च बुद्धिस्त्रिक्षणस्थायिनी चतुर्थक्षणस्थायिनी वा बोध्या, द्वित्वप्रत्यक्षानुरोधादिति संक्षेपः[२१]।

संख्यासमवेतत्वरहितसंख्यासमवायिसमवेतसमवेतवत् परिमाणम्।

परिमाणं निरूपयति **संख्येति**। सत्तागुणत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय **रहितान्तम्**। चरमसमवेतविशेषणम्। ननु संयोगविभागत्वस्यापि तादृशतया तद्वत्वस्य संयोगविभागयोः सत्वेनातिव्याप्तिरिति चेन्न द्वितीयसमवेते संयोगत्वयोर्भेदस्य विवक्षितत्वात्। प्रथमसमवेते वा वस्तुविशिष्टान्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। वैशिष्ट्यञ्च स्वसमवेतत्वस्वभिन्नसमवेतत्वोभयसम्बंधेन। स्वपदं वस्तुपरम्। संयोगविभागयोर्वस्तुद्वयवृत्तित्वात् तयोर्ग्रहणासंभवात्। न च तथापि संख्यासमवायिघटसमवेतरूपादिसमवेतरूपत्वादिकमादाय रूपादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं संख्यासमवायि यद्यत् प्रत्येकं तत्समवेतसमवेतत्वस्य संख्यासमवायित्वव्यापकपर्यवसितस्य लक्षणघटकत्वात्। यद्वा संख्यासमवेतत्वरहितत्वे सति संख्याव्यापको यस्तद्वत्वं समुदितलक्षणार्थः। व्यापकता च वस्तुविशिष्टान्यस्वाश्रयवत्तासम्बधेन। वस्तुवैशिष्ट्यञ्च पूर्वोक्तोभयसम्बंधेन। प्रथमे व्याप्यता स्वरूपसम्बंधेन। द्वितीये व्याप्यता च समवाय सम्बंधेन ग्राह्या। तथाच रूपादीनां गगनादावसत्वेन संयोगविभागयोश्च वस्तुद्वयसमवेतत्वेन रूपत्वसंयोगत्वविभागत्वादीनां तथाविधव्यापकत्व विरहाद्रूपत्वादीनां ग्रहणासंभवान्नोक्तातिव्याप्तिरिति भावः।

शब्दासमवायिसमवेतत्वरहितसर्वान्योन्याभाव समानाधिकरणसमवेतपरिमाणासमवायिसमवेतत्वरहिताधिकरणं पृथत्त्वम्।

पृथक्त्वं निरूपयति **शब्देति**। तथाच शब्दासमवायिसमवेतत्वाभाववत्वे सति, सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावत्वे सति, परिमाणासमवायिसमवेतत्वाभावविशिष्टो यस्तदधिकरणम् पृथक्त्वमिति

समुदित लक्षणार्थः। पृथक्त्वं लक्ष्यमन्यल्लक्षणम्। संयोगत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय प्रथमसत्यन्तम्। तथाच शब्दासमवायी यः संयोग[21] स्तत्समवेतत्वस्यैव संयोगत्वे सत्वेन तस्य ग्रहणासंभवान्नातिव्याप्तिरिति। रूपत्वरसत्वगन्धत्व सुखत्वदुःखत्वादीनां तथाविधतया तेषामधिकरणे रूपरसादावतिव्याप्तिवारणाय द्वितीयसत्यन्तम्। तथाच रूपादौ स्वाश्रयप्रतियोगिकान्योन्याभाव-सामानाधिकरण्यविरहेण सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यविरहाद्रूपत्वादौ सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेतत्वस्य विरहेण तेषां ग्रहणा संभवान्नातिव्याप्तिरिति भावः। संख्यात्वद्वित्वत्वत्रित्वत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय तृतीयविशिष्टान्तम्। तथाच द्व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणं परमाणुगतद्वित्व त्रसरेणुपरिमाणासमवायिकारणं[23] त्रित्वं तत्समवेतत्वस्य द्वित्वत्वे त्रित्वत्वे संख्यात्वे सत्वेन परिमाणासमवायिसमवेतत्वाभावविरहात्तेषां लक्षणाघटकत्वा न्नातिव्याप्तिरिति। पृथक्त्वत्वस्य तथाविधतया तद्वत्वस्य पृथक्त्वे सत्वेन लक्षणसमन्वयसंभवात्। **केचित्तु** अस्मादयं पृथगिति व्यवहारासाधारणकारणगुणः पृथक्त्वमित्याहुः।

विभागासमवेतेतराभावाविरोधिसमवेतप्रध्वंस प्रतियोगित्वानधिकरणसमवेतत्वानधिकरणगुणत्वव्याप्य जात्यधिकरणं संयोगः।

संयोगं निरूपयति **विभागेति**। विभागासमवेतत्वे सति, इतराभावाविरोधि समवेतत्वे सति, प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरणसमवेतत्वानधिकरणत्वे सति गुणत्वव्याप्या या जातिः तदधिकरणं संयोग इत्यर्थः। विभागत्वजातिमादायाति-व्याप्तिवारणाय **प्रथमसत्यन्तम्** जातिविशेषणम्। ननु गन्धत्वसुखत्वादिजातेर्विभा गासमवेततया प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरणनित्यासमवेततया लक्षणघटकत्वात् तदाश्रयत्वस्य गन्धसुखादौ सत्वेन तत्र तत्रातिव्याप्तिरित्यत आह **इतरेति**। इतरत्वञ्चा त्राविरोध्यपेक्षया। तथा च स्वेतराभावविरोधिभिन्नं यत्स्वं तत्समवेतत्वे सतीत्यर्थः। विरोधित्वञ्चात्रैकदेशावृत्तित्वम्। एवञ्च गन्धे स्वेतरप्रतियोगिकस्वाधि करणवृत्तितद्व्यक्तित्वाभावस्यैव विरोधित्वस्य सत्वेन तादृश विरोधिभिन्नत्वस्यासत्वान्नातिव्याप्तिरिति। न चेतरपदमनर्थकमिति वाच्यम्, भावस्य केवलान्वयितया तद्विरोधिनोऽप्रसिद्धेः। कथञ्चित्प्रसिद्धत्वे[24]

गन्धादावतिव्याप्तेस्तादवस्थ्यात्। गन्धादावभावसामानाधिकरण्यसत्वेन विरोधित्वस्यासत्वात्। न चाभावपदमनर्थकमिति वाच्यं संयोगस्यापि गुणकर्मत्वादिविरोधितयाऽसंभवापत्तेः। अथ स्वाभावविरोधिभिन्नत्वमेव लाघवान्निवेश्यतामिति वाच्यं, द्रव्ये संयोगसामान्याभावे मानाभावादिति। **प्राचीन** मते संयोगे संयोगाभावविरोधित्वस्य सत्वेनासंभवतादवस्थात्, गन्धादा[25] वतिव्याप्तिश्च स्यात्। अथ तथापि संयोगे स्वेतरसत्ताद्रव्यत्वयोरभावविरोधित्वस्य सत्वेनासंभवतादवस्थ्यमेवेति चेन्न, इतरे द्रव्यत्वव्याप्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। वस्तुतस्तु इतरपदं सामान्यधर्म्मपरमर्थादुभयावृत्तिधर्मपरम्। तथाचोभयावृत्ति धर्माभावविरोधिभिन्नसमवेतत्वस्य पर्यवसितार्थतया[26] द्रव्यत्व सत्तादावुभयावृत्तित्वस्यासत्वेन द्रव्यत्वसत्तयोरितरपदेन ग्रहणासंभवात्। घटनिष्ठतद्व्यक्तित्वादेरेव तथाविधतया तदभाववति पटे घटपटद्वयसंयोगस्य सत्वेन, एतत्कपालत्वाभाववति तत्कपाले कपालद्वयसंयोगस्य, एतन्मेषत्वाभाववति मेषान्तरे मेषद्वयसंयोगस्य सत्वेनोभयावृत्तिधर्माभावविरोधिभिन्नतया तत्समवेत त्वस्य संयोगत्वे सत्वेन तमादाय लक्षणसमन्वय इति भावः।

ननु इतराभावाविरोधि द्वित्वबहुत्वादिसमवेतस्य संख्यात्वस्य गुणत्वव्याप्यतया लक्षणघटकत्वात्तमादाय संख्यायामतिव्याप्तिरित्यत आह **प्रध्वंसेति**। तथाच प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरणनित्यगतैकत्वसमवेतत्वस्य संख्यात्वे सत्वेन तादृशसमवेतत्वानधिकरणत्वस्यासत्वात्तस्य लक्षणाघटकत्वान्नातिव्याप्तिरिति। न च द्वित्वत्वबहुत्वत्वादिजातेस्तथाविधतया द्वित्वबहुत्वादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। द्वित्वत्वादीनां साक्षाद्गुणत्वव्याप्यत्वविरहादतिव्याप्त्यभावात्। ननु विभुद्वयसंयोगस्वीकारपक्षे तस्य नित्यतया प्रध्वंसप्रतियोगित्वानधिकरण-विभुद्वयसंयोगसमवेतत्वानधिकरणत्वस्य संयोगत्वे विरहेणासंभवप्रसंगादित्यतो लक्षणान्तरमाह—

विभागासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरण समवेतशब्दासमवायि समवेतवान् वा संयोगः।

विभागेति। सत्तागुणत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय विभागासमवेतेति। ननु द्वितीयशब्दं प्रति प्रथमशब्दस्यासमवायितया शब्दत्वस्य लक्षणघटकत्वात्तमादाय शब्देऽतिव्याप्तिरित्यत आह **सर्वेति**। तथाच शब्दे आकाशान्योन्याभाव

सामानाधिकरण्यविरहेण सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यस्यासत्वेन शब्दत्वस्य लक्षणाघटकत्वान्नातिव्याप्तिरिति।[२७] ननु द्वित्वत्वादेरपि लक्षणघटकतया तमादाय द्वित्वादावतिव्याप्तिरित्यत आह **शब्दासमवायीति**। तथाच द्वित्वादौ शब्दासमवायित्वविरहेण शब्दासमवायिसमवेतत्वस्य द्वित्वत्वादौ विरहान्नातिव्याप्तिरिति भावः।

संयोगासमवेतसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणसमवेतशब्दासमवायिसमवेतवान् विभागः।

विभागं निरूपयति **संयोगेति**। सत्तागुणत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय **संयोगासमवेतेति**। शब्दत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय **सर्वेति**, द्वित्वत्वादिकमादायातिव्याप्तिनिरासाय **शब्दासमवायीति**। तथाच संयोगनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाववत्वे सति, सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावत्वे सति, शब्दासमवायिनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिताश्रयवान् विभाग इति पर्यवसितोऽर्थ इति। ननु संयोगलक्षणे विभागस्य, विभागलक्षणे संयोगस्य प्रवेशादन्योन्याश्रय इति चेन्न, अत्र संयोगपदस्याभिघातपरतया संयोगासमवेतेत्यस्याभिघातासमवेतार्थकत्वादन्योन्याश्रयस्यानवकाशादिति ध्येयम्।

विशेषणतया परप्रत्ययनिमित्तत्वं परत्वम्। विशेषणतयाऽपरप्रत्ययनिमित्तत्वमपरत्वम्।

परत्वं निरूपयति **विशेषणतयेति**। **विशेषणता** प्रकारता, अवच्छिन्नत्वं तृतीयार्थः। **निमित्तत्वं** निमित्तकारणत्वम्। तथाच परप्रत्ययनिष्ठप्रकारत्वसम्बन्धावच्छिन्नजन्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणताश्रयः परत्वमित्यर्थः। अथवा वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः। वैशिष्ट्यं च निरूपकत्वरूपम्। तथाच तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नपरप्रत्ययनिष्ठजन्यतानिरूपितप्रकारतानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नजनकताश्रयः परत्वमित्यर्थः। विशेष्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेषणतयेत्युक्तम्। अयमस्मात्पर इत्याकारकप्रत्ययासाधारणकारणगुणः परत्वमित्यन्ये। परत्वं द्विविधं नियतानियतभेदात्। नियतं कालकृतं ज्येष्ठे, अनियतं च देशकृतं चैत्रमैत्रादौ। दैशिककालिकभेदात् द्विविधं तत्। अपरत्वं निरूपयति **विशेषणतयेति**। अत्रापि पूर्ववत्सर्वम्। अपरत्वं द्विविधं नियतानियतभेदात्।

नियतं कनिष्ठे कालकृतम्, अनियतं च देशकृतं चैत्रमैत्रादौ बोध्यमिति।

अर्थप्रकाशो बुद्धिः। यस्मिन् सत्यनुरागस्तत् सुखम्। यस्मिन् सति द्वेषस्तद् दुःखम्। प्रार्थनेच्छा। ज्वलनात्मको द्वेषः। उत्साहः प्रयत्नः। आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्। आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम्। पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वरहितात्मगुणावृत्ति शब्दावृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् स्नेहः।

बुद्धिं निरूपयति **अर्थेति**। अर्थस्य घटादेः **प्रकाशो**ऽवभासो, येन स **बुद्धिः** ज्ञानमिति। तथाच यस्मिन्सति घटो भाति घटो ज्ञायते घटमहं जानामीत्याद्यनुभवः तत्बुद्धिरिति। सर्वव्यवहारासाधारणकारणं बुद्धिरित्यन्ये। बुद्धिमग्रे प्रपञ्चयिष्यामः[२८]

सुखं निरूपयति **यस्मिन्सतीति**। सति सप्तम्याः प्रयोज्यत्वमर्थः। राहूपरागे स्नायादिति स्मृतेः। यत्प्रयोज्योऽनुरागस्तत्सुखं, अनुरागप्रयोजकं सुखमिति यावत्। अनुकूलवेदनीयं सुखमित्यन्ये[२९]

दुःखं निरूपयति **यस्मिन्सतीति**। प्रयोज्यत्वं सप्तम्यर्थः। यत्प्रयोज्यो द्वेषस्तद् दुःखं, द्वेषप्रयोजकं दुःखमिति यावत्। प्रतिकूलवेदनीयं दुःखमित्यन्ये। इच्छां निरूपयति **प्रार्थनेति**। द्वेषं निरूपयति **ज्वलनेति**। गुरुत्वं निरूपयति **आद्येति** क्रियायामतिव्याप्तिवारणायाद्येति[३०]। द्रवत्वं निरूपयति **आद्येति**। अत्रापि क्रियायामतिव्याप्तिवारणायाद्येति। स्नेहं निरूपयति **पृथिवीति**। रूपत्वरसत्वगन्धत्वस्पर्शत्वपरत्वत्वापरत्वत्व गुरुत्वत्वद्रवत्वत्वादिकमादायातिव्याप्तिवारणाय **रहितान्तम्** जातिविशेषणम्। ज्ञानत्वादिकमादायातिव्याप्तिवारणायात्म**गुणावृत्तीति** जातिविशेषणम्। शब्दत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय **शब्दावृत्तीति**। शुक्लत्वव्याप्याभास्वरत्वादि जातिमादाय भास्वरादावतिव्याप्तिवारणाय **साक्षादित्यस्योपादान**[३१]**म्**। ननु स्नेहे मानाभावात्, चूर्णादिपिण्डीभावस्य जलेनैव निर्वाह इति चेन्न सांसिद्धिकद्रवत्वं वसुधावृत्तिवृत्तित्वरहितगुणत्वव्याप्यजातिमन्मधुराभास्वरशुक्लरूपस्पर्शभिन्नजलवृत्ति गुणभेदवत्, वसुधाजलव्यतिरेकिरहितवृत्तित्वात् गन्धवदिति तत्सिद्धिसंभवात्। यद्वा जलं तेजोवृत्तिवृत्तित्वरहितरसावृत्तिगुणत्वसाक्षात् व्याप्यजातिमद्विशेषगुणवत्, गुरुत्वात् पृथीवीवदित्यनेन तत्सिद्धिसंभवात्। केचित्तु

चूर्णपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेह इत्याहुः। तत्र, जलस्यैव चूर्णपिण्डीभावहेतुत्व स्वीकारादसंभवापत्तिरतिव्याप्तिश्च। स द्विविधो नित्यानित्यभेदात्। नित्यः परमाणौ, कार्य्येऽनित्य इति। ननु घृततैलादावपि स्नेहोपलब्धेः कथं तस्य जलविशेषगुणत्वमिति चेन्न तदन्तःपातिजलस्नेहस्य तत्रोपलम्भात्। कालिन्दीजलश्यामादिवत् तत्र तत्रौपाधिकप्रत्ययसंभवात्। जलस्यैव स्नेहसमवायिकारणत्वात्। न च स्नेहत्वावच्छिन्नं प्रति जलत्वेन कारणताया वक्तुमशक्यत्वात् स्नेहत्वस्य नित्यस्नेहसाधारणत्वेनातिप्रसक्ततया जन्यतानवच्छेदकत्वात्। जन्यस्नेहत्वस्य तदवच्छेदकत्वेऽपि जलत्वस्य नित्यवृत्तित्वेन कारणतानवच्छेदकत्वादिति वाच्यं जन्यजलत्वस्यैव कारणतावच्छेदकतया च नित्यजलत्वसिद्धिरिति **केचित्।** तच्चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु नित्यानित्योभयसाधारणजलत्वजातेः प्रागेव प्रतिपादितत्वात्।

गगनसमवेतसमवेतत्वरहितमूर्तामूर्तसमवेतसमवेतवान् संस्कारः।

संस्कारं निरूपयति **गगनेति।** सत्तागुणत्वसंयोगत्वादिकमादाय रूपसंयोगादावतिव्याप्तिवारणाय **रहितान्तम्** चरमसमवेतविशेषणम्।[३२] ननु मूर्तोपादानमनर्थकमिति चेन्न ज्ञानत्वादेरात्मसमवेतसमवेततया तद्वत्वस्य ज्ञानादौ सत्वेनातिव्याप्त्यापत्तेस्तदुपादाने च ज्ञाने मूर्तसमवेतत्वस्य विरहेणातिव्याप्तिविरहात्। नन्वेवं मूर्तसमवेतसमवेतत्वेनैव ज्ञानत्वादावतिव्याप्तिवारणसंभवादमूर्तसमवेतत्वस्य वैयर्थ्यमिति चेन्न रूपादावतिव्याप्तेः। मूर्तपृथिवीसमवेतरूपसमवेतरूपत्ववत्वस्य तत्र सत्वात्। तदुपादाने च मूर्त्तामूर्तसमवेतसमवेततत्वस्य रूपत्वादौ विरहेणातिव्याप्तिविरहात्। अथैकस्य संस्कारस्य मूर्त्तामूर्तसमवेतस्याप्रसिद्ध्याऽसंभव इति चेन्न मूर्तामूर्तसमवेतसमवेतेत्यस्य मूर्तसमवेतसमवेतामूर्तसमवेतसमवेतार्थकत्वात्। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणपदं प्रत्येकमभिसम्बध्यत इति नियमात्। तथा च मूर्तमनस्समवेतवेगाख्यसंस्कारसमवेतामूर्तात्मसमवेतभावनाख्यसंस्कारसमवेतसंस्कारत्वमादाय लक्षणसमन्वयसंभवादिति भावः। स त्रिविधः वेगभावनास्थितिस्थापकभेदात्। वेगः पृथिवीजलतेजोवायुमनोवृत्तिः। स्मृतिजनकभावनाख्यसंस्कारश्चात्ममात्रवृत्तिः। अन्यथाकृतस्य पुनस्तादवस्थ्यापादकः स्थितिस्थापकः। शाखाकटादिपृथिवीमात्रवृत्तिरिति। ननु

संस्कारत्वजातौ मानाभाव इति चेन्न भावनारूपावृत्तिजातिमती रूपान्यत्वविशिष्टगुणत्वात् संयोगवदित्यनेन तत्सिद्धिसम्भवात्। न च भावनात्वस्यैव जातित्वमस्तु नैतावता संस्कारत्वजातिसिद्धिरिति वाच्यं वेगोरूपावृत्तिभावनावृत्तिजातिमान् वेगभावनाव्यतिरेकित्वरहितत्वात् भावनावदित्यनेन तत्सिद्धिसंभवात्।

विहितक्रियासाध्यः पुंगुणो धर्मः

धर्मं निरूपयति **विहितेति। विहिता** वेदोक्ताः, अग्निहोत्रं जुहुयात्, अश्वमेधेन यजेत्, आत्मानमुपासीत, अहरहः सन्ध्यामुपासीत, दर्शपौर्णामासाभ्यां यजेत्, पशुना रुद्रं यजेत्, अग्नीषोमीयं पशुमालभेत। प्रतिष्ठितं पूजयेदित्यादिवेदबोधिता इति यावत्। **साध्यो** जन्यः, वेदप्रतिपाद्यक्रियाजन्यपुंगुणो धर्म इत्यर्थः। क्रियाजन्यक्रियायामतिव्याप्तिवारणाय **गुण इति। पुमित्यस्योपादानं**, सस्त्रीको धर्ममाचरेत् यत्कर्तव्यं तदनया सहेत्यादि श्रुत्या पुरुषस्यैव कर्तृत्वाभिधानात्। पत्न्याःसाहित्याभिधानेन कर्तृत्वानभिधानात्। धर्मदिश्च कर्तर्येवोत्पादादित्येतत्सूचनाय। लक्षणे तस्याप्रवेशादिति बोध्यम्।

निषिद्धक्रियासाध्यपुंगुणोऽधर्मः।

अधर्मं निरूपयति **निषिद्धेति।** न ब्राह्मणं हन्यात्, ब्राह्मणो न सुरां पिबेत्, न[३३] कलञ्जं भक्षयेत्, परस्त्रियं नाभिगच्छेद्, नग्नां परस्त्रियं न पश्येत्, परद्रव्यं नापहरेत्, ब्राह्मणं नावगुरेत्[३४], गुरुं नावमन्येदित्यादिवाक्यबोधिता **क्रिया निषिद्धा, साध्यो** जन्यः, अत्र धर्मेऽतिव्याप्तिवारणाय **निषिद्धेति।** क्रियाजन्यक्रियायां नारकीयशरीरे चातिव्याप्तिवारणाय **गुणेति, पुमित्यस्योपादानं** पूर्ववदिति।

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्द इति गुणपदार्थः।

शब्दं निरूपयति **श्रोत्रेति।** शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय **गुणेति** विशेष्यदलम्। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय **श्रोत्रग्राह्योति** विशेषणदलम्। न च चरमशब्दस्यातीन्द्रियतया तत्राव्याप्तिरिति वाच्यं श्रोत्रग्राह्यतावच्छेदवान् गुणः शब्द इत्यस्य विवक्षितत्वात्। श्रोत्रग्राह्यतावच्छेदकशब्दत्वस्य तत्रापि सत्वाल्लक्षणसमन्वयादिति।

पृथिव्यादिनवद्रव्येषु यत्संख्यागुणाः सन्ति तानाहुर्वृद्धाः।

वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश।।
दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च।। इति।

अयमभिप्रायः, रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वसंस्काराश्चैते चतुर्दश गुणाः पृथिव्यां, गन्धं विहाय स्नेहं चादाय चतुर्दश गुणा जले, रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथकत्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वसंस्काराश्चैते एकादश गुणास्तेजसि, स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्व संस्काराश्चैते नव गुणा वायौ, संख्यादि पञ्च शब्दश्चैते षड्गुणा आकाशे, संख्यादिपञ्च गुणाः काले दिशि च, संख्यादिपञ्च बुद्धीच्छाप्रयत्नाश्चैतेऽष्टौ गुणाः परमात्मनि, संख्यापरिमाणपृथत्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धि सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नसंस्कारा दृष्टाश्चैते गुणा जीवात्मनि, संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्व संस्काराश्चैते गुणा मनसि सन्तीति। अथ रूपरसगन्धस्पर्शस्नेहशब्दसांसिद्धिक द्रवत्वबुद्धिसु खदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मभावनाख्यसंस्काराश्चैते विशेषगुणाः। तत्र पाकजरूपरसगन्धानुष्णाशीतस्पर्शाश्चैते विशेषगुणा पृथिव्याम्। अभास्वरशुक्लरूपमधुररसशीतस्पर्शसांसिद्धिकद्रवत्वस्नेहाश्चैते विशेषगुणा जले। भास्वरशुक्लरूपोष्णस्पर्शौ विशेषगुणौ तेजसि, अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शैकविशेषगुणो वायौ, शब्दैकविशेषगुणश्चाकाशे, बुद्धिसुखदुःखेच्छायत्नधर्माधर्मभावनाख्य संस्काराश्चैते विशेषगुणा जीवात्मनि, नित्यज्ञानेच्छायत्नास्त्रयो विशेषगुणाः परमेश्वरे सन्तीति। संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वानि द्वीन्द्रियग्राह्यगुणाः। रूपरसगन्धस्पर्शबुद्धिसुखदुःखेच्छायत्नद्वेषशब्दा एकैकेन्द्रियग्राह्या। तत्र रूपं षड्विधं शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशभेदात्। तत्र शुक्लरूपं भास्वराभास्वरमपि प्रत्येकं द्विविधं नित्यानित्यभेदात्। परमाणुगतं नित्यम्, कार्यगतं चानित्यम्। रसोऽपि षड्विधः मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात्। पृथिव्यां षड्विधो रसः, जले च मधुर एव रसः, नारिकेलजले तस्योपलम्भात्। न च जम्बीररसेऽम्लस्यस्योपलम्भान्मधुर एवेत्यसंगतमिति वाच्यमाश्रयौपाधिकस्य तस्य सत्वात्। न च नारिकेलजलेऽप्यौपाधिकरसोऽस्त्विति वाच्यं धात्रीफलादिभक्षणस्यार्थाच्चर्वितधात्रीफलस्य जलमाधुर्य्यव्यञ्जकत्वादन्यत्र तत्कल्पनागौरवात्। अन्यरसस्याननुभवाच्चेति।

तत्र गन्धोऽपि द्विविधः सौरभासौरभभेदात्। तत्र स्पर्शस्त्रिविधः शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्, तत्र शीतस्पर्शो जले, उष्णस्पर्शस्तेजसि, तत्रानुष्णाशीतस्पर्शो द्विविधः पाकजापाकजभेदात्, तत्र पाकजः पृथिव्यामपाकजो वायौ, जले पृथिव्यां चोष्णस्पर्शस्य पृथिव्यां वायौ च शीतस्पर्शस्यानुभवश्चौपाधिको बोध्यः। उपाधिशून्येषु तेषूष्णस्पर्शस्य, तयोः शीतस्य, चानुपलब्धेरिति। तत्र संख्यैकत्वादिपरार्द्धान्ता नानाविधा नवद्रव्यनिष्ठा। तत्रैकत्वं द्विविधं नित्यानित्यभेदात्। नित्यगतं नित्यमनित्यगतमनित्यम्। तत्र परिमाणं चतुर्विधमणुह्रस्व दीर्घपरममहत्परिमाणभेदात्। तत्राणुपरिमाणं परमाणुद्व्यणुकमनोवृत्ति। ह्रस्वपरिमाणं घटादिवृत्ति, दीर्घपरिमाणं च पृथिव्यादि वृत्ति, परममहत्परिमाणमाकाशादिचतुष्टयवृत्ति। तत्राणुपरिमाणं द्विविधं नित्यानित्यभेदात्। परमाणुगतं मनोगतञ्च नित्यं, द्व्यणुकादिगतमनित्यमिति। अनित्यपरिमाणं त्रिविधं संख्याप्रचयपरिमाणजभेदात्। तत्र संख्याजन्यपरिमाणं द्व्यणुकत्रसरेणुवृत्ति। परिमाणजपरिमाणं घटादीनां, शिथिलाख्यः संयोगः प्रचयस्तज्जन्यं परिमाणं तूलकादीनाम्। अथ परममहत्परिमाणमणुपरिमाणञ्च न परिमाणजनकं, परिमाणं हि स्वाश्रयारब्धपरिमाणारम्भकम्भवति। भवति च स[३५]जाती योत्कृष्टपरिमाणजनकम्। प्रथमे स्वाश्रयारब्धद्रव्यस्यैवाभावात्। अभावाच्चोत्कृष्टपरिमाणस्य। आकाशादिपरिमाणादुत्कृष्ट-परिमाणस्यानुभवेनाविषयीकरणात्। द्वितीये अणुपरिमाणाश्रयारब्ध-द्व्यणुकत्रसरेण्वादेस्सत्वेऽपि तत्परिमाणं प्रत्यणुपरिमाणस्याजनकत्वात्। तत उत्कृष्टस्य सूक्ष्मस्य परिमाणस्यानुभवेनाविषयीकरणात्। त्रसरेण्वादेरप्रत्यक्षत्वापत्तेश्च। प्रत्यक्षकारणस्य महत्वस्य तदा तत्रासम्भवात्। ननु तर्हि द्व्यणुकपरिमाणम्प्रति त्रसरेणुपरिमाणम्प्रति च किं कारणमिति चेत्, द्वित्वात्रित्वादेः कारणत्वात्। न च तत्र प्रत्यक्षात्मकापेक्षाबुद्धेरभावादिति वाच्यं, परमेश्वरापेक्षाबुद्धेस्तत्र सत्वात्। अतएव तदाश्रयतयेश्वरसिद्धिः।

कारणत्वञ्चान्यथासिद्धिशून्यत्वे सति नियतपूर्ववृत्तित्वम्[३६]। तच्च त्रिविधं, समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणत्वभेदात्। तत्र समवाय सम्बन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वम्। घटादिकार्यम्प्रति कपालादेस्समवायिकारणत्वम्। द्रव्यगुणकर्मसमवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति। समवायसम्बन्धावच्छिन्न-

कार्यतानिरूपितसमवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसंबन्धावच्छिन्नात्मगुणभिन्न-कारणत्वमसमवायिकारणत्वम्। इच्छाम्प्रतीष्टसाधनताज्ञानादेरसमवायिकारणत्व-वारणायात्मगुणभिन्ननिष्ठेति। घटकार्यम्प्रति कपालद्वयसंयोगस्य समवायेन, घटरूपम्प्रति कपालरूपस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेनासमवायिकारणत्वम्। उभयत्र लक्षणगमनार्थमन्यतरसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्योपादानम्। इदञ्च सामान्यलक्षणम्। विशेषतः पटाद्यसमवायिकारणत्वन्तु पटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततुरीतन्तु संयोगभिन्ननिष्ठसमवायसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वम्। तुरीतन्तुसंयोगेऽति-व्याप्तिवारणाय भिन्नान्तं, सामान्यलक्षणे तु नैतद्भिन्नत्वमपेक्षितम्। पटतुरीयसंयोगम्प्रति तस्याप्यसमवायिकारणत्वात्। एवमभिघातासमवायि-कारणत्वलक्षणे वेगभिन्नत्वं देयं, न तु सामान्यलक्षणे। वेगस्यापि वेगस्पन्दम्प्रत्यसमवायिकारणत्वात्। एवमन्यत्राप्यूहनीयम्। असमवायिकारणत्वन्तु गुणे कर्मण्येवास्ति, नान्येत्रेति बोध्यम्।

निरुक्तोभयकारणताभिन्ना निमित्तकारणता, घटादिकार्यम्प्रति दण्डादेर्न्निमित्तकारणत्वात्। इच्छाम्प्रतीष्टसाधनताज्ञानादेश्च निमित्तकारणत्वात्। एवमन्यत्राप्यूह्यम्।

अन्यथासिद्धत्वञ्च अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववृत्तिभिन्नत्वं, तदाश्रयोऽन्यथासिद्धः। स च पञ्चविधः कारणतावच्छेदककारण-रूपाकाशकारणजनकरासभभेदात्। तथाहि यत्कार्यम्प्रति कारणस्य नियतपूर्ववृत्तित्वं येन रूपेण गृह्यते तद्रूपं प्रथममन्यथासिद्धम्। न च विनिगमकाभावाद्दण्डत्वमेव कारणं, दण्ड एवान्यथासिद्ध इत्येव किन्न रोचत इति वाच्यं, दण्डत्वस्य स्वाश्रयदण्डघटितपरम्परासम्बन्धेन[३७] कारणत्वस्य वक्तव्यतया कारणतावच्छेदकसंसर्गतावच्छेदकगौरवात्। गौरवाच्च दण्डेतरासमवेतत्वे सति सकलदण्डसमवेतत्वरूपदण्डत्वत्वस्य कारणतावच्छेदकताया वक्तुमशक्यत्वात्। एवमग्रेऽपि। यस्य यत्कार्यम्प्रति स्वातन्त्र्येणार्थात्साक्षात्सम्बन्धेनान्वयव्यतिरेकौ न गृह्येते, कारणमादायैवार्थात्कारणघटितपरम्परासम्बन्धेनैवान्वयव्यतिरेकौ स स्तत्कार्यम्प्रति तत् द्वितीयमन्यथासिद्धम्। यथाघटकार्यम्प्रति दण्डरूपम्। यस्यान्यम्प्रति नियतपूर्ववर्तित्वं गृहीत्वैव यत्कार्यम्प्रति नियतपूर्ववृत्तित्वं गृह्यते तत्कार्यम्प्रति तत् तृतीयमन्यथासिद्धम्। यथाकाशस्य शब्दं प्रति पूर्ववर्तित्वं गृहीत्वैव घटकार्यम्प्रति नियतपूर्ववर्तित्वं गृह्यत इत्याकाशस्तृतीयान्यथासिद्धः। आकाशत्वं

शब्दसमवायिकारणत्वमित्यभिप्रायेणेदं बोध्यम् नान्यथा। शब्दवत्वरूपत्वे तु पञ्चममध्ये तस्यान्तर्भावो बोध्यः। जनकम्प्रति नियतपूर्ववर्तित्वं गृहीत्वैव यत्कार्यम्प्रति नियतपूर्ववर्त्तित्वं यस्य गृह्यते तत्कार्य्यम्प्रति स चतुर्थोऽन्यथासिद्धः। यथाकुलालम्प्रति कुलालपितुर्नियतपूर्ववर्तित्वं गृहीत्वैव घटकार्यम्प्रति नियतपूर्ववर्तित्वं गृह्यत इति कुलालपिता चतुर्थोऽन्यथासिद्धः। इदमपि कुलालपितृत्वेन बोध्यम्। कुलालत्वेन कुलालमात्रस्य हेतुत्वात्। कुलालपितृत्वञ्च कुलालजनकत्वे सति पुंस्त्वम्। अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिन्नो रासभः पञ्चमोऽन्यथासिद्ध इति। वस्तुतस्तु अन्यथासिद्धस्यैकविधत्वमेव। निरुक्तानां दण्डत्वादीनां सर्वेषाम्पञ्चमाक्रान्तत्वादिति ध्येयम्।

अथ पृथक्त्वस्यान्योन्याभावातिरिक्तत्वे मानाभावात् त्रयोविंशतिरेव गुणास्सन्तु, पटे घटभेदस्यैव पृथक्त्वरूपत्वादिति चेद्, अत्र केचित्, अस्मादयम्पृथगिदन्नेति प्रतीत्योर्वैलक्षण्यादिति। विषयभेदं विना तन्नोपपद्यत इति। तस्यान्योन्याभावातिरिक्तत्वमावश्यकमिति। न च विषयभेदं विनापि घटोऽस्ति कलशोऽस्तीति विभिन्नाकारकप्रत्ययदर्शनादिति वाच्यम्, अर्थभेदानभ्युपगमे पटो न घट इत्यत्र घटः पटात् पृथगित्यत्रेव पटपदोत्तरं पञ्चमीप्रसङ्गादित्याहु, स्तच्चिन्त्यम्। [३८]वस्तुतस्तु एकाश्रमवासिनां चैत्रमैत्रविष्णुदत्तानाम्मध्ये चैत्रो न मैत्र इति वच्चैत्रो मैत्रात्पृथगिति व्यवहारादर्शनादेकाश्रमस्थितिदशायां भेदसत्वेऽपि पृथक्त्वं नोत्पद्यते। विभिन्नाश्रमदशायाञ्चोत्पद्यते। तदानीं चैत्रान्मैत्रः पृथगिति व्यवहारदर्शनात्, पृथक्त्वान्योन्याभावयोर्भेदस्यावश्यकतेति। भेदस्य नित्यत्वं पृथक्त्वस्य चानित्यत्वमिति तयोः कथमपि नाभेदसम्भवावकाश इति दिक्।

संयोगस्त्रिविधोऽन्यतरकर्मजोभयकर्मजसंयोगजभेदात्[३९]। तत्र प्रथमश्शैलश्येनयोस्संयोगः, द्वितीयो मेषद्वयसंयोगः, तृतीयोऽवयव संयोगजन्यावयविसंयोगः। यथा हस्तवृक्षसंयोगाच्छरीरवृक्षसंयोगः, कपालवृक्षसंयोगाद् घटवृक्षसंयोगः। तत्र कर्म्मजसंयोगो द्विविधः अभिघातनोदनभेदात्। तत्राभिघातः, शब्दजनकसंयोगः, शब्दाजनकसंयोगो नोदन इति। विभुद्वयसंयोगस्वीकारपक्षे संयोगो द्विविधो नित्यानित्यभेदात्। नित्यो विभुद्वयसंयोगः, अनित्यः कार्यरूपः। कार्यस्त्रिविधः प्रागेवोक्त इति।

विभागस्त्रिविधोऽन्यतरकर्म्मजोभयकर्म्मजविभागजभेदात्। विभागजविभागोऽपि द्विविधः, हेतुमात्रविभागजहेत्वहेतुविभागजभेदात्।

अन्यतरकर्मजविभागस्तु श्येनकर्मजश्येनशैलविभागः। उभयकर्म्मजविभागश्च मेषद्वयकर्म्मजन्यमेषद्वयविभागः। हेतुमात्रविभागजविभागश्च यत्र कपाले कर्म्म ततः कपालद्वयविभागस्ततो घटारम्भकसंयोगनाशस्ततो घटनाशस्ततस्तेनैव कपालविभागेन सकर्म्मणः कपालस्याकाशविभागो जन्यते। तत आकाशसंयोगनाशस्तत उत्तरदेशसंयोगस्ततः कर्म्मनाश इति। न च तेन कर्म्मणैव कथं देशान्तरविभागो न जन्यत इति वाच्यमेककर्म्मणारम्भक-संयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकत्वस्यानारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकत्वस्य विरोधात्। अन्यथाविकसत्क[40] मलकुडमलभंगप्रसंगात्। तस्माद्यदीदमनारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागं जनयेत् तदाऽऽरम्भक-संयोगप्रतिद्वन्द्विविभागं न जनयेत्। न च कारणविभागेनैव द्रव्यनाशात्पूर्वं कुतो देशान्तरविभागो न जन्यत इति वाच्यमारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागवतो ऽवयवस्य सति द्रव्ये देशान्तरविभागासम्भवात्। द्वितीयस्तावत्, यत्र हस्तक्रियया-हस्ततरुविभागस्ततश्शरीरेऽपि विभक्तप्रत्ययो भवति। तत्र शरीरविभागे हस्तक्रिया न कारणं, व्यधिकरणत्वात्। शरीरे तु क्रिया नास्त्येव, अवयविकर्म्मणो यावदवयव-कर्म्मनियतत्वादतस्तत्र कारणाकारणविभागेन कार्य्याकार्य्यविभागो जन्यत इति। अतएव विभागो गुणान्तरमन्यथा शरीरे विभक्तप्रत्ययो न स्यात्। संयोगनाशेन विभागोऽन्यथासिद्धो भवतीति **गौडचरणाः**[41]।

पूर्वमेव परापरत्वे निरूपिते विभजिते च। अथ बुद्धि र्द्विधा स्मृत्यनुभवभेदात्। निबन्धान्तरे बुद्धिः ख्यातिः। सा त्रिधा सत्ख्यात्यन्यथाख्यात्यसत्ख्यातिभेदात्। नित्यानित्यभेदाद्वा बुद्धिर्द्विधा। नित्या परमेश्वरे। अनित्या जीवत्मनि। तत्र स्मृतिस्संस्कारजन्या बुद्धिः। न च सोऽयं देवदत्त इति प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्ति-स्तस्यास्संस्कारजन्यत्वादिति वाच्यं, संस्कारमात्रजन्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। तत्र चक्षुरिन्द्रिसन्निकर्षजन्यत्वस्यापि सत्वात्। न च संस्कारेतरानुभवजन्यत्वस्य स्मृतौ सत्वेनासंभव इति वाच्यमनुभवस्य करणविधया स्मृतिहेतुत्वात्। लक्षणे च संस्कारातिरिक्तव्यापाराजन्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। प्रत्यभिज्ञां प्रतिचक्षुस्संयोगस्य व्यापारविधया कारणत्वान्नातिव्याप्तिः। वस्तुतस्तु संस्कारात्स्मृतिः स्मृतेश्च प्रत्यभिज्ञानमिति स्मृतिजन्यत्वं प्रत्यभिज्ञायां, न तु संस्कारजन्यत्वमिति विवेकः।

केचित्तु इन्द्रियासहकृतसंस्कारजन्यज्ञानं स्मृतिरिति, न प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिस्तत्रेन्द्रियस्य सहकारित्वादित्याहुः[42],

संस्कारम्प्रत्यपेक्षात्मकानुभवस्य कारणत्वं बोध्यम्। न तूपेक्षात्मकस्याप्यत एव

नदीयङ्कालिन्दी बहुविततशाखस्तरुरयं
समीपे घोषोऽयं ब्रज पथिक वृन्दावनमिदम्।
इति श्राव्यो नाथो मधुपुरगतो मैवमथवा
पुरोपेक्षाज्ञाने स्मरणमपि नोद्वोधकशतैः इति।।

नन्वनुभवत्वेन संस्कारं प्रति कारणत्वे सकृदनुभूतवस्तुनस्सकृत्स्मरणानन्तरं स्मरणान्तरानुपपत्तिः। संस्कारस्य फलनाश्यतया प्रथमस्मरणेन तस्य नाशादिति चेन्नापेक्षात्मकज्ञानत्वेन कारणत्वात्स्मरणात्मकज्ञानस्यापि तथाविधस्य हेतुतया स्मरणान्तरोपपत्तेरिति। तत्र स्मृत्यन्या बुद्धिरनुभूतिः। सा चतुर्द्धा प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्। तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमान-शब्दभेदात्। तथाचोक्तं गौतमपादैः प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति न्या.सू. १।१।३। प्रमितिकरणं प्रमाणं, करणे ल्युट्। स्मृत्यन्यभ्रमान्या मितिःप्रमितिः। स्मृत्यन्यभ्रमान्यमिति करणं प्रमाणमिति।

वेदान्तिनस्तु अनधिगताबाधितार्थगोचरा मितिः प्रमितिः। तत्करणं प्रमाणम्। तत्षड्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दार्थापत्त्यनुपलब्धिभेदात्। प्रमितिलक्षणे प्रमाणलक्षणे च स्मृतिव्यावृत्त्यर्थं स्मृतिजनकानुभव-व्यावृत्त्यर्थमनधिगतेत्यस्योपादानम्। इदं रजतमिति भ्रमतत्कारणयोर्व्यावृत्त्यर्थम-बाधितार्थस्योपादानमिति वदन्ति। तच्चिन्त्यम्। प्रत्यक्षधारास्थले द्वितीयप्रत्यक्षे प्रमितिलक्षणस्य, तत्करणसंयोगान्तरजनके प्रमाणलक्षणस्याव्याप्तेः। द्वितीयप्रत्यक्षस्याधिगतार्थगोचरत्वात्। न च तत्र क्षणस्यापि विषयत्वेनानधिगतत्व-सम्भवान्नाव्याप्तिरिति वाच्यं, क्षणस्य कालात्मकद्रव्यतया तस्य रूपवत्वाभावेन चाक्षुषागोचरत्वात्। स्पर्शाभावेन स्पार्शनागोचरत्वात्। अयं घटोऽयं घट इत्याकारकप्रत्यक्षविषयत्वेन क्षणस्यानुभवेनाविषयीकरणात्। घटं पश्यामीतिवत् कालं पश्यामि स्पृशामि चेत्यनुभवासत्वात्। अथ कालस्याविषयत्वे इदानीम्मया घटो दृष्ट इति स्मरणस्य घटप्रत्यक्षानन्तरोत्पन्नस्य कथं संभव इति चेत्सावधानमवधार्यताम्। तथाहि घटप्रत्यक्षानन्तरजायमानमेतत्कालीन घटप्रत्यक्षं मत्कर्तृकमिति ज्ञानादेव तादृशस्मरणस्य संभवः। यदा च ज्ञानेऽस्मत्कर्तृकत्वमेतत्कालिकत्वं च न ज्ञातं तदाऽयं घट इत्याकारकस्मरणमेव

भवतीति रमणीयसमाधिः।

एवं सिसाधयिषाधीनानुमितौ तत्करणव्याप्तिज्ञाने चाव्याप्तिः, अधिगतार्थस्यैवानुमितिविषयत्वात्। एवं श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यस्साक्षात्कर्त्तव्य इत्यादिश्रुत्या समानविषयकशाब्दानन्तरानुमितिदर्शनात्। प्रमितिलक्षणे प्रमाणलक्षणे चाव्याप्तिवारणस्य गीर्वाणगुरूणामप्यशक्यत्वात्। न च रूपान्तरेण श्रुतस्य रूपान्तरेण मनने न कोऽपि दोष इति वाच्यं, श्रोतव्यो मन्तव्य इति समानाधिकरणश्रुतेर्लाघवाच्च। येनैव रूपेण श्रवणं तेनैव रूपेण मननस्योचितत्वात्। न च रूपान्तरेण श्रुतस्य रूपान्तरेण मनने श्रद्धा प्रक्षालनं शास्त्रव्यापारो निर्वहति श्रुतस्यामननात्। किञ्च न तद्रूपमस्तीश्वरे यत्र वेदे श्रुतमस्तीति प्रथमस्तवके **वर्द्धमानचरणाः**। एतेन कारणदोषबाधकप्रत्ययरहितागृहीतग्राहिज्ञानं प्रमितिस्तत्करणं प्रमाणम्। सुन्दरोऽहमिति प्रत्ययवारणाय कारणदोषरहितेति। इदं रजतमित्यादिज्ञानवारणाय बाधकप्रत्ययरहितेति। स्मृतिवारणायागृहीतग्राहीति यदुक्तं मीमांसकेन, तदपि चिन्त्यम्। प्रत्यक्षात्मकसिद्ध्यात्मकपरामर्शानन्तरमनुमिति र्जायतामितीच्छया यत्रानुमितिस्तत्रानुमितौ तत्कारणे चाव्याप्तेः। मन्तव्यश्चोपपत्तिभिरिति स्मरणात्, एकलिङ्गावगतेऽपि लिङ्गान्तरेण तदनुमानात्। तथाच द्वितीयादिलिङ्गजन्यानुमितौ तत्करणे चाव्याप्तिरनुमितस्यैवानुमानात्। एवम्प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिका इति **वाचस्पतिमिश्र**वाक्यात् प्रत्यक्षानन्तरानुमितिबोधात्तदनुमितौ तत्करणे चाव्याप्तेश्च। निरुक्तश्रुतिबोधितानुमितौ तत्करणे च नितरान्तथेति।

अर्थापत्तिरपि न प्रमाणान्तरं, तस्या व्यतिरेक्यनुमानान्तर्गतत्वात्। पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्त-इत्यत्र रात्रिभोजित्वाभावव्यापकाभावप्रतियोगि पीनत्ववान्देवदत्त इति परामर्शात्पीनत्वलिङ्गकानुमितेस्तत्र स्वीकारात्। **केचित्त्वर्थापत्तिर्न्न** प्रमाणान्तरम्। तथाहि जीवतश्चैत्रस्य गृहाभावदर्शनेन वहिर्भावस्यादृष्टस्य कल्पनाऽर्थापत्तिर्वक्तव्या। सा चानुमान एवान्तर्भवति। तथाहि यदा खल्वव्यापकसन्नेकत्र नास्ति तदान्यत्रास्ति। यदा चाव्यापक एकत्रास्ति तदान्यत्र नास्तीति सुकरः स्वशरीर एव व्याप्तिग्रहः। तथाच सति चैत्रो बहिस्सत्ववान् जीवित्वे सति गृहवृत्त्यभावप्रतियोगित्वात्। चत्वरस्थितिविशिष्टास्मद्वदित्यनेन। बहिर्भावस्यादृष्टस्य दर्शनमनुमानमित्यन्यत्र विस्तर इत्याहुः।

अनुपलब्धिरपि न प्रमाणान्तरम्। इन्द्रियेणाभावप्रत्यक्षजनने सहकारित्वमात्रं तस्याभ्युपेयते। व्यापारस्य चाभावेन प्रमाणत्वाभावाच्च। प्रमाणस्य व्यापारद्वारा फलजनकत्वात्। करणत्वस्य व्यापारघटितत्वात्, तस्यास्साक्षादेवाभावप्रत्यक्षहेतुत्वात्।

यत्त्विन्द्रियेणाभावज्ञानं न जायते, किन्त्वनुपलब्धिमात्रादेवेति मतं, तन्न साधुपथमारोहति। एतद्रसालफलं मधुरं नैतद्रसालफलमिति ज्ञानस्यात्र माधुर्यं नात्र माधुर्य्यमिति प्रत्ययस्य रसनासम्बन्धम्बिनानुभवेनाविषयीकरणात्। यथा वाऽन्धस्यात्र घटे नीलरूपं नात्र घट इति प्रत्ययसम्भावनाया अप्यसम्भवात्। तस्मादिन्द्रियजमेवाभावानां लौकिकप्रत्यक्षं भवतीति मुक्तलज्जैरपि वक्तव्यमिति। न च गेहान्निर्गतचैत्रस्य स्थानान्तरस्थितिदशायां मैत्रं प्रति यज्ञदत्तो वदति मार्गे, गेह इदानीं चैत्रो नास्तीति, कथमुपपद्यत इति वाच्यं चैत्रगेहगतस्य यज्ञदत्तस्येन्द्रियसम्बद्धगृहविशेषणतया चैत्राभावस्य प्रत्यक्षं पूर्वं जातं तदनन्तरञ्च स्थानान्तरे चैत्राभावं स्मृत्वा, स गेह इदानी चैत्रो नास्तीति प्रयुङ्क्ते, श्रोतुश्च तदानीं शाब्द एव प्रत्ययश्चैत्राभावस्यान्यथेन्द्रियसम्बन्धाभावस्थलेऽप्यनुपलब्धिं स्वीकृत्याभावग्रहस्वीकारे पुत्रस्य काश्यां स्थितिदशायां तत्पितुः काश्यां यदि पुत्रः स्यात्तदोपलभ्येत, यतो नोपलभ्यतेऽतस्तत्रास्ति नष्टो वेति तदभावग्रहसम्भवेनोरस्ताडनपूर्व्वकरोदनं प्रसज्येत। तस्माद्योग्यानुपलब्धिरिन्द्रियसम्बन्धदशायामेव भवतीत्यवश्यं क्तव्यमित्यन्यत्र विस्तरः।

प्रमितिलक्षणघटकभेदप्रतियोगितावच्छेदक भ्रमत्वञ्च[43] तदभाववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताकत्वम्। विशेष्यताविशिष्टप्रकारताशालित्वपर्यवसितम्। वैशिष्ट्यञ्च स्वनिरूपकत्व स्वाश्रयावृत्तित्वोभयसंबन्धेन। स्वं विशेष्यता, सम्बन्धघटकावृत्तित्वघटकवृत्तित्वञ्च स्वविशिष्टनिरूपकताकाधिकरणतासम्बन्धेन। स्वं प्रकारता, प्रकारतावैशिष्ट्यञ्च स्वसामानाधिकरण्य स्वानिरूपितसंसर्गतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यनधिकरणपर्य्याप्तावच्छेदकताक संसर्गत्वानिरूपितत्व स्वानवच्छेदकपर्य्याप्तावच्छेदकत्वानिरूपितत्व स्वावृत्तित्वैतच्चतुष्टयसम्बन्धेन। स्वावृत्तित्वञ्च स्वानवच्छेदकानवच्छिन्नत्वसम्बन्धेन। स्वमत्र निरूपकता। यद्वा विशेषणताविशिष्टविषयतानिरूपकत्वं तत्। विशेषणतावैशिष्ट्यञ्च स्वनिरूपकत्वस्वविशिष्टयत्किञ्चिद्रूपवृत्तिप्रतियोगिताकाभाववन्निष्ठत्वोभय-

सम्बन्धेन। प्रतियोगितायां स्ववैशिष्ट्यञ्च स्वावच्छिन्नत्व स्वानवच्छेदक-सम्बन्धानवच्छिन्नत्वोभयसम्बन्धेन। स्वं विशेषणता। रूपवृत्तित्वञ्च स्वावच्छेदकतापर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्व स्वनिरूपकानुयोगिता-निरूपितनिरूपकतावच्छेदकतापर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वोभयसम्बन्धेन। स्वमत्र प्रतियोगितेति दिक्।

सांख्यकारास्तु प्रमाणं सप्तविधं प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दार्थापत्त्य-नुपलब्ध्यैतिह्यभेदात्। ऐतिह्यमिह बटे यक्षोऽस्तीति वाक्यं परम्पराश्रुतमात्रं यत्र तत्र बोध्यम्। अनुपलब्धिरपि यदि स्यात्तदोपलभ्येत यतो नोपलभ्यतेऽतो नास्तीति यत्र तत्राभावे प्रमाणम्। अर्थापत्तिस्तु पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते इत्यत्र रात्रिभोजित्वं विना पीनत्वमनुपपन्नमिति रात्रिभोजित्वे प्रमाणमिति वदन्ति। तदपि चिन्त्यं, पूर्वोक्तयुक्तेः।

सांख्याचार्य्यास्तु प्रमां प्रति करणं प्रमाणम्। असन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः बोधश्च पौरुषेयः फलं प्रमा, तत्साधनं प्रमाणमिति। तत्त्रिविधं दृष्टानुमानाप्तवचनभेदात्। अनुमानं त्रिविधं पूर्व्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टभेदादिति प्राहुः। तदपि चिन्त्यं, पूर्व्वोक्तयुक्तेः। प्रत्यक्षं पूर्वमेव निरूपितं विभजितञ्च। प्रसंगात्पुनरपि लक्ष्यते-विभज्यते च। ज्ञानाकरणकज्ञानं प्रत्यक्षं, तच्च षड्विधं चाक्षुषत्वाचश्रावणघ्राणजरासनमानसभेदात्। तत्र चाक्षुषप्रत्यक्षे संयोग संयुक्तसमवाय संयुक्तसमवेतसमवाय संयुक्तविशेषणता संयुक्तममवेतविशेषणता संयुक्त समवेतसमवेतविशेषणताभेदात् षड्विधस्सन्निकर्षः कारणम्। त्वाचप्रत्यक्षे त्वक्संयोगादिषड्विधः सन्निकर्षः कारणम्। श्रावणप्रत्यक्षे च श्रवणसमवाय श्रवणसमवेतसमवाय श्रवणसमवेत-विशेषणता श्रवणसमवतसमवेतविशेषण-ताभेदाच्चतुर्विधस्सन्निकर्षः कारणम्। घ्राणजप्रत्यक्षे च घ्राणसंयुक्तसमवाय, घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवाय, घ्राणसंयुक्तसमवेतविशेषणता, घ्राणसंयुक्तसमवेत समवेतविशेषणताभेदाच्चतुर्विधस्सन्निकर्षः कारणम्। एवं रासनप्रत्यक्षे रसनसंयुक्तसमवायादिचतुर्विधस्सन्निकर्षः कारणम्।

मानसप्रत्यक्षे च मनस्संय्योगादिषड्विधस्सन्निकर्षः कारणम्। तथाहि विषयतासम्बन्धेन द्रव्यविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति समवायेन चक्षुस्संयोगः कारणम्। न चान्धकारे घटे चक्षुस्संयोगस्य सत्वेऽपि प्रत्यक्षानुदयात् व्यभिचार इति वाच्यम् आलोकसंयोगस्यापि सहकारिकारणत्वात्। न च तत्रैव घटान्तर्वर्तिप्रदीपसंयोग दशायामन्वयव्यभिचारस्तदवस्थ एवेति वाच्यमालोकसंयोगावच्छिन्न चक्षुस्संयोगस्य

कारणत्वात्। तस्य तत्रासत्वात्। अथ परमाणौ तथाविधसन्निकर्षस्य सत्वात् प्रत्यक्षस्यासत्वेन व्यभिचारस्तदवस्थ एवेति चेन्न, समवायेन महत्त्वस्य कारणत्वात्। परमाणौ महत्त्वाभावान्न व्यभिचारः। न च वायौ व्यभिचार इति वाच्यं, समवायेन रूपवत्त्वस्यापि कारणत्वात्। रूपस्य वायावभावात्। न चातितप्ततैलस्थबह्नौ भर्जनकपालस्थबह्नौ ग्रीष्मादौ च व्यभिचार इति वाच्यमुद्भूतरूपवत्त्वस्यापि कारणत्वात्। तत्र तत्रोद्भूतरूपाभावान्न व्यभिचारः। एवं च द्रव्यविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति महत्त्वोद्भूतरूपसहकृतालोकसंयोगावच्छिन्न चक्षुस्संयोगः कारणमिति। द्रव्येषु पृथ्वीजलतेजसामेव चाक्षुषप्रत्यक्षगोचरत्वा दित्यन्यत्र विस्तरः।

द्रव्यसमवेतरूपसंयोगैकत्वद्रव्यत्वादिविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन महत्त्वोद्भूतरूपसहकृतालोकसंयोगावच्छिन्न चक्षुस्संयुक्तसमवायः कारणम्। द्रव्यसमवेतसमवेतरूपत्व गुणत्वादिविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति सामानाधिकण्यघटितसामानाधिकरण्यसंबन्धेन महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वसहकृतालोकसंयोगावच्छिन्न चक्षुस्संयुक्तसमवेत समवायः कारणम्। यदा घटादिसावयवद्रव्ये चक्षुस्संयोगस्तदैव तत्समवेतादीनां प्रत्यक्षं भवतीति बोध्यम्। द्रव्यवृत्त्यभावविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति चक्षुस्संयुक्तविशेषणता कारणम्। द्रव्यसमवेतवृत्त्यभावविषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति चक्षुस्संयुक्तसमवेत-विशेषणता कारणम्। द्रव्यसमवेतसमवेतवृत्त्यभाव-विषयकचाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति चक्षुस्संयुक्तसमवेत समवेतविशेषणता कारणमिति।

द्रव्यविषयकत्वाचप्रत्यक्षे उद्भूतस्पर्शवत्त्वसहकृतत्वक्संयोगः कारणम्। न च वायोरपि प्रत्यक्षं स्यान्निरुक्तकारणस्य तत्र सत्त्वादिति वाच्यमिष्टत्वात्। वायुं स्पृशामीत्यनुव्यवसायस्य वायुप्रत्यक्षप्रमाणत्वात्। केचित्तु रूपवत्त्वस्यापि तत्र कारणत्वान्नापत्तिः, वायुरनुमेय एव, न तु प्रत्यक्षः। तथाहि वायुर्न प्रत्यक्षविषयो द्रव्यत्वे सति रूपरहित्वादाकाशवदित्यनुमानात्तस्य प्रत्यक्षाविषयत्व-सिद्धिरित्याहुस्तन्न, वायुर्बहिष्प्रत्यक्षविषयो महत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वात् घटवदित्यनेन प्रत्यक्षविषयत्वस्य तत्र सिद्धिसम्भवात्। न च पूर्वोक्तहेतुना सत्प्रतिपक्षप्रसंगेन प्रत्यक्षविषयत्वासिद्धिरिति वाच्यम्, वायुं स्पृशामीत्यनुव्यवसायस्याधिकस्य सत्वेन वायौ प्रत्यक्षविषयत्वसाधकहेतोरधिकबलतया वायौ प्रत्यक्षविषयत्वाभाव-साधकहेतोर्हीनबलत्वेन समानबलत्वाभावात्सत्प्रति-पक्षानवतारादिति। नचैवं

द्रव्यप्रत्यक्षे उद्भूतस्पर्शवत्त्वमेव कारणमस्तु रूप-वत्त्वस्यानावश्यकत्वमिति वाच्यं, प्रभाप्रत्यक्षे व्यभिचारात्। प्रभायां स्पर्शस्यासत्वात्। न च वायौ रूपस्य प्रभायां स्पर्शस्य चासत्त्वेन द्रव्यप्रत्यक्षसामान्यं प्रत्यकारणत्व प्रसङ्ग इति वाच्यमिष्टत्वात्। चाक्षुषं प्रति रूपवत्त्वस्य स्पार्शनं प्रत्युद्भूतस्पर्शवत्त्वस्यपृथगेव हेतुत्वात्। अस्तु वा रूपस्पर्शान्यतरसमानाधिकरणमहत्त्वमेव तत्र कारणमिति दिक्।

घटादाविन्द्रियसंप्रयोगानन्तरोत्पन्न निर्विकल्पज्ञानात् घट इति विशिष्टज्ञानं जन्यते, ततो घटमहं जानामीत्यनुव्यवसायः। तद्विषयत्वाद्विशिष्टज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं, निर्विकल्पज्ञानात्प्राग्विशेषणतावच्छेदकज्ञानस्य विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानजनक[४४] स्याभावेन तस्याप्रत्यक्षत्वमतीन्द्रियत्वाच्च।

एवं रासनादिप्रत्यक्षे रसनसंयुक्तसमवायादीनां कारणत्वं बोध्यमिति लौकिकसन्निकर्षः।

अथालौकिकसन्निकर्षस्त्रिविधः सामान्यलक्षणज्ञानलक्षणयोगजभेदात्। तत्र सामान्यं लक्षणं स्वरूपं यस्येति विग्रहादिन्द्रियसम्बद्ध-विशेष्यकज्ञान-प्रकारीभूतधर्मोऽर्थः, नत्विन्द्रियसंबद्धवृत्तिधर्मस्तथा। अन्यथा धूलीपटले धूमत्वग्रहान्निखिलधूमग्रहानुपपत्तिप्रसंगात्। धूमत्वस्य धूलीपटलावृत्तित्वात्।

ज्ञानं लक्षणं स्वरूपं यस्येति विग्रहात् सामान्यधर्म्मप्रकारकज्ञानं तदर्थः। चन्दनखण्डे इन्द्रियसन्निकर्षात् सौरभस्मरणेन च सुरभिचन्दनमिति सारैभांऽशेऽलौकिकं चन्दनांशे लौकिकं ज्ञानमेवं सति दोषे, रङ्गे रजतत्वप्रकारेण रजतज्ञानमुपपद्यते इति ज्ञानलक्षणस्यावश्यकत्वमिति।

योगजो द्विविधः चिन्तासहकृतचिन्ताऽसहकृतभेदात्। तथाच युक्तस्य योगिनो विश्वभानं सर्वदैव, युञ्जानस्य च चिन्तासहकारेण प्रत्यक्षमिति।

नैयायिक मैथिलराजपण्डित श्रीमद्विश्वनाथकृतलक्षणावली प्रकाशे प्रत्यक्षखण्डप्रकाशः समाप्तः।

अनुमानखण्डप्रकाशः

करणविधया व्याप्तिज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिः। स्वजन्य परामर्शवत्त्वसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिज्ञानजनकतानिरूपितसमवाय सम्बन्धावच्छिन्नजन्यतावज्ज्ञानमनुमितिरिति निष्कर्षः। व्याप्तिविषय-कानुव्यवसायेऽतिव्याप्तिवारणायं करणविधयेति।

केचित्तु प्रत्यक्षावृत्तिपरामर्श जन्यवृत्त्यनुभवत्वव्याप्य जातिमती अनुमितिः संस्कारत्वस्मृतित्वमादायातिव्याप्तिवारणायानुभवत्वव्याप्येतीत्याहुः।

यद्वा स्मरणावृत्तिप्रत्यक्षावृत्ति परामर्शजन्यज्ञानवृत्तिजातिमती अनुमितिरिति। यत्तु परामर्शजन्यज्ञानमनुमितिरिति, तत्तुच्छम्, परामर्षविषयकप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तेः। न च लिङ्गाविषयकत्वस्य विवक्षितत्वादिति वाच्यम्। स्वमते लिङ्गविशिष्टे विधेयभानादसम्भवापत्तेः। परमतेऽपि धूमवत्सधर्म्मा पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ लिङ्गविषयकत्वस्यानुमितौ सत्त्वेनाव्याप्तेः। यदि च विषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन विषयस्य कारणतया समवायसंबन्धावच्छिन्न परामर्शत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्न जन्यतावज्ज्ञानमनुमितिरित्युक्तौ नातिव्याप्तिरित्युच्यते, तदा व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मताज्ञानं परामर्शः व्याप्तिप्रकारतानिरूपित प्रकृतहेतुविशेष्यत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित प्रकृतपक्षविशेष्यताशालिज्ञानं, प्रकृतपक्षवृत्तित्वप्रकारक प्रकृतव्याप्तिविशिष्टहेतुविशेष्यकज्ञानात्मकं वेत्येकोपादानेऽन्यत्राव्याप्तिः। साध्यसाधनभेदेन च व्याप्तेर्भिन्नतयैको पादानेऽन्यत्राव्याप्तेर्दुर्वारत्वात्।

परे तु व्याप्तेर्ज्ञानात्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्याकारकपरामर्शत्वावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नजनकता निरूपितजन्यतावज्ज्ञानवृत्ति प्रत्यक्षावृत्तिजातिमती अनुमितिस्तत्करणमनुमानमिति प्राहुः।

तच्च त्रिविधं केवलान्वयिकेवलव्यतिरेक्यन्वयव्यतिरेकिभेदात्। तत्र वृत्तिमदत्यन्ताभावप्रतियोगिसाध्यकानुमितिकरणं केवलान्वयि, इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात् घटवदित्यादौ। सपक्षरहितसाध्यकानुमितिकरणं केवलव्यतिरेकि, पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वादित्यादौ। भेदप्रतियोगितावच्छेदकसाध्यकानुमिति-

करणमन्वयव्यतिरेकि, वह्निमान् धूमादित्यादौ। व्याप्तिज्ञानं तद्विषयो हेतुर्वा।

अथवा[४५] अन्वयसहचारमात्रगृहीतव्याप्तिकत्वं केवलान्वयित्वम्। व्यतिरेकसहचारमात्रगृहीतव्याप्तिकत्वं केवलव्यतिरेकित्वम्। उभयसहचारगृहीतव्याप्तिकत्वमन्वयव्यतिरेकित्वमित्यन्यत्र विस्तरः।

अथ साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिः, साध्याभाववतो न विद्यते वृत्तिर्यत्र तस्य भावस्तत्त्वम्। वृत्त्यभावश्च तादृशवृत्तित्वसामान्याभावो ग्राह्यः[४६]। तेन धूमाभाववद्ह्रदादिवृत्तित्वाभावस्य तादृशवृत्तित्वजलत्वोभयाभावस्य च वह्न्यादिहेतौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्त्यवकाशस्तादृशवृत्तित्वसामान्याभावस्य वह्न्यादावभावात्। वृत्तिता च हेतुताघटकसम्बन्धावच्छिन्ना ग्राह्या[४७]। तेन वह्न्यभाववति स्वावयवे धूमस्य सत्त्वेऽपि वह्निमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः। संयोगेन स्वावयवे स्वस्याभावात्। साध्याभावश्च येन रूपेण येन सम्बन्धेन साध्यता तद्रूपावच्छिन्नतत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः[४८]। तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ तत्तद्वह्निव्यक्तित्वावच्छिन्नाभावस्य वह्निघटोभयत्वावच्छिन्नाभावस्य समवायेन वह्न्यभावस्य च धूमवति पर्वतादौ सत्त्वेऽपि न क्षतिः। निरुक्ताभावद्वयप्रतियोगितायां वह्नित्वावच्छिन्नत्वस्य, समवायेन वह्न्यभावप्रतियोगितायां च संयोगावच्छिन्नत्वस्य च विरहेण तेषां लक्षणाघकत्वात्। अत्र साध्यपदानुपादानेऽभाववति पर्वतादौ धूमादेस्सत्वेनासम्भवप्रसङ्गात्। अभावपदानुपादाने वह्न्यभाववान् वह्न्यभावाभावत्वादित्यादौ साध्यानिष्ठप्रतियोगितानिरूपकव वह्न्यभावाभावत्वाख्यानुयोगित्वाधिकरण–वह्न्यभावाभावे हेतोस्सत्त्वेनाव्याप्त्यापत्तेः। तदुपादाने च निरुक्तानुयोगित्वे साध्याभावत्वविरहेणाव्याप्तिविरहात्। ननु विशिष्टसत्ताभाववान् गुणत्वादित्यादौ साध्याभावस्य विशिष्टसत्त्वस्य सत्तानतिरिक्ततया तदधिकरणगुणवृत्तित्वस्य गुणत्वहेतौ सत्त्वेनाव्याप्तेः। न च निरुक्तसाध्याभावस्य द्रव्यत्वाधिकरण-तास्वरूपत्वस्वीकारात्, स्वीकाराद्वा अभावत्वप्रतीतेः प्रमात्वानुरोधेन तस्यातिरिक्तत्वस्य। तथा च न तत्राव्याप्तिरिति वाच्यमाकाशाभावस्य कालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववानात्मत्वादित्यादावाका शाभावभिन्नमात्मत्वादित्यादौ वा साध्याभावस्याकाशाभावात्मकस्याधिकरण आत्मनि हेतोर्वृत्तेरव्याप्तिरिति चेन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-काभावत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य विवक्षिततत्वात्। विशिष्टसत्ताभावा-

भावत्वावच्छिन्नाद्यधिकरणे द्रव्यादौ हेतोरसत्त्वेनाव्याप्तिविरहात्। न च द्रव्यत्ववान् महाकालत्वादित्यादौ कालिकेन साध्याभाववति महाकाले हेतोस्सत्त्वेनाव्याप्तिः।[४९] एवं विषयित्वव्यभिचारित्वादिसम्बन्धेन सत्ताभाववति ज्ञाने रूपादौ गुणत्वस्य सत्त्वेन सत्तावान् गुणत्वादित्यादौ चाव्याप्तेरिति वाच्यम्, भावीयविशेषणता विशेषसम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य विवक्षिततत्वात्। यदि च घटत्वाभाववान् गुणत्वात् घटभिन्नं वा गुणत्वादित्यादौ घटत्वात्मकसाध्या भावस्याधिकरणाप्रसिद्ध्याऽव्याप्तिरित्युच्यते, तदैतन्मतेऽभावाभावस्याति-रिक्तत्वाभ्युपगमात्। अन्यथाभावत्वेनाभावत्वेन विभजनासङ्गतेः। अथवा[५०] साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यप्रकारताशालिबुद्धित्वावच्छिन्न प्रतिबध्यतानिरूपित प्रतिबन्धकतावच्छेदकसाध्याभावप्रकारत्वावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य विवक्षिततत्वात्। निरुक्तस्थले तथाविधसमवायसम्बन्धेन घटत्वात्मकसाध्याभावस्य घट एव सत्त्वेनाव्याप्तिविरहादिति। एतेन कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्वादित्यादौ मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभाववति वृक्षे हेतोस्सत्त्वेनाव्याप्तिरिति निरस्तम्। निरुक्तविरोधिताघटकनिरवच्छिन्नस्वरूपेण साध्याभाववति गुणादौ हेतोरसत्त्वेनाव्याप्तिविरहात्। न च कपिसंयोगाभाववान् गुणत्वादित्यादौ तथाविधनिरवच्छिन्नसमवायेन साध्याभाववतोऽप्रसिद्धेरव्याप्तिरिति वाच्यम्। तस्य केवलान्वयिसाध्यकसद्धेतावन्तर्भावात्। न च केवलान्वयिसाध्यके का गतिरिति वाच्यम्, एतन्मते केवलान्वयिसाध्यकानुमितेरनङ्गीकारादङ्गीकाराच्च गुरुधर्म्मस्य वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्य च प्रतियोगितावच्छेदकतायाः। तेन प्रमेयवह्निमान् धूमात्, घ्राणग्राह्यगुणवानरविन्दत्वादित्यादौ, धनी चैत्रत्वादित्यादौ, नाव्याप्तिरिति। केवलान्वयिसाध्यकानुमितिस्वीकारे तु व्याप्तिभ्रमादेव तत्सम्भवात्। न चाभ्रान्तस्य कथमनुमितिरिति वाच्यम् अभ्रान्तस्य परमेश्वरस्य पदार्थमात्रस्या परोक्षस्यैव सत्त्वेन तदनभ्युपगमात्। न च केवलान्वयिनो व्याप्यत्व व्यवहारानुपपत्तिरिति वाच्यम्, केवलान्वयिहेतोर्व्यापकत्वात्। न्यूनवृत्तिधर्म्मस्यैव व्याप्यत्वानुभवात्। तत्र व्याप्यत्वव्यवहारानभ्युपगमात्। न च व्यभिचारिलिङ्गकानुमितिरपि स्यादिति वाच्यं व्यभिचारज्ञानाभाव-दशायामनुमितेस्तत्रापि स्वीकारादिति प्राचीनमतनिगर्वः। अत्रेदं चिन्त्यते, घटत्वस्य वाच्यत्वापेक्षया न्यूनवृत्तितया तत्र वाच्यत्वव्याप्यत्वव्यवहारस्य सर्वजनीनस्यानुपपत्तेः। वाच्यत्वत्वावच्छिन्नाभावस्याप्रसिद्धत्वात्। यदि च साध्यता

वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववद्वृत्तित्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकसाध्यतावच्छेदकाभाववत्त्वस्य साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न व्याप्यत्वव्यवहारनियामकत्वमित्युच्यते, तदा न कोऽपि दोषः पदमादधातीत्यभिनवः पन्थाः।

अथ द्रव्यं गुणकर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्वादित्यादौ द्रव्यत्वाभाववति गुणे सत्त्वस्य सत्त्वेन विशिष्टसत्त्वे तदभावस्यासत्वात्। विशेष्यवृत्तिप्रतियोगिकाभावस्य विशिष्टानुयोगिकत्वानभ्युपगमादव्याप्तिरिति चेन्न। साध्याभाववदवृत्ति स्वावच्छिन्नाधिकरणताकहेतुतावच्छेदकवत्त्वस्य व्याप्तिपदार्थत्वात्। तथाच साध्याभाववति गुणादौ विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्यासत्वान्नाव्याप्तिरिति। एतेन सत्तावान् जातेरित्यादौ सत्ताभाववति सामान्यादौ समवायेन वृत्तेरप्रसिद्धत्वेऽपि न क्षतिः। साध्याभाववति वृत्तित्वस्य स्वरूपसम्बन्धेन विवक्षितत्वात्। सत्ताभाववति सामान्यादौ स्वरूपेण जात्यधिकरणत्वस्यावृत्तित्वेनाव्याप्त्यसम्भवादिति दिक्।

साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्याभाववदवृत्तित्वं वा व्याप्तिः। कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्वादित्यादिसंग्रहाय साध्यवद्भिन्नवृत्तीति। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकविशिष्ट साध्यवत्त्वावच्छिन्नभेदवद्वृत्तित्वमर्थः। तेन समवायेन वह्निमद्वह्न्यवयवभिन्नत्वस्य महानसीयवह्निमद्भिन्नत्वस्य पर्वतादौ सत्त्वेऽपि नाव्याप्तिरिति। साध्यवद्भिन्नवृत्तिसत्ता द्रव्यत्वाधिकरणे पर्वतादौ धूमस्य सत्त्वेनासम्भवापत्तेरतः साध्याभावेति। न च कपिसंयोगवद्भिन्नगुणादिवृत्ति कपिसंयोगाभाववति वृक्षे हेतोस्सत्त्वेनाव्याप्तितादवस्थ्यमिति वाच्यम्। अधिकरणभे देनाभावानां भिन्नत्वात्। गुणवृत्तिकपिसंयोगाभावस्य वृक्षादावभावात्। नचैवं साध्यपदस्यानर्थक्यप्रसङ्गः, वह्निमद्भिन्नह्रदादिवृत्तिघटाभावस्य ह्रदादावेव सत्त्वेनासंभवानवकाशादिति वाच्यम्, साध्यीयत्वनैवाभावस्य प्रवेशो, नत्वभावत्वेनापीति।

यद्वा स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावप्रवेशार्थकमेव साध्यपदमन्यथा समवायेन वह्न्यभाववति पर्वते धूमस्य वृत्तित्वादव्याप्त्यापत्तेरिति। यदि च लाघवेनाधिकरणभेदेनाभावभेदानभ्युपगमात् कपिसंयोग्येतत्वादित्यादावव्याप्तिरित्युच्यते तदा भेदस्य व्याप्यवृत्तितया साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावा-

सामानाधिकरण्यस्य व्याप्तित्वात्। कपिसंयोगवद्भेदस्य वृक्षे बाधान्नाव्याप्तिरिति। न च वह्निमान्धूमादित्यादौ, गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादौ च, साध्यवत्पर्वतान्योन्याभावस्य महानसे, गन्धवत्सरोजान्योन्याभावस्य घटे सत्त्वेनाव्याप्तिरिति वाच्यम्। साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावस्य निष्कृष्टलक्षणार्थत्वात्। साध्यवत्त्वञ्चात्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यमतो नोक्ताव्याप्त्यवकाश इति।

अथवा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभाववत्सकलनिष्ठाभावप्रतियोगित्वं व्याप्तिः। साध्याभाववति साकल्यानुपादाने धूमाभावद्ह्रदनिष्ठाभावप्रतियोगित्वस्य वह्नौ सत्वेन व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिरतस्तदुपादानम्। तस्य व्यापकत्वमर्थस्तथाच धूमाभाववत्ययोगोलके बह्न्यभावस्यासत्त्वेन साध्याभावव्यापकत्वविरहान्नाति-व्याप्त्यवकाशः। समवायेन बह्न्यभावं तत्तद्वह्नि व्यक्तित्वावच्छिन्नाभावञ्चादायाव्याप्तिवारणाय साध्यतावच्छेदकसम्बन्धधर्म्मयोरवच्छिन्नत्वस्य प्रतियोगितायां निवेशः। न च कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्यवृत्तिसाध्यकव्याप्यवृत्तिहेतावव्याप्तिः, कपिसंयोगाभाववति वृक्षे एतद्वृक्षत्वाभावस्यासत्वादेवमव्याप्यवृत्तिहेतुकव्यभिचा''रिण्ये तद्वृक्षत्वाभाववति वृक्षान्तरे मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभावस्य सत्त्वादतिव्याप्तिरिति चेन्न। साध्याभावे हेत्वभावे च प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात्। साध्याभावे प्रतियोगिवैयधिकरण्यञ्च साध्यतावदच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवैयधिकरण्यरूपं बोध्यम्। तेन सम्बन्धसामान्येन धूमवद्भिन्ने प्रलये वह्न्यभावस्य, विशिष्टसत्ताभावप्रतियोगिसत्तानधिकरणे जात्यादौ जातिसामान्याभावस्य सत्त्वेऽपि धूमवान् वह्नेर्विशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ नातिव्याप्तिः। संयोगेन धूमवद्भिन्नत्वस्यायोगोलके, विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणभिन्नत्वस्य गुणादौ, सत्त्वेन तत्र हेत्वभावस्याविद्यमानत्वात्। हेत्वभावप्रतियोगिवैयधिकरण्यञ्च प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवैयधिकरण्यम्। तेनायमात्मा ज्ञानादित्यादौ, द्रव्यं विशिष्टसत्वादित्यादौ, विषयतासम्बन्धेन ज्ञानस्य सर्वत्र सत्त्वेन तदनधिकरणत्वाप्रसिद्धावपि, द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ विशिष्टसत्ताभावप्रतियोगिताश्रयसत्ताधिकरणभिन्नत्वस्यासत्वेऽपि च, नाव्याप्त्यवकाशः। समवायेन ज्ञानाधिकरणभिन्नत्वस्य घटादौ साध्याभाववति

सत्वात्। एवं विशिष्टसत्तात्वाच्छिन्नानधिकरणत्वस्य साध्याभाववति गुणादौ सत्त्वात्। हेत्वभावप्रतियोगित्वञ्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकधर्म्मेणावच्छिन्नं ग्राह्यम्। तेनात्मभिन्नं द्रव्यत्वादित्यादावात्मनि कालिकेन द्रव्यत्वाभावस्य, द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ द्रव्यत्वाभाववत्सकलनिष्ठ विशिष्टसत्ताभावप्रतियोगित्वस्य सत्त्वहेतौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः। समवायेन द्रव्यत्वाभावप्रतियोगितावच्छेदकसमवायेन द्रव्यत्वानधिकरणत्वस्यात्मन्यसत्वात्। विशिष्टसत्ताभावप्रतियोगिताया हेतुतावच्छेदकसत्तावत्वमात्रानवच्छिन्नत्वात्। यदि च लाघवात् हेत्वभावे प्रतियोगिवैयधिकरण्यं हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणभिन्नवृत्तित्वं विवक्षणीयं, प्रतियोगितायां हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं न देयमित्युच्यते, तदा धूमनिष्ठस्य वह्न्यभाववत्सकलनिष्ठधूमत्वावच्छिन्नानधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगित्वस्य रासभादिसाधारणत्वात्। धूमो वह्निव्याप्य इतिवत् रासभो बह्निव्याप्य इति व्यवहारापत्तिः स्यात्। प्रतियोगितायां हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नत्वनिवेशे च धूमत्वावच्छिन्नप्रतियोगितावत्त्वस्य रासभादावभावेनापत्तिविरहादिति। अत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभावत्वावच्छिन्नाधिकरणनिरूपितवृत्तितावदभाव प्रतियोगितानवच्छेदकं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदक-सम्बन्धावच्छिन्नयद्धर्म्मवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नाधिकरणतात्वं तद्धर्म्मवत्त्वमिति निष्कर्षः। तेन गगनावृत्तिधर्म्मवान् गगनान्यत्वादित्यादौ साध्याभाववत्सकलाप्रसिद्धावपि न क्षतिः। न वाऽधिकरणभेदेऽप्यभावस्याभिन्नतया कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्त्वादित्यादावव्याप्तिः। कपिसंयोगानधिकरणवृत्तित्व-विशिष्टकपिसंयोगा भावत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य वृक्षादावसत्त्वादिति दिक्।

साध्यवदन्यावृत्तित्वं वा व्याप्तिः, साध्यपदस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकोऽर्थः। तथाच साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकविशिष्ट साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवन्निरूपितवृत्तित्वसामान्याभाववत्त्वं पर्य्यवसितोऽर्थः। तेन समवायेन वह्निमद्भिन्नत्वस्य महानसीयवह्निमद्भेदादेश्च पर्वतादौ सत्त्वेऽपि वह्निमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः। न वा धूमवद्ध्रदवदादिवृत्तित्वाभावादिकमादाय धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिः।

गुरुधर्म्मस्यावच्छेदकत्वस्वीकारात्। द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ द्रव्यत्वापेक्षया द्रव्यत्वत्वविशिष्टद्रव्यत्ववत्त्वस्य गुरुतयाऽनवच्छेदकत्वादव्याप्तिशङ्काया अनवकाश इति। निरुक्तसाध्यवद्भेदवत्त्वञ्च स्वरूपसम्बन्धेन बोध्यम्। तेन न वह्नि मान् धूमात्, द्रव्यं महाकालत्वादित्यादौ वा कालिकसम्बन्धेन साध्यवद्भेदवति पर्वते महाकाले च हेतोः सत्त्वेनाव्याप्तिः। स्वरूपसम्बन्धेन वह्न्यादिमद्भेदस्य पर्वतादावसत्त्वात्। अथ यदि केवलान्वयिसाध्यकानुमितिरप्यानुभाविकी, केवलान्वयिहेतौ च व्याप्यत्वव्यवहारो, घटत्वादौ वाच्यत्वादिव्याप्यत्व-व्यवहारोऽप्यनुभवसिद्धः। तदा उच्यते प्रतियोग्यसमानाधिकरणयद्रूपविशिष्ट-समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्म्मस्तद्धर्म्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं तद्रूपविशिष्टनिष्ठं, तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यवति तद्रूपं वा, तद्रूपावच्छिन्नस्य तद्धर्म्मावच्छिन्ननिरूपितव्याप्तिः। तद्रूपाव च्छिन्नलिङ्गकतद्धर्म्मावच्छिन्न विधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपित-विषयित्वसम्बन्धावच्छिन्नजनकतावच्छेदकम्, अवच्छेदकान्तं लक्ष्यम्, सामानाधिकरण्यान्तं तद्रूपान्तं वा लक्षणम्। लक्षणे तद्रूपविशिष्टनिष्ठत्वस्यानिवेशे धूमगतवह्निव्याप्यत्वस्य रासभादावतिप्रसङ्गः स्यात्। धूमसमानाधिकरणा-त्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य रासभादा वक्षतत्वात्। एवं तादृशरासभवान् पर्वत इति ज्ञानाद्वह्न्यनुमितिप्रसङ्गश्च स्यात्। तन्निवेशे च धूमनिष्ठनिरुक्तसामानाधिकरण्यस्य रासभादावभावान्नापत्त्यवकाश इति। अत्र प्रथमकल्पे प्रथमतो महानसान्तर्भावेण गृहीतवह्निसामानाधिकरण्यस्य पुरुषस्य पर्वतेऽविच्छिन्नधूमरेखादर्शनानन्तरजातानुमित्यनुपपत्तिः। तत्र परामर्शस्यासम्भवात्। तथाहि स्मृतसामानाधिकरण्यस्य पर्वतीयधूमावृत्तित्त्वात्, पर्वतीयधूमनिष्ठवह्निसामानाधिकरण्यस्य पूर्वाननुभूतस्य स्मरणासम्भवात्। द्वितीयकल्पे च नायं दोषः। धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वस्य व्याप्तितया तस्य पर्वतीयधूमे सत्त्वेन परामर्शसम्भवात्। परामर्शश्च धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणवृत्तिमद्धूमवान् पर्वत इत्याकारकः, तस्य प्रमात्वात्। सामान्यलक्षणास्वीकारपक्षे पूर्वकल्पेऽपि नोक्तानुपपत्तिः। तथाहि धूमत्वेन निखिलधूमस्य वह्न्यधिकरणवृत्तितात्वेन निखिलधूमनिष्ठाखिल-वह्न्यधिकरणवृत्तित्वस्य ज्ञानस्य प्रथमतोऽपि सम्भवेन पर्वतीयधूमनिष्ठवह्निसामानाधिकरण्यस्यापि स्मरणसंभवान्न

परामर्शानुमित्यनुपपत्तिरिति। परन्तु विशिष्टसत्त्वनिष्ठविशिष्टसत्त्वव्यापकद्रव्यत्व सामानाधिकरण्याश्रयवान् गुण इति परामर्शाद्गुणो द्रव्यमित्यनुमितिः प्रमा स्यात्। प्रमापरामर्शजन्यत्वादिति दोषः प्रथमकल्पे बोध्य इति। लक्ष्ये तद्रूपावच्छिन्नलिङ्गकेत्यत्र तदाश्रयलिङ्गताकेत्युक्तौ द्रव्यत्वादिरूपेण धूमे वह्निव्याप्यत्वप्रसङ्गः स्यात्। तद्धर्म्मावच्छिन्नविधेयतेत्यनुक्तौ धूमसामान्ये तद्वह्निव्याप्यत्वप्रसङ्गः। अत उभयत्रावच्छिन्नत्वोपादानम्।

केचित्तु इतरभेदानुमितौ भागासिद्धिवारणाय तद्धर्म्मावच्छिन्नलिङ्गकत्वतद्धर्म्मावच्छिन्नविधेयकत्वयोरुपादानमिति प्राहुः। लक्षणे यद्रूपविशिष्टेत्यनुक्ताविदं द्रव्यं गुणकर्म्मान्यत्वे सति सत्त्वादित्यादौ सत्ताद्यधिकरणगुणादिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य साध्ये द्रव्यत्वे सत्त्वादव्याप्तिः। तदुक्तौ तु गुणकर्म्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य गुणादावभावान्नाव्याप्तिरिति। कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्त्वादिति संग्रहायासमानाधिकरणान्तम्। प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्याभावस्तदर्थ स्तेनविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ विशिष्टसत्ताभावे स्वप्रतियोगिताश्रयसत्तासामानाधिकरण्यस्य सत्त्वेऽपि न क्षतिः। विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्याभावस्याक्षतत्वात्। न च कपिसंयोगी सत्त्वादित्यादौ कपिसंयोगाभावस्य कपिसंयोगसमानाधिकरणतया लक्षणाघटकत्वात् घटाद्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वस्य कपिसंयोगत्वे सत्त्वेनातिव्याप्तिरिति वाच्यम्। प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं तदर्थः, तस्य हेत्वधिकरणेऽन्वयः। प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगिता ऽनवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमिति निष्कर्षः। अथ साध्यतावच्छेदके निरुक्तप्रतियोगितानवच्छेदकत्वमनिवेश्य साध्ये तादृशाभावप्रतियोगित्वस्यैव लाघवान्निवेशोऽस्त्विति चेन्न, वह्निमान्धूमादित्यादौ महानसीयवह्न्यादिनिष्ठतद्व्यक्तित्वावच्छिन्नाभावस्य धूमसमानाधिकरणस्य प्रतियोगितायाः सकलवह्नौ सत्त्वेनाव्याप्त्यापत्तेः। न च धूमसमानाधिकरणस्य पर्वते महानसीयो वह्निर्नास्तीति प्रतीतिसिद्धाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकमेव वह्नित्व मित्यव्याप्तितादवस्थ्यमिति वाच्यम्। केवलवह्नित्वे महानसीय वह्न्यभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमात्। अन्यथा धूमवति वह्निर्नास्तीति

प्रत्ययप्रसङ्गादिति। तादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकं वह्नित्वमहानसीयत्वोभयमेव। उभयभेदस्य वह्नित्वे सत्त्वान्नाव्याप्तिरिति।

साध्यतावच्छेदकतदितरोभयावच्छेद्यभिन्नत्वस्य प्रतियोगितायां विवक्षितत्वान्नाव्याप्तिरिति **केचित्**। वस्तुतस्तु प्रतियोगिव्यधिकरण हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगित्वं यद्धर्म्ममात्रानवच्छिन्नं तद्धर्म्मावच्छिन्नसामाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात्। महानसीयवह्न्यभावप्रतियोगिताया वह्नित्वमात्रानवच्छिन्नत्वाल्लक्षणसमन्वयः। न च समवायेन वह्न्यभावप्रतियोगित्वस्य वह्नित्वमात्रावच्छिन्नत्वादव्याप्तिरिति वाच्यम्। सम्बन्धविशेषेण प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्याविवक्षितत्वात्। समवायेन वह्न्यभावस्य लक्षणघटकत्वविरहेणाव्याप्तिविरहात्। ननु रूपवान् घटमहाकालान्यतरत्वादित्यादौ कालिकसम्बंधेन रूपादेर्व्यभिचारनिरूपकाधिकरणे महाकालेऽपि सत्त्वेन रूपाद्यभावस्य लक्षणाघटकत्वात्। तद्घटासमानकालीन व्यक्त्यभावप्रतियोगितायां च रूपत्वानवच्छेद्यत्वादतिव्याप्तिरतः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यावश्यं विवक्षणीयतयोक्ताव्याप्तेस्तादवस्थ्यमिति चेन्न प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणाभावप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात्।

यद्वा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात्। समवायेन वह्न्यभावस्य लक्षणाघटकत्वेनाव्याप्तिविरहात्। हेत्वधिकरणत्वमपि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यम्। तेन धूमवति धूमावयवे संयोगेन वह्न्यभावस्य सत्त्वेऽपि नाव्याप्तिरिति। अथ वह्निसमानाधिकरणघटाद्यभावप्रतियोगितायाः धूमत्वाद्यनवच्छेद्यत्वाद् व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिरिति चेन्न। तथाविधप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मानवच्छिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात्। निरुक्तप्रतियोगित्वसामान्यान्तर्गतायां धूमाद्यभावप्रतियोगितायां धूमत्वाद्यनवच्छेद्यत्वविरहेणातिव्याप्तिविरहात्। न च महानसीयवह्निवृत्तित्व-विशिष्टजातिमान्नास्तीत्यभावप्रतियोगितायां तथाविधायां वह्नित्वजात्यवच्छिन्नत्वा-दव्याप्तिरिति वाच्यं द्रव्यत्वाद्यवच्छिन्नत्वस्यापि तत्र सत्त्वेन वह्नित्वमात्रानवच्छिन्नत्वस्य तत्राक्षतत्वादिति। न च तथापि वह्नित्वप्रतियोगिकसमवायेन महानसीयवह्निवृत्तित्वविशिष्टजात्यवच्छिन्नाभाव प्रतियोगितायां वह्नित्वावच्छिन्नत्वस्य सत्त्वादव्याप्तितादवस्थमिति वाच्यम् विशेषरूपेण संसर्गत्वस्यानभ्युपगमादभ्युपगमे वा निरवच्छिन्न

साध्यतावच्छेदकतास्थलीयलक्षणघटकप्रतियोगितायां निरवच्छिन्नावच्छेदकता-निरूपितत्वस्य विवक्षितत्वादव्याप्तिविरहात्। न च विशिष्टसाध्यतावच्छेदक-स्थलीयलक्षणे दण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यादौ निखिलदण्डव्यक्तीनां चालनीन्यायेन तथाविधप्रतियोगितावच्छेदकतया तथाविधप्रतियोगितायां दण्डानवच्छेद्यत्वविरहादव्याप्तिरिति वाच्यं साध्यतावच्छेदकता-वच्छेदकतादितरोभयावच्छेद्यावच्छेदकतानिरूपिताभिन्नत्वस्य साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकेतरावच्छेद्यावच्छेदकतानिरूपितभिन्नत्वस्य[५२] वा प्रतियोगिव्यधिकरणहेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितायां विवक्षितत्वादव्याप्त्यभावादिति।

वस्तुतस्तु विशिष्टसाध्यतावच्छेदकस्थले प्रतियोगिव्यधिकरण-हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितासामान्यं यद्धर्म्ममात्रावच्छिन्नावच्छेदकत्वा-निरूपितं तद्धर्म्मविशिष्टावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य व्याप्तेर्विवक्षितत्वात्। तत्तद्दण्डवदभावप्रतियोगितायां दण्डत्वमात्रावच्छेद्यावच्छेदकत्वानिरूपितत्वस्य सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयसम्भवात्। एतेन प्रमेयवह्नान् धूमात् रूपत्वन्यूनवृत्ति-जातिमद्वान् रूपात् पृथिवीत्वाद्वेत्यादौ प्रत्येकनीलत्वावच्छिन्नाभावप्रतियोगितायां नीलत्वावच्छिन्नत्वसत्त्वेऽपि नाव्याप्त्यवकाशः। तथाविधप्रतियोगितायां तथाविधजातित्वावच्छिन्नावच्छेदकत्वानिरूपितत्वस्याक्षतत्वात्। ननु रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ विषयित्वसंबन्धावच्छिन्नरूपत्वनिष्ठावच्छेद-कताकरूपत्ववज्ज्ञानाभावस्य प्रतियोगितायां रूपत्वावच्छेद्यत्वादव्याप्तिरिति चेन्न साध्यतावच्छेदकताघटकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेद-कनिष्ठावच्छेकत्वानिरूपितत्वस्य विवक्षितत्वात्। निरुक्ताभावप्रतियोगितायां समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितत्व-स्यासत्वाल्लक्षणासमन्वयसंभवात्। अथ प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्य सामान्यतः प्रतियोगितावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नाधिकरणभिन्नार्थकत्वेऽसम्भवः, प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य सर्वत्र सत्वात्, स्वप्रतियोगितावच्छेदका-वच्छिन्नाधिकरणभिन्नार्थकत्वे स्वत्वस्याननुगतत्वे नैकोपादानेऽन्यासंग्रहेण व्यभिचारिण्यतिव्याप्त्यापत्तेः। उपादानप्रतियोगिसाध्यकसद्धेतावव्याप्तेश्च।[५३] स्वत्वस्यानुगतत्वे त्वसम्भवस्तदवस्थ एव सर्वेषां स्वपदार्थत्वादिति चेन्न। हेत्वधिकरणवृत्तिभेदीयप्रतियोगितानिरूपिताधिकरणत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपित-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ननिरूपकतानिष्ठावच्छेदकता

निरूपितावच्छेदकतानिष्ठावच्छेदकतानिरूपितधर्म्मनिष्ठावच्छेदक तानिरूपितावच्छेदकत्वानिष्ठावच्छेदकतानिरूपितप्रतियोगित्व-निष्ठावच्छेदकतानिरूपितनिरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतावदभाव-प्रतियोगितासामान्ये तस्य विवक्षितत्वात्। भेदश्च घटाद्यभावात्मकतद्व्यक्तिनिरूपित प्रतियोगितानिरूपितावच्छेदकतावद्धर्म्मावच्छिन्ननिरूपकताका धिकरणतावान्नेत्याकारकप्रतीतिसाक्षिको बोध्यः। तथाच नाप्रसिद्ध्यवकाशः। ननु गुणाभाववान् संयोगाभाववान् वा द्रव्यत्वादित्यादौ गुणाभावाभावस्य कपि-संयोगात्मकत्वेन कपिसंयोगाभावाभावाभिन्नतया तन्निरूपित प्रतियोगितावच्छेदक कपिसंयोगाभावत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य हेत्वधिकरणे सत्त्वेन तस्य लक्षणाघट कत्वादभावान्तरमादायातिव्याप्तिः। यदि च घटाभावादीनामपि पूर्वक्षणादिवृत्तित्वविशिष्ट, स्वाभावाभावात्मकत्वेन तुल्ययुक्त्या लक्षणाघटकत्वादभावाप्रसिद्ध्याऽतिव्याप्तिवारणसम्भवादित्युच्यते, तदा स्वरूपसम्बन्धेन साध्यताकसद्धेतावसम्भवस्तुल्ययुक्त्या। यदि तद्व्यक्तिनिरूपितप्रतियोगितावच्छेदकयत्किञ्चिद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणन्नेति प्रतीतिसिद्धभेदो विवक्ष्यते तदा कपिसंयोगाभाववानात्मत्वादित्यादौ कपिसंयोगात्मकगुणाभावाभावप्रतियोगितावच्छेदकीभूतगुणा-भावत्वावच्छिन्नानधिकरणत्वस्यात्मनि सत्वेन साध्याभावस्यलक्षण-घटकत्वादव्याप्तिरिति चेन्मैवम्, यत्प्रतियोगितावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेतुमतस्तत् प्रतियोगितासामान्यस्य निष्कृष्टार्थत्वात्। तथाच हेत्वधिकरणवृत्तिभेदीय-प्रतियोगितानिरूपिताधिकरणतानिष्ठावच्छेदकतायाः[५४]। परम्परया निरूपितावच्छेदकतावत्प्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्ममात्रावच्छिन्नत्वा-भावस्तद्धर्म्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्यमिति पर्य्यवसितम्। घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता निरूपितावच्छेदकतावद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणभेदस्य धूमादिमति सत्त्वान्नासम्भवः। न वा गुणाभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तिनिरूपितावच्छेदक तावद्धर्म्मावच्छिन्नाधिकरणभेदस्य द्रव्यत्वादिमति सत्त्वेनातिव्याप्त्यवकाश इति। ननु कालो घटवान् महाकालत्वादित्यादौ कालिकसम्बन्धेन वस्तुमात्रस्य महाकाले सत्त्वेन हेत्वधिकरणवृत्तिनिरुक्तभेदस्याप्रसिद्ध्याऽव्याप्तिरिति वाच्यं स्वावच्छेदकसम्बन्धेन यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेतुमतस्तत्प्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मावच्छिन्नत्वयत्संबन्धावच्छिन्नत्व-

योर्द्वयोर्व्यतिरेकस्तेन सम्बन्धेन तद्धर्म्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात्। समवायेन घटाभावप्रतियोगितायास्तथाविधतया तत्र कालिकसम्बन्धावच्छिन्नत्व स्याभावेन निरुक्तोभयाभावस्य सत्वाल्लक्षणसमन्वयसम्भवात्। तेन सम्बन्धेनेत्यनुक्तौ संयोगेन रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादावतिव्याप्तिः। संयोगेन रूपाभावप्रतियोगिताया लक्षणाघटकत्त्वेन निरुक्तप्रतियोगितासामान्ये रूप त्वावच्छेद्यत्वघटितोभयाभावसत्वात्। तदुक्तौ तु संयोगेन रूपाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या नातिव्याप्तिः। न च तत्रैव रूपे पृथिवीत्वव्यापकत्वस्यापत्तिरिति वाच्यं यद्धर्मे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ननिरूपकतावच्छेदकत्वस्य प्रवेशात्, रूपस्य संयोगेनावृत्तित्वात् व्यापकत्वलक्षणस्य तत्रासत्त्वात्। वृत्त्यनियामक-सम्बन्धस्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्वीकाराच्च। तत्संसर्गकव्यभि चारिण्यतिव्याप्तेरनवकाशो, न वा तत्सम्बन्धेन धनादिसाध्य कसद्धेतावव्याप्त्यवकाशः। तदनभ्युपगमे तु स्वावच्छेदकताघटकसम्बन्धेन यादृशप्रतियोगितावच्छेदकानधिकरणं हेत्वधिकरणं तादृशप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मावच्छिन्नावच्छेदकताकत्व यत्सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वयोर्द्वयो र्व्यतिरेकस्तत्सम्बन्धेन तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात्। अवच्छेदकतायां वृत्त्यनियाकसंबन्धावच्छिन्नत्वस्य सर्ववादिसिद्धतयोक्त-दोषानवकाशात्। अन्यथा चैत्रो न पचतीत्यस्याप्रामाण्यापत्तेः। तत्र पाकनिष्ठावच्छेदकतायामनुकूलत्वसंबन्धावच्छिन्नत्वस्यासत्वात्। केवलान्वयिसाध्यके च समवायेन प्रमेयो नास्तीत्यादिप्रतीतिसिद्धाभावप्रतियोगितायां प्रमेयत्वावच्छिन्नत्वस्यापि प्रसिद्धिसंभवान्नोभयाप्रसिद्ध्याऽव्याप्त्यवकाशः।

अथ प्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिस्वरूपतया प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपतया वा समवायेन वह्न्यभावप्रतियोगित्वस्य संयोगेन वह्न्यभावप्रतियोगित्वाभिन्नतया तदवच्छेदकसंयोगेन वह्नित्वाच्छिन्नाधिकरणत्वस्य पर्वतादौ सत्वेन समवायेन वह्न्यभावप्रतियोगित्वस्य लक्षणाघटकत्वात्। समवायेन बह्निमान् धूमादित्यादा वतिव्याप्तिः। स्वावच्छेदकयत्किञ्चित्सम्बन्धेनेत्युक्तौ संयोगेन वह्न्यभावप्रतियोगित्वस्यापि लक्षणघटकतया संयोगेन बह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिरिति चेन्न प्रतियोगिता न प्रतियोगिस्वरूपा, गुणे गुणस्य सामान्यादौ सामान्यादेश्चासत्त्वेन गुणादिर्न्न गुणाभावप्रतियोगितावानिति प्रत्ययप्रसङ्गात्। गुणे गुणाभावप्रतियोगित्वव्यवहारो न स्यात्। गगनस्यावृत्तितया

तदात्मकप्रतियोगित्वास्यापि तथात्वात्। गगनं गगनाभावप्रतियोगितावदिति प्रतीतेरप्रमात्वापत्तेः। न च प्रतियोगितात्वेन प्रतियोगित्वस्य तत्र सत्त्वादिति वाच्यम्। अवृत्त्यात्मके वृत्तित्वस्य कथमप्यसंभवात्। नहि शिल्पिशतैरपि नीलं रूपं पीतं, पिपीलिका चाश्वो भवति। नाप्यवच्छेदकस्वरूपा सा, शब्दावच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वं, जात्यवच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वं चैकमिति व्यवहारानुपपत्तेः। शब्दस्य जातेश्चानेकत्वात्। घटपटोभयाभावप्रतियोगित्वस्य घटत्वपटत्वोभयात्मकतया घटत्वपटत्वोभयत्वैतत्त्रितयात्मकतया वा, तेषामेकत्रासत्त्वेन तादृशप्रतियोगित्वं घटपटोभयवृत्तीति व्यवहारानुपपत्तेश्च। एवं महानसीयवह्न्यभावप्रतियोगिता एकाऽनेका वा। एका चेत् महानसीयत्ववह्नित्वोभयात्मकत्वानुपपत्तिरे-कव्यक्तेरुभयात्मकत्वस्यानुभवेनाविषयीकरणात्। नाना चेत् वह्नित्वात्मिकैका, महानसीयत्वात्मिकाऽपरा। तथा च वह्नित्त्वस्य पर्वतीयवह्न्यदौ महानसीयत्वस्य घटादौ सत्वेन पर्वतीयवह्निर्घटादिश्च महानसीयवह्न्यभावप्रतियोगितावानित्यपि प्रत्ययः प्रमा स्यात्। न च महानसीयवह्न्यभावप्रतियोगितात्वेन तादृशप्रतियोगित्वस्य तत्रानभ्युपगमादिति वाच्यम्। हन्त भोः वह्नित्वात्मकप्रतियोगित्वे प्रतियोगितात्वं न वर्त्तते। अभावनिरूपितत्वं वा तत्र न वर्त्तत, इति किंप्रयुक्तं वह्नित्वात्मिका प्रतियोगिता तत्र नास्तीत्युच्यते। किञ्च प्रतियोगितात्वं वह्नित्वत्वमहान-सीयत्वत्वाद्यभिन्नमतिरिक्तं वा। अभिन्नञ्चेदुक्तदोषानुद्धारः। अतिरिक्तञ्चेत् प्रतियोगिताऽतिरिक्तैवेति सिद्धान्तः। तथा च नोक्तदोषाणामवकाशः। संबन्धत्वादिकमप्यतिरिक्तपदार्थस्तेन नान्योन्याश्रय इति ध्येयम्।

केचित्तु साध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्ना-धिकरणत्वीयस्वरूपसंबन्धेन यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणत्व सामान्याभाववत्त्वं हेतुमतस्तत्प्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्ममात्रावच्छिन्नत्वाभाव स्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वान्न कालो घटवान् महाका लत्वादित्यादावव्याप्तिः। कालिकसंबन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वीय-स्वरूपेण पटत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वाभावस्य महाकाले सत्त्वेन पटाभावप्रतियोगिताया लक्षणघटकत्वादित्याहुस्तच्चिन्त्यम्।

यत्तु महाकालान्यत्वविशिष्टघटाभावप्रतियोगिताया लक्षणघटकतया सहजत एव कालो घटवान् महाकालत्वादित्यादावव्याप्तिवारणसम्भवादिति, तत्तुच्छम्।

प्रतियोगिवैयधिकरण्यघटक प्रतियोगितावच्छेदकवैशिष्ट्यस्य संबन्धसामान्येनोक्तौ धूमाभावप्रतियोगितावच्छेदकधूमत्वस्य कालिकेनायोगोलकवह्न्यादौ सत्त्वेन धूमत्वावच्छिन्नस्याधिकरणत्वस्यायोगोलके सत्त्वात्। धूमाभावप्रतियोगिताया लक्षणाघटकत्वाद्धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय साध्यतावच्छेदकताघटकसंबन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकवैशिष्ट्यस्यावश्यं विवक्षणीयतया समवायेन महाकालान्यत्वविशिष्टस्याप्रसिद्धत्वात्। उभयप्रतियोगिकसमवायानभ्युपगमात्। स्वरूपसमवायाभ्यामेव तादृशवैशिष्ट्यसंभवात्। तथा च महाकालान्यत्वविशिष्टघटाभावस्य लक्षणाघटकत्वादिति। न च साध्यतावच्छेदकताघटकसंबन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकवैशिष्ट्याभिधाने वह्नित्वप्रतियोगिकसमवायेन वह्नित्वविशिष्टस्य साध्यतायां घटाद्यभावप्रतियोगित्वस्य लक्षणाघटकत्वादव्याप्तिरिति वाच्यं विशेषरूपेण संसर्गत्वानभ्युपगमात्। अभ्युपगमे वा साध्यतावच्छेदकताघटक-संसर्गभिन्नसंबन्धावच्छिन्नत्वसाध्यतावच्छेदकनिष्ठत्वोभयाभाववत्त्वस्य प्रतियोगितावच्छेदकनिष्ठावच्छेदकतायां विवक्षणीयतयाऽतिव्याप्त्य-व्याप्त्योरनवकाशात्। धूमत्वनिष्ठकालिकसंबन्धावच्छिन्नावच्छेदकतायां निरुक्तोभयवत्वस्यैव सत्वात्। घटत्वनिष्ठावच्छेदकतायां च वह्नित्वनिष्ठत्वाभावेन निरुक्तोभयाभाववत्त्वात्। तत्पर्वतीयवह्न्याद्यसमानकालीनपदार्था-वच्छिन्नाभावप्रतियोगितावच्छेदकताया वा निरुक्तोभयाभाववत्त्वाद्वह्निमान् धूमादित्यादौ लक्षणसमन्वयसम्भवात्। यदि च प्रतियोगितावच्छेदकताघटकसंबन्धेन लाघवात् प्रतियोगितावच्छेदकवैशिष्ट्याभिधानात्, समवायसंबन्धावच्छिन्न-धूमत्वनिष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगित्वस्य लक्षणघटकतयाऽतिव्याप्त्यसम्भवात्। समवायेन घटत्वनिष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगित्वस्य तथात्वेनाव्याप्तिवारणसम्भवात्। एवञ्च प्रयोजनान्तरविरहेणावच्छेदकतायां साध्यतावच्छेदकताघटक-संबन्धावच्छिन्नत्वस्यानिवेशान्महाकालान्यत्वविशिष्टघटाभावप्रतियोगित्वस्य लक्षणघटकत्वात्सहजत एव कालो घटवान् महाकालत्वादित्यत्र लक्षणसमन्वय इत्युच्यते। तदा महाकालनिरूपितविशेषणताविशेषेण घटादिसाध्यके घटवान् महाकालत्वादित्यादौ साध्यताघटकतादृशकालिकेन महाकालान्यत्व विशिष्टघटस्याधिकरणाप्रसिद्ध्याऽव्याप्तिप्रसङ्गात्। अन्ये तु यद्यत्संबन्धेन यद्धर्म्मावच्छिन्नानधिकरणं हेत्वधिकरणं तत्तत्संबन्धान्यसाध्यतावच्छेदकसंबन्धेन

तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः। तथा च समवायादिसंबन्धेन घटत्वावच्छिन्नानधिकरणत्वस्य महाकाले सत्त्वेन समवायादिसंबन्धभिन्नत्वस्य कालिकसंबन्धेन सत्वात् कालो घटवान् महाकालत्वादित्यत्र लक्षणसमन्वयः। ननु संयोगस्य नानात्वेन तत्तत्संयोगव्यक्तीनां यद्यत्संबन्धपदेन धर्त्तुं शक्यतया तत्तत्संयोगभिन्नत्वस्य संयोगे बाधादव्याप्तिरिति चेन्न यद्यद्रूपावच्छिन्नसंसर्गतानिरूपितयद्धर्म्मावच्छिन्न निरूपकताकाधिकरणतावदन्यत्वं हेतुमतस्तदन्यत्वस्य साध्यतानिरूपितसंसर्गतावच्छेदके विवक्षितत्वात्। न च संयोगत्वावच्छिन्नत्वस्य महानसीयसंयोगत्वावच्छिन्नसंसर्गतायां सत्वेन तत्संसर्गतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नानधिकरणत्वस्य धूमवति सत्वेन यत्पदेन संयोगत्वस्यापि धर्त्तुं शक्यत्वात्। तद्वारणाय यद्यद्धर्म्ममात्रावच्छिन्न-संसर्गतानिरूपितेत्युक्तौ महानसीयत्वविशिष्टसंयोगत्वस्यापि यद्यद्धर्म्मपदेन धर्त्तुं शक्यतया तदन्यत्वस्य संयोगत्वे विरहात्। विशिष्टस्य शुद्धानतिरिक्तत्वादिति वाच्यम्। यद्यद्रूपावच्छिन्नानुयोगितानिरूपक पर्याप्तिकावच्छेदकताकसंसर्गता-निरूपितयद्धर्म्मावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणतावदन्यत्वहेतुमतस्तद्रूपाव-च्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकत्वानिरूपितत्वस्य, यद्यद्रूपवृत्तिसंसर्गता-निरूपितयद्धर्म्मावच्छिन्न निरूपकताकाधिकरणतावदन्यत्वं हेतुमत-स्तद्रूपावृत्तित्वस्य[५५] वा, साध्यतानिरूपितसंसर्गतायां विवक्षितत्वात्। यदि च यत्तत्वस्याननुगततयैकोपादानेऽन्यासंग्रहेण व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिरित्युच्यते तदा संबन्धविशिष्टान्यसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तदित्यस्य विवक्षितत्वात्।

सम्बन्धवैशिष्ट्यं च स्वतादात्म्यस्वावच्छिन्नसाध्यताव च्छेदकावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणतावदन्यहेत्वाधिकरणवृत्त्य भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वोभयसंबंधेन। स्वपदं संबन्धपरम् अथवा हेत्वधिकरणवृत्तिभेदीयप्रतियोगितानिरूपिताधिकरणतानिष्ठावच्छेदकता निरूपितावच्छेदकतावत्साध्यतावच्छदेकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपित संसर्गतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यनधिकरणं यत्साध्यताघटकसंसर्गतावच्छेदकता-पर्य्याप्त्यधिकरणं तदवच्छिन्नसंसर्गेण साध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरित्यस्य निष्कृष्टत्वादित्याहुः।

यत्त्वेतत्कल्पे दधित्वविशिष्टप्रमेयवान् स्थूलदधित्वादित्यादावव्याप्तिः।

यत्पदेन तस्यापि संबन्धस्य ग्रहणासंभवादिति मतं तत्तुच्छम्। विषयितासंबन्धस्यैव यत्पदेन ग्रहणसंभवात्। विषयितया दधित्वविशिष्टप्रमेयसंबन्धिषु ज्ञानभिन्नत्वस्य हेतुमति स्थूलदध्यादावक्षतत्वात्। न च विषयित्वादेः संसर्गत्वे मानाभावादिति वाच्यम्। घटस्य ज्ञानमित्यत्र षष्ठी शेष इतिसूत्रविहितसंबन्धसामान्यबोधकषष्ठ्यनुपपत्तेरतस्तस्यास्तथात्वस्यावश्यकत्वादिति विभावनीयमिति।

साध्यसाधनभेदेन व्याप्तेर्भिन्नतया व्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थलीयलक्षणे च प्रतियोगिवैयधिकरण्यन्नोपादेयम्। व्याप्यवृत्तित्वं च साध्यतावच्छेदकसंबन्धेन स्वाधिकरणवृत्तिसाध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नाभावाप्रतियोगित्वम्। व्याप्यवृत्तित्वघटकवृत्तित्वं च संबन्धसामान्येन बोध्यम्। स्वाभाववत्वादेश्च-वृत्त्यनियामकत्वान्नात्मत्वादौ व्याप्यवृत्तित्वहानिः।

व्याप्यवृत्तिसाध्यकं च अयमात्मा ज्ञानादित्यादौ ज्ञानादिकं बोध्यम्। तथा च हेतुतावच्छदकसंबन्धेन हेतुतावच्छेदकविशिष्टाधिकरणवृत्त्य-भावीयसाध्यताघटकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगित्वं यद्धर्मानवच्छिन्नं तद्धर्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमथवा हेतुतावच्छेदकसंबन्धेन प्रकृतहेत्वाधिकरणवृत्तिभेदीयप्रतियोगित्वं यत्संबन्धावच्छिन्न यन्निष्ठावच्छेदकत्वानिरूपितं तत्संबन्धेन तत्सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः। इयमेव निरवच्छिन्नविधेयताकानुमितिप्रयोजिका। नात आत्मत्वात्व द्रव्यत्वत्वाद्यनुपस्थितिदशायामयमात्मा इदं द्रव्यमित्याद्यनुमित्यनुपपत्त्यवकाश इति। ननु लघुधर्मस्यावच्छेदकत्वसंभवे गुरुधर्मस्य तथात्वानभ्युपगमादिति **प्राचीन**नये कस्मिंश्चित् कल्पे धूमत्वघटत्वग्राह्यगुणत्वादीनां प्रमेयधूमत्वकम्बुग्रीवादिमत्त्व-घ्राणग्राह्यगुणत्वाद्यपेक्षया लघूनामेव प्रमेयधूमाद्यभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेन निरुक्तप्रतियोगितानवच्छेदक-प्रमेयधूमत्वाद्यवच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य द्रव्यादिहेतौ सत्त्वेन तत्तद्रूपेण साध्यतायां द्रव्यत्वादिव्यभिचारिण्यतिप्रसंगः। वस्तुतस्तु कल्पे च प्रमेयवह्निमान् धूमादित्यादौ वह्नित्वापेक्षया प्रमेयवह्नित्वस्य गुरुतयाऽनवच्छेदकत्वेन तदवच्छेद्यत्वाप्रसिद्ध्याऽव्याप्तिरिति चेन्न। प्रतियोगितानवच्छेदकेत्यत्रावच्छेदकत्वस्यानतिरिक्तवृत्तित्वात्मकत्वात्। धूमाद्यभावप्रतियोगिताशून्ये प्रमेयधूमत्वादेरविद्यमानत्वेनातिव्याप्तिविरहात्।

अथ तादृशप्रतियोगितानतिरिक्तवृत्तित्वं तादृशप्रतियोगिताशून्यावृत्तित्वं

तादृशयत्किञ्चित्प्रतियोगितानतिरिक्तवृत्तित्वं वा। नाद्यः, वह्न्यादावपि धूमसमानाधिकरणप्रतियोगिव्यधिकरणतत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वस्य यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगित्वस्य च सत्त्वेन तत्सामान्याभाववतोऽप्रसिद्ध्याऽसम्भवापत्तेः। न वा द्वितीयः, प्रतियोगितायाः प्रतियोगिस्वरूपत्वपक्षे प्रतियोगितदभावोभयस्वरूपत्वपक्षे च धूमत्वादेस्तादृशप्रतियोगितातिरिक्तवृत्तितया धूमत्वादिरूपेण साध्यतायां व्यभिचारिण्यतिव्याप्तेः। प्रतियोगिताया नानात्वादिति चेन्न। प्रतियोगिताया अतिरिक्तत्वादनुगतत्वाच्चातिव्याप्तिविरहात्। प्रतियोगितायाश्चातिरिक्तत्वं व्यवस्थापितमधस्तात्। यद्वा हेतुसामानाधिकरणयत्किञ्चिदभावप्रतियोगितासामान्यशून्यावृत्तित्वस्य यत्प्रतियोगितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेतुमतस्तत्प्रतियोगिता-वच्छेदकधर्मावच्छिन्न प्रतियोगितासामान्यशून्यावृत्तित्वस्य वा व्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थलीयलक्षणाभिप्रेतस्य विवक्षितत्वात्। पूर्वकल्पे समनियताभावानामैक्यानभ्युपगमात्। संयोगेन घटाभावस्य घटीयसंयोगेन प्रमेयाभावस्यैकत्वेन घटाभावादिनिरूपितप्रतियोगितासामान्यशून्यत्वस्याप्रसिद्ध्यासंभवानवकाशः। अथ तार्णातार्णदहनवृत्तिद्वित्वावच्छिन्नाभाव-प्रतियोगितासामान्यशून्ये घटादौ वह्नित्वस्यावृत्तितया वह्नित्वमप्यवच्छेदकं स्यात्तथाचाव्याप्तिरिति चेन्न। प्रकृते चानतिरिक्तवृत्तित्वं न प्रतियोगितासामान्यशून्यावृत्तित्वमपि तु प्रतियोगितावच्छेदकशून्यावृत्तित्वमेव, अवच्छेदकं च स्वसमानवृत्तिकं ग्राह्यम्। तथा च स्वसमानवृत्तिक-हेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकानतिरिक्तवृत्तिभिन्नं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात्। स्वसमानवृत्तिकत्वं च स्वपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिप्रतियोगित्वमिति वह्नित्वादिकं द्वित्वादिसमानवृत्तीति नाव्याप्तिः। नन्वनतिरिक्तवृत्तित्वघटकवृत्तित्वस्य साध्यतावच्छेदकताघटकसंबन्धेनावश्यविवक्षणीयतया सत्ताश्रयवान् भावत्वात् समावायेन प्रमेयवान् भावत्वादित्यादौ च सत्तावदभावप्रतियोगितावच्छेदकसत्ताऽभाववत्सामान्यादिसमवेतत्वस्य प्रमेयाभावप्रतियोगितावच्छेदकाभावस्य चाप्रसिद्ध्याऽभावान्तरप्रतियोगितावच्छेदकानतिरिक्तत्वस्य सत्तादौ विरहेणातिव्याप्तिरिति चेन्न। स्वाव्यापकतत्कत्वरूपस्यानतिरिक्तवृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। व्यापकता च प्रतियोगितावच्छेदकताघटकसंबन्धेन स्वावच्छेद्यप्रतियोगित्वसंबन्धेन वेत्यन्यदेतत्।

सत्तादौ सत्तादिव्यापकत्वसत्वेनातिव्याप्तिविरहात्। न च सत्तावान् जातेरित्यादौ विशिष्टसत्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टसत्तात्वस्य व्यापकतयाऽनतिरिक्त-वृत्तित्वेनातिव्याप्तिः, अव्यासज्यवृत्तिधूमत्वादेः पर्य्याप्त्यनभ्युपगमे धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमत्वादौ स्वसमानवृत्तिकानतिरिक्तवृत्तित्वस्यासत्त्वेनाति-व्याप्त्यापत्तिश्च। धूमत्वस्य स्वपदेन ग्रहणासंभवादिति वाच्यम्। निरुक्तप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाभाववदसंबद्धस्वविशिष्टसामान्यकत्वस्या नतरिक्तवृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। यद्वा हेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकं यद्धर्मविशिष्टसंबन्धिनिष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकं तत्त्वमेव तदित्यस्य विवक्षितत्वात्। यद्धर्म्मवैशिष्ट्यं साध्यतावच्छेदकताघटकसंबन्धेन। संबन्धित्वं च साध्यतावच्छेदकसंबन्धेन। अभावे साध्यतावच्छेदकसंबन्धेन प्रतियोगिवैयधिकरण्यं बोध्यमिति चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु कल्पे प्रतियोगिव्यधिकरणहेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितासामान्यं यद्धर्म्मविशिष्टसंबन्धिनिष्ठ-प्रतियोगिव्यधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकानवच्छिन्नं भवति तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वान्नाव्याप्तिः। वस्तुतस्तु हेतुसमानाधिकरणाभावीयस्वरूपसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्म्मविशिष्टसंबन्धिनिष्ठाभावीयस्वरूपसंबन्धाविच्छिन्नप्रतियोगिता-नवच्छेदकावच्छेद्यत्वाभावस्तद्धर्म्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति न कोऽपि दोषः। एषा रीतिर्यत्र साध्यतावच्छेदकं न प्रतियोगितावच्छेदकं तत्रैव नान्यत्र साध्यसाधनभेदेन व्याप्तेर्भिन्नत्वात्। नव्यास्तु गौरवज्ञानं नावच्छेदकत्वधी-प्रतिबन्धकम्। घटत्वापेक्षया कम्बुग्रीवादिमत्त्वं गुर्विति प्रतीतिदशायां कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीति प्रतीतिदर्शनात् गुरुधर्म्मस्यावच्छेदकत्वसंभवाद् यथाश्रुतस्यैव सम्यक्त्वादिति प्राहुः। वस्तुतस्तु गुरुधर्म्मस्यानवच्छेदकत्वे विशिष्टसत्त्वं द्रव्यत्वव्याप्य मितिव्यवहारस्यैवानुपपत्तेः।

द्रव्यवृत्त्यभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वत्वापेक्षया गौरवेण विशिष्टसत्त्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकतात्वस्यानवच्छेदकत्वात्। तादृशावच्छेदकभेदकूटत्वस्य जन्मसहस्रेणापि वक्तुमशक्यत्वादिति व्याप्तिज्ञानं प्रति व्यभिचारज्ञानाभावसहकृतसहचारज्ञानस्य कारणत्वं बोध्यम्। व्यभिचारशंका च तर्कान्निवर्तते। यथा धूमो वह्निव्यभिचारी न वेति संशयो धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्यात्तदा वह्निजन्यो न स्यादिति तर्कान्निवर्तते। तर्कश्च बाधनिश्चयकालीनापाद्यव्याप्या-

पादकवत्तानिश्चयः। स च पञ्चविधः आत्माश्रयान्योन्याश्रयचक्रकाऽनवस्थाप्रमाणा बाधितार्थकप्रसङ्गभेदात्। आत्माश्रयादिश्चोत्पत्तौ स्थितौ ज्ञप्तौ भवतीति। उत्पत्तौ यथा घटो यदि घटजन्यः स्यात्तदा घटभिन्नः स्यात्। स्थितौ स्वं यदि स्ववृत्ति स्यात्तदा स्वभिन्नं स्यादिति। ज्ञप्तौ स्वज्ञानं यदि स्वज्ञानजन्यं स्यात्तदा स्वभिन्नं स्यादित्यादिकं स्वयमूहनीयम्। अन्यत्रापि क्वचिद्व्यभिचारशंकैव नोदेति स्वक्रियाव्याघातात्। पक्षत्वं संदिग्धसाध्यधर्मवत्त्वं पक्षधर्मिकसाध्यता वच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवत्तानिश्चयनिवर्त्त्यसंशयो वा। सिषाधयिषा विरहविशिष्टपक्षधर्मिकसाध्यवत्तानिश्चयाभावो वा पक्षता। सिषाधयिषाविरहानुपादाने यत्र सिषाधयिषेन्द्रियसन्निकर्षतो व्याप्तिज्ञानं प्रत्यक्षात्मकसिद्ध्यात्मकं तदनन्तरं यत्र वा स्मरणात्मकम् अनुमितीष्टसाधनताविषयकं सिद्ध्यात्मक-परामर्शानन्तराऽनुमित्सा ततोऽनुमित्यनुपपत्तिः। सिद्ध्यभावस्यासत्वात् सिषाधयिषा च प्रकृतपक्षकप्रकृतसाध्यकानुमितित्वप्रकारकेच्छा ग्राह्या। तेन पाषाणमयत्वेन पर्वते तेजस्त्वादिना वह्नेः सिद्धावपि विनानुमित्सया पर्वतत्वेन वह्नित्वेन पर्वते वह्नेर्नानुमित्यनुपपत्तिः। न च पर्वतेऽनुमितिर्जायतां वह्न्यादिविधेयताकानुमितिर्जायतां प्रत्यक्षादिभिन्नं वह्निज्ञानं जायतामित्याद्यनुमित्सादशायां सिद्ध्यात्मकपरामर्शादनु-मित्यनुपपत्तिर्निरुक्ताऽनुमित्सात्वस्य तत्र तत्रासत्त्वादिति वाच्यम्। तत्र पर्वते वन्ह्यनुमितिर्जायतामितीच्छान्तरोत्पत्त्यैवानुमितेरानुभविकत्वात्।

केचित्तु यद्यदिच्छासत्त्वे सिद्धौ सत्यामनुमितिः तत्तदिच्छाभाव-विशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता इत्याहुः, तच्चिन्त्यम्। तादृशाभावकूटज्ञानस्य जन्मसहस्रेणाप्यसंभवादिति। अथ यत्र सिषाधयिषालिङ्गदर्शनादिक्रमेण सिद्ध्यात्मकपरामर्शः तत्र सिषाधयिषाविरहविशिष्टायाः सिद्धेः सत्वेनानुमित्यनुपपत्तेरिति चेन्न। अनुमित्सान्तरोत्पत्त्यैवानुमितेःस्वीकारात्। नचानुमित्सान्तरजनकानुमितीष्ट-साधनताज्ञानेन पूर्वपरामर्शनाशात् कथमनुमितेः सम्भव इति वाच्यम्। अनुमितीष्टसाधनताविषयकपरामर्शानन्तरमनुमित्सा ततोऽनुमितिरिति फलबलात्तत्र कल्पनान्न कोऽपि दोषः।

केचित्तु सिषाधयिषानाशे द्वित्रिक्षणाभ्यन्तरेऽनुमितेरानुभविकत्वे सिषाधयिषाविरहविशिष्टस्वक्षणाव्यवहितोत्तरक्षणोत्पन्नस्वसमानाधिकरणप्रकृत-पक्षसाध्यकानुमितिकसिद्धिभिन्नायाः सिषाधयिषाविरहविशिष्टायाः सिद्धेरभावः पक्षता। न च यत्र सिषाधयिषानन्तरद्वितीयक्षणे सिद्धिस्तदनन्तरं परामर्शस्ततोऽनुमितिर्न

स्यात्। तथाविधसिद्ध्यभावस्य तत्रासत्त्वात्। परामर्शक्षण एवाव्यवहितोत्तरत्वपर्यवसानादिति वाच्यम्। प्रथमक्षणमपेक्ष्य द्वितीयक्षणस्येव द्वितीयक्षणमपेक्ष्य तृतीयक्षणस्याप्यव्यवहितोत्तरत्वम्। तच्च स्वाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणध्वंसानधिकरणत्वे सति स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वं स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वे सति स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वं वा। एतत्कल्पे च सिषाधयिषाविरहो न स्वक्षणस्य विशेषणम्। अपि तु उत्तरक्षणस्य तेन न यत्र सिद्ध्यात्मकपरामर्शस्ततोऽनुमित्सा ततोऽनुमितिस्तत्र सिषाधयिषाक्षणेऽनुमित्यापत्तिरन्यथा तत्रत्यसिद्धेस्तथाविधानुमितिकतया तद्भिन्नसिद्ध्यभावस्य परामर्शक्षणे सत्त्वात् तत्राऽनुमित्यापत्तेर्दुर्वारत्वात्। तत्रैवाऽनुमितिसंपत्तये द्वितीयसिषाधयिषाविरहः सिद्धिविशेषणमित्याहुस्तच्चिन्त्यम्। **मिश्रास्तु** अनुमित्सायोग्यताविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता। योग्यता च सिषाधयिषानन्तरं यावत्कालेनानुमितिर्जायते तावानेव कालः फलबलेन बोध्या। तथाच सिषाधयिषानाशाधिकरणतावत्कालानुमित्सान्यतरविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता। तेन यत्र सिध्यात्मकपरामर्शानन्तरक्षणे सिषाधयिषा तत्र तावत्कालविरहस्य सत्त्वेऽपि न क्षतिः।

यत्र सिद्ध्यनन्तरं परामर्शस्तत्र परामर्शानन्तरतृतीयक्षणे विनाऽनुमित्सामनुमितेरननुभाविकत्वे सिद्धिपदेनापि सिद्धिनाशाधिकरणः कालो लक्ष्यते। तथाच सिषाधयिषासिषाधयिषानाशाधिकरणतत्तत्कालान्यतराभावविशिष्टसिद्धिसिद्धिनाशाधिकरणतत्तत्कालान्यतराभावः पक्षतेति।

काल पदं ज्ञानपरं तेन कालस्य समवायेनत्मन्यसत्त्वेऽपि न क्षतिरिति प्राहुः। सिद्धिश्च साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नप्रकारत्वान्यप्रकारत्वानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यताशालिज्ञानं साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नकोटिताशून्यत्वे सति प्रकृतपक्षधर्मिकप्रकृतसाध्यप्रकारकज्ञानं वा। तेन संशये उभयविशेष्यतास्वीकारपक्षे निश्चयत्वापत्त्यवकाशो न वा। वह्निघटवानिति निश्चयस्य प्रथमे वह्निप्रकारत्वान्यघटप्रकारकत्वसत्त्वेऽपि साध्यनिश्चयत्वहानिस्तथाविधकोटिताशून्यत्वस्याक्षतत्वदिति। यत्र स्थलविशेषे परामर्शदशायां साध्यसिद्धिः कदापि नोत्पन्ना तत्र सिद्ध्यभावस्य कारणत्वानभ्युपगमात्। यत्र च साध्यनिश्चयानन्तरं सिषाधयिषा नोत्पन्ना तत्र सिद्ध्यभावमात्रं पक्षतेत्यादिकमूहनीयम्।

व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टो हेतुः सद्धेतुः। तत्र निरुक्तत्रिविधव्याप्तिविषयकज्ञानरूपानुमानं न्यायसाध्यं भवति। नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थसिद्धिरनेनेति न्यायः। स चानुमितिचरमकारणलिङ्गपरामर्शप्रयोजकवाक्यसमूहः। प्रतिज्ञाप्रतिपाद्यार्थविषयक हेतुप्रतिपाद्यार्थविषयकोदाहरणप्रतिपाद्यार्थविषयकोपनयप्रतिपाद्यार्थविषयक निगमनप्रतिपाद्यार्थविषयक यत्किञ्चिच्छाब्दबोधनिरूपिता शब्दज्ञाननिष्ठा या या कारणता तत्तदवच्छेदककोटिप्रविष्टयत्किञ्चिज्ज्ञानीयविषयताश्रयवर्णत्वव्यापकसमुदायत्वपर्यवसितो ग्राह्यः। उचितानुपूर्वीकत्वे सति प्रतिज्ञादिपञ्चपर्याप्तसमुदायत्ववत्त्वं वा तत्। स्वाश्रयप्रतिज्ञाद्यव्यवहितोत्तरत्वशून्यहेत्वादिवृत्तियद्यत्समुदायत्वं तत्तत्समुदायत्वभेदकूटवत्त्वस्य समुदायत्वविशेषणत्वात्। एकैकन्यायघटक प्रतिज्ञाहेत्वादिपञ्चवाक्ये नातिव्याप्तिः। न्यायलक्षणघटकप्रतिज्ञादिकमुदासीनवाक्यवारकन्यायान्तर्गतत्वविशेषणरहितं बोध्यम्।

अतो नान्योन्याश्रयः। प्रतिज्ञा च प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्यावगाहिबोधजनकन्यायान्तर्गतवाक्यरूपा। प्रतिज्ञाद्यघटकत्वे सतीति वाक्ये निवेश्यम्। नातः प्रतिज्ञाजन्यबोधसमानाकारकबोधजनके प्रतिज्ञा[56]घटकेऽव्याप्त्यवकाश इति। हेतुत्वं च प्रतिज्ञावाक्यधीजन्यबोधकारणाकाङ्क्षानिवर्तकज्ञानजनकहेतुविभक्तिमद्वाक्यत्वम्। न्यायान्तर्गतत्वे सति हेतुविशिष्टहेतुत्वविषयताबहिर्भूतविषयताशून्यहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयकबोधजनकवाक्यत्वं वा। सपक्षसपक्षान्यधर्मिकहेतुहेतुव्यापकसाध्यप्रकारकबोधजनकत्वे सति न्यायान्तर्गतवाक्यत्वम् अन्वय्युदाहरणत्वम्। विपक्षविपक्षान्यधर्मिकसाध्यवद्भेदहेतुमद्भेदप्रकारकबोधजनकतादृशवाक्यत्वं[57] व्यतिरेक्युहारणम्। उदाहरणवाक्यधीजन्यबोधकारणाकांक्षानिवर्तकप्रकृतसाध्यव्याप्यहेतुविशिष्टप्रकृतपक्षविषयकबोधजनकतादृशवाक्यत्वमुपनयत्वम्। प्रकृतसाध्यव्याप्यहेतुज्ञाप्यप्रकृतसाध्यवत्पक्षविषयकबोधजनकतादृशवाक्यत्वं निगमनत्वमित्यन्यत्र विस्तरः।

प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयो हेतुदोषः। तदाश्रयो दुष्टहेतुः। आश्रयता च स्वज्ञानविषयप्रकृतहेतुतावच्छेदकवत्त्वसंबन्धेन बोध्या। तेन प्रकृतहेतुभिन्ने कालिकादिसंबन्धेन दोषस्य सत्त्वेऽपि न दुष्टत्वापत्त्यवकाशः।

प्रकृतानुमितिपदेन साध्यव्याप्यहेतुमत्पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित साध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रकारताशाल्यनुमितिसामान्यं बोध्यम्। तथाच तादृशानुमितित्वव्यापकप्रतिबध्यता निरूपितप्रतिबन्धकताशालियथार्थज्ञानविषयत्वं हेतुदोषत्वम्। तेन पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादो वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान् तादृशह्रदश्च तथेत्यनुमितिप्रतिबन्धकप्रमाविषयत्वस्य वह्न्यभाववद्ध्रदादौ सत्त्वेऽपि तथाविधवह्न्यभाववद्ध्रदवत्वस्य धूमे सत्वेऽपि च नातिव्याप्तिः। तथाविधानुमितिसामान्ये ह्रदो न वह्निमानिति निश्चयप्रतिबध्यत्वस्यासत्वात्। बाधसत्प्रतिपक्षस्वरूपासिद्ध्याश्रयासिद्धिषु चतुर्ष्वव्याप्तिवारणाय पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नत्वस्य प्रवेशः। पक्षतावच्छेदकत्वञ्च पक्षता-वच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरणत्वम्। तेन काञ्चनमयह्रदादिपक्षकस्थले नाश्रयासिद्ध्यादावव्याप्त्यवकाशः। बाधसत्प्रतिपक्षयोः संग्रहाय साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वस्योपादानम्। ह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्न्यभाववद्ध्र दादिनिश्चयस्य द्रव्यविधेयकधूमजनकतेजस्त्वविशिष्टविधेयकानुमित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि तथाविधानुमितौ साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविधेयताकत्वाभावात्। साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं च साध्यतावच्छेदकतापर्य्याप्त्यधिकरण-धर्म्मावच्छिन्नत्वम्। तेन पर्वतो महानसीयवह्निमानित्यादौ महानसीयवह्न्यभाववान् पर्वत इत्यादिबाधादिनिश्चयप्रतिबध्यत्वस्य पर्वतो वह्निमान् महानसीयवानित्याद्यनुमितावसत्वेऽपि बाधसत्प्रतिपक्षयोर्न्नाव्याप्त्यवकाशः। बाधव्यभिचारविरोधस्वरूपासिद्ध्याश्रयासिद्धिसत्प्रतिपक्षेष्वव्याप्ति[५८] वारणा य प्रकृतसाध्यव्याप्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्प्रकृतपक्षविषयकत्वस्य निवेशः। व्यभिचारादावव्याप्तिवारणाय प्रकृतसाध्यहेत्वोरुपादानम्। एवमग्रेऽपि बोध्यमिति।

नव्यास्तु अनुमितितत्कारणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वं दोषत्वम्। अनुमितिश्च प्रकृतपक्षधर्मिकप्रकृतसाध्यविधेयताशालिनी ग्राह्या। तेन नोदासीनेऽति-व्याप्त्यवकाशः। अथ पर्वतो वह्निमान् ह्रदश्च तथेत्यनुमितेस्तथाविधतया तत्प्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषये वह्न्यभाववद्ध्रदादावतिव्याप्तिः। तथाविधान्यतरत्वस्य प्रतिबध्यतानवच्छेदकत्वेन प्रतिबध्यतायामन्यतरत्वावच्छिन्नत्वस्य निवेशासम्भवात्। तादृशान्यतरत्वव्यापकत्वनिवेशे तु तादृशान्यतरत्वव्यापकत्वस्य बाधादिनिश्चयप्रतिबध्यतायां विरहेण व्यभिचारविरोधस्वरूपासिद्धिसत्प्रतिपक्षबाधे

ष्वव्याप्ति[५९] रिति चेन्न। पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यता निरूपितसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारताशाल्यनुमितित्व-व्यापकत्वसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपितव्याप्तिप्रकारतानिरूपितहेतुता-वच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपक्षतावच्छेदका-वच्छिन्नविशेष्यताशाल्यनुमितित्वव्यापकत्वान्यतरवती या प्रतिबध्यता तन्निरूपितप्रतिबन्धकताशालियथार्थज्ञानविषयत्वमित्यस्य विवक्षितत्वान्न कोऽपि दोषः।

अन्वयव्याप्तिव्यतिरेकव्याप्ती विशिष्योपादाय तत्तद्व्याप्तिप्रकारता-निरूपितहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपक्षता-वच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यत्वस्य प्रवेशान्नैकोपादाने साधारण्यानुपसंहारित्व[६०] योरव्याप्तिरिति प्राहुः।

यत्तु साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः साध्यवानितिसमूहा-लम्बनानुमितित्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकताशालियथार्थज्ञानविषयत्वं तदिति। तत्तुच्छं, यत्र स्थलविशेषे साध्यतद्व्याप्ययोर्न्न समूहालम्बनानुमितिस्तत्र दोषेऽव्याप्त्यापत्तेरिति। पर्वतो निर्वह्निरिति भ्रमविषये धूमो वह्नेर्व्यभिचारीतिभ्रमविषये चातिव्याप्तिनिरासाय यथार्थपदोपादानम्। यथार्थत्वं चात्र नित्यज्ञानावृत्तिविषयिता-शून्यत्वं, पूर्वोक्तविशेष्यताविशिष्ट[६१]प्रकारताशून्यत्वरूपं वा बोध्यम्। तेन किञ्चिदंशे प्रमात्वसत्वेऽपि नोक्तभ्रमविषयेऽतिव्याप्त्यवकाशः। अथ निरुक्तानुमितिप्रतिबन्धकप्रमाविषये व्यभिचारैकदेशे धूमत्वाद्यवच्छिन्ने हेत्वाभासत्वापत्तिरिति चेन्न, अनाहार्य्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितनिश्चय-वृत्तित्वविशिष्टयादृशविशिष्टविषयत्वव्यापिका निरुक्तानुमितिप्रतिबन्धकता तादृशविशिष्टत्वस्य हेत्वाभासपदार्थत्वात्। दोषघटकनिरूपितविषयित्वव्यापकत्वस्य निरुक्तानुमितिप्रतिबन्धकतायां विरहेणातिव्याप्तिविरहात्। अनाहार्य्यत्वादि-विशेषणोपादानादाहार्य्याप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितदोषविषयकनिश्चयस्य दोषविषयकसंशयस्य चाप्रतिबन्धकत्वेऽपि नासंभव इति। यत्तु यादृशविशिष्टनिरूपितविषयित्वं निरुक्तानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं दोषत्वमिति। तत्तुच्छं, निरुक्तानुमिति प्रतिबन्धकता-शून्यदोषविषयकसंशयादौ तथाविधदोषविषयित्वसत्त्वेनासम्भवप्रसङ्गात्। न चानाहार्य्याप्रामाण्यज्ञानानास्कदितनिश्चयवृत्तित्वस्य विषयित्वविशेषणत्वान्न

दोषावकाशः, तथाविधविषयितायाः संशयादावभावादिति वाच्यं विशिष्टस्यानतिरिक्ततया दोषनिरूपितविषयितायां प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकताशून्य-संशयादिवृत्तित्वसत्त्वेन तथाविधनिश्चयवृत्तित्वविशिष्टविषयितायामपि तस्य सत्त्वात्। विशेष्यवृत्तिप्रतियोगिताकाभावस्य विशिष्टानुयोगिकत्वास्वीकारात्। यदि च प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकताशून्यानाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित-निश्चयावृत्तियादृशविशिष्टविषयित्वमित्युक्तौ न दोष इत्युच्यते तदा ह्रदो वह्निमान्धूमादित्यादौ बाधनिश्चयीयह्रदत्वविशिष्टनिरूपितविषयितायां तथाविधावृत्तित्वस्याक्षतत्वादतिव्याप्त्यापत्तेरि[६३]ति।

न च जातित्वेन ह्रदत्वेन ह्रदत्वावगाहिवह्न्यभाववान् जातिमानित्यादिनिश्चये वह्न्यभाववद्ध्रदत्वादिविशिष्टविषयके प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकत्वस्य विरहादसम्भव इति वाच्यं यादृशसमुदायत्ववृत्तिनिरूपकतानिरूपितविषयिताव्यापकत्वस्य प्रतिबन्धकतायां विवक्षितत्वात्। वह्न्यभावद्ध्रदत्वगतसमुदायत्व-वृत्तिवह्न्यभावद्ध्रदत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितविषयित्वस्य जातित्वेन ह्रदत्वावगाहिज्ञाने विरहेणासम्भववारणसम्भवात्। निरूपकतायां समुदायत्ववृत्तित्वञ्च स्वावच्छेदकतात्वावच्छिन्नपर्याप्त्यनुयोगिता-वच्छेदकत्वसंबन्धेन, स्वं निरूपकता।

केचित्तु पक्षतावच्छेदकाद्यंशेऽन्याप्रकारकत्वस्य निश्चयविशेषणत्वान्न दोषः। न च जलवान् वह्निमानित्यत्र वह्न्यभाववज्जलवदात्मकबाधादावव्याप्तिरिति वाच्यम्। पक्षतावच्छेदकाघटकनिष्ठप्रकारतानिरूपितपक्षतावच्छेदकनिष्ठ-विशेष्यताशून्यत्वस्य तदर्थत्वात्। न च ह्रदो वह्निमान् ह्रदत्वादित्यादौ वह्न्यभाववद्वृत्तिह्रदत्वादिरूपसाधारण्येऽव्याप्तिः। पक्षतावच्छेदकाघटकस्य वह्न्यभाववद्वृत्तित्वस्य ह्रदत्वांशे प्रकारत्वादिति वाच्यं यद्यद्रूपावच्छिन्नस्य यस्य यस्य यादृशविशिष्टदोषघटकता तत्तद्रूपावच्छिन्नतत्तन्निष्ठविषयताभिन्न-किञ्चिदवच्छिन्नविषयत्वानिरूपकत्वस्य विवक्षितत्वान्नाव्याप्तिरिति। न च तथापि ह्रदो जात्यभाववानित्यत्र जातिमद्ध्रदादावव्याप्तिः। जातित्वेन ह्रदत्वावगाहिजातिमान् जातिमानिति निश्चयेऽनुमितिप्रतिबन्धकत्वस्यासत्वादिति वाच्यम्। यादृशरूपावच्छिन्नविषयितात्वं यादृशविशिष्टविषयकत्वसमानाधिकरणात्यन्ता-भावप्रतियोगितावच्छेदकं तादृशरूपावच्छिन्नविषयिताशून्यत्वस्य निश्चयविशेषणत्वादित्याहुः। तन्न, अभावत्वेन ह्रदत्वावगाहिवह्न्यभाववानभाववानिति

निश्चये वह्न्यभाववद्ह्रदत्वावच्छिन्नविषयके तथाविशेषणस्य सत्त्वात् वह्न्यभाववद्ध्रदादावव्याप्तेरिति तु चिन्त्यम्।

अथवह्न्यभाववज्जलवद्वृत्तिजलवद्ध्रदादावतिव्याप्तिः ह्रदो वह्निमानित्यनुमितिं प्रति जलावच्छेदेन वह्न्यभावप्रकारक-निश्चयविशिष्टजलवद्ध्रदत्वविशिष्टविषयकनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वस्य वह्न्यभाववज्जलवद्वृत्तिजलवद्ध्रदत्वविशिष्टविषयकनिश्चिये सत्त्वात्। न च प्रतिबन्धकतायां ज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नत्वस्य निवेशान्नातिव्याप्ति[६४]रिति वाच्यम् जलव्यापकवह्न्यभावसमानाधिकरणजलवद्ध्रदादावव्याप्तिः। जलव्यापको वह्न्यभावः जलवांश्च ह्रद इति निश्चयदशायामनुमित्यनुत्पादानुरोधेन सर्वमतसिद्धनिश्चयविशिष्टनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकतयैव निरुक्तसत्प्रतिपक्षनिश्चय-दशायामप्यनुमित्यनुत्पादसम्भवात्। विशिष्टविषयकनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वान्तरे तत्र मानाभावादिति। यदि तस्य सत्प्रतिपक्षत्वानभ्युपगमात्। अन्यथा जलव्यापकवह्न्यभावकालीनत्वादिघटितस्यापि तथात्वापत्ते[६५]रित्युच्यते तदापि वह्निव्यापकीभूताभावप्रतियोगिजलवद्ह्रदात्मकासाधारण्येऽव्याप्तिः। तन्निश्चयस्य जलवान् ह्रद इति निश्चयाविशिष्टवह्निव्यापकीभूताभावप्रतियोगिजलमिति निश्चयत्वेनैव-प्रतिबन्धकतया तत्प्रतिबन्धकतायां ज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नत्वविरहात्। यदि चासाधारण्यविषयकत्वानवच्छिन्नत्वज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नत्वोभयाभाववत्त्वस्य निवेशादेव तत्राव्याप्तिवारणसम्भवादित्युच्यते। तदा गगनाभाववदभाववत्कालीनघटो गगनवानित्यत्र गगनाभाववत्तादृशघटात्मकबाधादावव्याप्तिः, तादृशबाधविषयकनिश्चयस्याभावावच्छेदेन गगनाभावप्रकारकनिश्चय-विशिष्टाभावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिततादृशघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालि निश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वात्। तत्प्रतिबन्धकतायां च निरुक्तोभयस्यैव सत्त्वेन तादृशोभयाभाववत्त्वविरहात्। न च घटत्वावच्छेदेन गगनाभाववद्घटस्यैव तत्र बाधत्वात् तद्विषयकनिश्चयस्य विशिष्टविषयकनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वान्नाव्याप्तिरिति वाच्यं घटो गगनाभाववदभाववत्कालीनगगनवानित्यादौ गगनाभाववदभाववत्कालीनगगनाभाववद्घटात्मकबाधादावव्याप्तिः। घटधर्मिकविशेषाभावनिश्चयस्य लाघवेन ज्ञानविशिष्टज्ञानत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वात्।

एवं वह्निमद्वह्निमत्कालीनपर्वतो वह्न्यभाववानित्यत्र पर्वतत्वावच्छेदेन वह्निमत्त्वस्याभावेन वह्निमत्तादृशपर्वतस्यैव बाधतया तद्विषयकनिश्चये

ज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नप्रतिबन्धकत्वाभावेन बाधादावव्याप्तिः। अतो ज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नत्वस्य निवेशासम्भवान्निरुक्तविशिष्टेऽतिव्याप्तिस्तदवस्थैवेति चेत्, अत्र केचित् यादृशविशिष्टविषयकनिश्चयविशिष्ट्यादृशविशिष्टविषयकनिश्चयत्वं निरुक्तानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टद्वयाघटितत्वस्यापि यत्पदार्थे विवक्षितत्वान्नातिव्याप्तिरित्याहुः। तत्तुच्छं, तुल्ययुक्त्या जलव्यापकवह्न्यभावसमानाधिकरणजलवद्ध्रदात्मकसत्प्रतिपक्षादावव्याप्तेः। न च तस्य सत्प्रतिपक्षत्वानभ्युपगमान्न दोष इति वाच्यं वह्निव्यापकीभूताभावप्रतियोगिजलवद्ध्रदात्मकासाधारण्येऽव्याप्तिप्रसङ्गात्। न च वह्निव्यापकीभूताभावप्रतियोगिजलस्यैवासाधारणत्वमिति न तत्राव्याप्तिरिति वाच्यं प्रतिबन्धकज्ञानाविषयस्यादोषत्वात् अन्यथा दोषलक्षणस्य तत्राव्याप्तिप्रसङ्गात्। प्रकृतानुमितिकतायां तद्विषयिताव्यापकत्वविरहात्।

अथ दोषलक्षणे यद्विषयकनिश्चये पक्षधर्म्मिक हेतुमत्तानिश्चयकालीनत्वस्य निवेशात्, प्रकृतानुमित्यप्रतिबन्धकत्वासाधारण्यविषयिताशून्यत्वोभयाभावो यद्रूपावच्छिन्नविषयिताव्यापकस्तद्रूपावच्छिन्नत्वस्य वा दोषलणत्वान्न दोष इति चेन्न, घटपक्षकनिरुक्तगगनाभावसाध्यकस्थलीयस्य निरुक्तपर्वतपक्षकवह्निसाध्यकस्थलीयस्य च बाधस्य विशिष्टद्वयघटितत्वात्। यदि च विशिष्टद्वयविषयितायां स्वानवच्छेदकविषयिताशून्यत्वसंबन्धेन प्रकृतानुमितित्वव्यापकप्रतिबन्धकता निरूपितप्रतिबध्यताविशिष्टान्यत्वस्य निवेशान्न निरुक्तबाधयोरसङ्ग्रहस्यावकाश इत्युच्यते तदा तादृशपरम्परायाः संसर्गत्वानभ्युपगमे प्रतीकाराभावात्। वह्न्यभाववज्जलवद्वृत्तिजलाभाववद्वह्निमत्कालीनह्रदो वह्निमान् धूमादित्यादौ वह्न्यभाववज्जलवद्वृत्तिजलवद्ध्रदादावतिव्याप्तिप्रसंगाच्च। प्रकृतानुमितेरपि वह्न्यवच्छेदेन तादृशजलाभावप्रकारकनिश्चयविशिष्टवह्निप्रकारकह्रदविशेष्यकनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकतया वह्न्यभाववज्जलवद्वृत्तिजलवान् ह्रद इति ज्ञानीयविशिष्टविषयताद्वये प्रतिबध्यताविशिष्टान्यत्वाभावादिति। न चानुमितित्वव्यापकप्रतिबन्धकतायां ज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नत्वनिवेशान्नातिव्याप्तिरिति वाच्यं वह्न्यभाववद्वह्न्यभाववद्वह्निमद्ध्रहनिमत्कालीनपर्वतो वह्न्यभाववानित्यादौ बाधनिश्चयस्यानुमितिं प्रति अनुमितेश्च बाधबुद्धिं प्रति ज्ञानविशिष्टज्ञानत्वेनैव प्रतिबन्धकतयाऽनुमितित्वव्यापकज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नप्रतिबन्धकत्वान्तर-

निरूपितप्रतिबध्यताविशिष्टान्यत्वस्य बाधघटकविशिष्टद्वयविषयतायां सत्वात्तत्रत्यविशिष्टबाधादावव्याप्त्यापत्तेरिति विभावनीयम्।

वस्तुतस्तु पक्षसाधनभेदेन हेतुदोषलक्षणस्य नानात्वात्। ह्रदपक्षकवह्निसाध्यकधूमहेतुकस्थलीयदोषलक्षणे वह्न्यभाववज्जलवद्वृत्तिजलवद्ध्रदविषयकनिश्चयधर्म्मिकाप्रामाण्यज्ञानाभावादीनां लाघवेन प्रयोजनविरहेण च, यद्रूपावच्छिन्नविषयिताशालिनिश्चये निवेशाभावेन तत्रातिव्याप्त्यभावान्न कोऽपि दोष इति।

ननु वह्निमान् द्रव्यत्वादित्यादौ प्रमेयत्वविशिष्टवह्न्यभाववद्वृत्तिद्रव्यत्वाद्यात्मके व्यभिचारादावतिव्याप्तिः। तादृशविशिष्टविषयकनिश्चयस्य निरुक्तानुमितिविरोधित्वादिति चेन्न, अनाहार्य्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्वादितिवत् स्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदकप्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तिविषयितानिरूपकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नविषयिताशून्यत्वस्य निश्चये निवेशात्। मेयत्वविशिष्टव्यभिचारत्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदक तथाविधानतिरिक्तवृत्तिविषयितानिरूपकतावच्छेदकव्यभिचारत्वाद्यवच्छिन्नविषयिता शून्यत्वस्य मेयत्वविशिष्टव्यभिचारविषयकनिश्चये विरहेण यद्रूपपदेन प्रमेयत्वविशिष्टव्यभिचारत्वादीनां ग्रहणासम्भवात्। स्वपदं यद्रूपाच्छिन्ने लक्षणं सङ्गमनीयं तद्रूपं सर्वं गगनवद्वाच्यत्वादित्यादौ गगनाभाववद्वृत्तिवाच्यत्वत्वावच्छिन्नविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदकगगनाभाववत्सर्वत्वाश्रयाविषयकप्रतीतेरप्रसिद्ध्या व्यभिचारादावव्याप्तिवारणाय चरमावच्छिन्नत्वनिवेशः। प्रमेयत्वविशिष्टव्यभिचारस्य शुद्धव्यभिचारानतिरिक्ततया तदाश्रया-विषयकत्वस्य व्यभिचारप्रतीतौ विरहेण प्रमेयत्वविशिष्टव्यभिचारादावति-व्याप्तिवारणाय गगनाभाववत्सर्वत्वाश्रयाविषयकप्रतीत्यप्रसिद्ध्या निरुक्तस्थले बाधे चाव्याप्तिवारणाय च, प्रथमावच्छिन्नत्वस्य निवेशः। गगनाभाववत्सर्वत्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयगगनाभाववद्वृत्तिवाच्यत्ववृत्तित्वस्य गगनाभाववत्सर्वत्वे सत्वेन तदवच्छिन्नाविषयकत्वस्य गगनाभाववत्सर्वविषयकनिश्चये विरहेणाव्याप्तिवारणाय स्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयवृत्तित्वमुपेक्ष्य प्रतीतिविषयतावच्छेदकत्वनिवेशः। वह्न्यभाववद्ध्रदत्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदकवह्न्यभावत्वादिकमादायासंभववारणाय प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति

विषयतावच्छेदकत्वस्य निवेशः।

न च तथाविधप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयितासामान्यकत्वमेवास्तु अलमनतिरक्तवृत्तित्वनिवेशेनेति वाच्यं ह्रदो जलवद्ध्रदकालीनवह्निमान् जलादित्यादौ जलवद्ध्रदकालीनवह्नि व्यापकीभूताभाव प्रतियोगिजलात्मकासाधारण्ये, घटो गगनाभाववदभाववत्कालीनगगनवानित्यादिस्थलीयनिरुक्तबाधादौ चाव्याप्तिप्रसंगात्। जलवद्ध्रदत्वावच्छिन्नविषयितासामान्यस्य गगनाभाववदभाववत्वावच्छिन्नविषयितासामान्यस्य च निरुक्तानुमितिनिरूपितज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नप्रतिबन्धकतावच्छेदकतया स्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदकजलवद्ध्रदत्वाद्यवच्छिन्नविषयिताशून्यत्वस्य तादृशतादृशदोषविषयकनिश्चयविरहात्।

अथ धूमव्यभिचारिवह्निमान्धूमवान् वह्नेरित्यादौ व्यभिचारघटितबाधेऽव्याप्तिः, बाधाविषयकप्रतीतिविषयव्यभिचारविषयिताशून्यत्वस्य बाधविषयकनिश्चये विरहादिति चेन्न। तत्र प्रकृतानुमितेरप्रसिद्ध्या हेत्वाभासदोषानभ्युपगमादपार्थकदोषात्मकनिग्रहस्थानादेव वादिनो निवृत्तेः। एतेन निर्वह्निः पर्वतो वह्निमानित्यादावनुमित्यप्रसिद्ध्या वह्निमत्पर्वतात्मकाश्रयासिद्ध्यादावव्याप्तिरिति निरस्तम्।

अथवा यादृशपक्षकयादृशसाध्यकयादृशहतुकस्थले यावन्तो दोषास्तावदन्यतमस्य दोषत्वात्। वस्तुतस्तु निर्वह्निः पर्वतो वह्निमानित्यादिस्थल एव निरुक्तान्यतमस्य दोषत्वमन्यत्रानुमितिघटितस्यैव दोषत्व[६६]म्। पक्षसाध्यहेतुभेदेन दोषलक्षणस्य नानात्वात्। न च दोषशब्दस्य नानार्थत्वा-पत्तिरिति वाच्यं व्याप्त्यादिशब्दवत्तस्यापि नानार्थत्वस्येष्टत्वादिति। सव्यभिचारविरोधसत्प्रतिपक्षासिद्धिबाधभेदेन पञ्चविधः। तत्र साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनकता, पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितयद्रूपावच्छिन्नप्रकारताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्ना, तद्रूपवान् व्यभिचारः। साध्यसन्देहं प्रति साधारणधर्म्मवद्धर्मिज्ञानासाधारणधर्म्मवद्धर्म्मिज्ञानविप्रतिपत्तिवाक्यज्ञानजन्य कोट्युपस्थितित्वेन हेतुत्वात्। साधारण्यादौ लक्षण समन्वयः। सन्देहं प्रति साधारणादि धर्म्मप्रकारकज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितित्वेनैव कारणत्वम्। धर्म्मिज्ञानस्य च स्वातन्त्र्येण कारणत्वमिति सिद्धान्तावलम्बने तु

यद्रूपावच्छिन्न प्रकारताशालिज्ञानत्वेन साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनकत्वं, तद्रूपवान् व्यभिचारः। विशिष्टसाध्यसाधनग्रहत्वाव्यापकप्रकृतसाध्य निरूपितव्याप्तिप्रकारकप्रकृतहेतुधर्म्मिग्रहत्वव्यापकप्रतिबध्यानिरूपित प्रतिबन्धकत्वं यादृशविशिष्टनिरूपितविषयिताशालिनिश्चयत्वव्यापकं, तादृशविशिष्टो वा व्यभिचारः।

व्याप्तिप्रकारतेत्यत्र तत्तद्व्याप्तीनां विशेष्योपादाय निवेशः कार्यः। तेनैकोपादानेनान्यत्राव्याप्त्यवकाश इति। स साधारणासाधारणत्वानुपसंहारित्वभेदात् त्रिविधः। तत्र साध्याभाववद्वृत्तित्वं साधारण्यं, हेतुधर्म्मिकसाध्याभाववदवृत्तित्वप्रकारक, साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवदवृत्तित्वप्रकारक, साध्यतावच्छेदकधर्म्मिकहेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वप्रकारक, ग्रहत्वव्यापकविशिष्टसाध्यसाधनग्रहत्वाव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयिताकरूपवत्वं वा साधारण्यम्। धूमाभाववदवृत्तिद्रव्यत्वकालीन धूमवान् द्रव्यत्वादित्यादिस्थले धूमाभाववद् वृत्तित्वस्य द्रव्यत्वनिष्ठस्य साध्याप्रसिद्धित्वान्न साधारण्याव्याप्तिरिति बोध्यम्। साधननिष्ठसाध्याभाववद्वृत्तित्वसाध्यवदन्यवृत्तित्व साध्यतावच्छेदकनिष्ठहेतुसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगितावच्छेदकत्वादेः साधारण्यपदार्थत्वात्। तत्र तत्र निरुक्तरूपत्वस्य सत्वेन लक्षणसमन्वयः।

साध्यतदभाववद्व्यावृत्तत्वमसाधारण्यं, वह्निमान् गगनादित्यादौ गगननिष्ठतादृशस्यासाधारण्त्वं बोध्यम्। प्रकृतहेतुनिष्ठसाध्यव्यापकीभूताभावप्रातियोगित्वं वा असाधारण्यम्। ह्रदो वह्निमान् जलादित्यादौ जलानिष्ठवह्निव्यापकीभूताभावप्रातियोगित्वादेरसाधारण्यत्वादिति। केवलान्वयिधर्म्मावच्छिन्नपक्षकत्वे सति, अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यकत्व मनुपसंहारित्वमित्यन्यत्र विस्तरः।

साध्यासामानाधिकरण्यं विरोधः। प्रकृतानुमितित्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रातिबन्धकतावच्छेदकत्वे सति प्रकृतपक्षधर्म्मिक प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्टहेतुप्रकारकग्रहत्वाव्यापकप्रकृतानुमितित्वव्यापक प्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छे दकविषयित्वावच्छिन्नानुमितिनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदिका यद्रूपावच्छिन्न निरूपितविषयिता, तद्रूपावच्छिन्नत्वम्। **आचार्य्य**भिन्नमते तु प्रकृतपक्षधर्म्मिक प्रकृतसाध्यविधेयकानुमितित्व-

व्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वे सति विशिष्टपक्षविशिष्ट-साध्यग्रहत्वाव्यापकप्रकृतपक्षधर्म्मिकप्रकृतसाध्यविधेयकानुमितित्व-व्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयित्वावच्छिन्नानुमितिनिष्ठ-जन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदिका यादृशविशिष्टनिरूपितविषयिता तादृशवत्त्वं, सत्प्रतिपक्षत्वम्। ह्रदो वह्निमान्धूमादित्यादौ वह्न्यभावव्याप्यव्याप्यवद्ध्रदादावति-व्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्, वह्न्यभाववद्ध्रदादावतिव्याप्तिवारणाय जनकतावच्छेदकान्तम्। काञ्चनमयह्रदः काञ्चनमयवह्निमानित्यादौ काञ्चनमयत्वाव्याप्यवद्ध्रदादौ काञ्चनमयत्वाभावव्याप्यवद्वह्न्यादौ चातिव्याप्तिवारणाय विशिष्टपक्षविशिष्टसाध्यग्रहत्वाव्यापकत्वस्योपादानम्।

साध्याभावव्याप्यवत्पक्ष, पक्षनिष्ठसाध्याभावव्याप्य, पक्षवृत्तित्वव्याप्यवत् साध्याभाव, साध्याभावनिष्ठपक्षवृत्तित्वव्याप्य, पक्षनिष्ठाभावप्रतियोगित्व-व्याप्यवत्साध्य, साध्यनिष्ठपक्षनिष्ठाभावप्रतियोगित्वव्याप्य, गुणीयत्वाभाव-व्याप्यवत्संयोगादिभेदेन सत्प्रतिपक्षोऽनेकविधः। अथोन्नेयघटकप्रतिबध्यतायां साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छिन्नत्वानिवेशादेव काञ्चनमयत्वाभावव्याप्यवद्ध्रदादावतिव्याप्तिवारणसम्भवात्। ह्रदो न काञ्चनमय इति निश्चयादिप्रतिबध्यत्वादेर्वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारत्वानवच्छिन्नत्वात्। विशिष्टपक्षादिग्रहत्वाव्यापकत्व प्रकृतपक्षधर्म्मिक प्रकृतसाध्यविधेकानुमितित्व-व्यापकत्वयोर्न्निवेशो व्यर्थ इति चेन्न वह्निमद्ध्रदकालीनपर्वतो वह्निमान्धूमादित्यादौ वह्न्यभाव व्याप्यवद्ध्रदादावतिव्याप्तिः, ह्रदो न वह्निमानिति निश्चयप्रतिबध्यतायां वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छिन्नत्वस्य सत्वात्। न च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-विशेष्यत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितत्वस्य साध्यप्रकारत्वनिष्ठावच्छेदकतायां विवक्षणेनैवातिव्याप्तिवारणसम्भवादिति वाच्यम् ह्रदत्वस्यापि परम्परया पक्षतावच्छेदकत्वात्। न च साक्षात्पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यत्वावच्छिन्नत्वस्य निवेशान्नातिव्याप्तिरिति वाच्यम्। साक्षात्त्वस्य दुर्निर्वचत्वात्। न च पक्षतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदक-रूपवृत्तिविशेष्यत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितत्वस्य निवेशान्नातिव्याप्तिरिति वाच्यम्। जातिर्जातिमज्जातिमती जातित्वादित्यादौ जात्यभाववज्जातेः साध्यासिद्धितया जात्यभावव्याप्यवज्जातेरपि तत्वादिति सत्प्रतिपक्षानात्मके तत्रातिव्याप्तेः। तथाहि जातित्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितजातित्वनिष्ठावच्छेदकताकप्रकारताशालि

बुद्धित्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतायास्तथाविधत्वात्। जातिमज्जातित्वावच्छिन्नप्रकारताया अपि जातित्वावच्छिन्नप्रकारतात्वेन प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वात्। साध्यतावच्छेदक-तापर्य्याप्त्यधिकरणनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकतात्वावच्छिन्नावच्छेदकता निरूपितप्रकारतानिष्ठावच्छेदकतानिरूपितत्वस्य प्रतिबध्यतायां निवेशे ह्रदः काञ्चनमयवह्निमानित्यादौ वह्न्यभावव्याप्यवद्ह्रदादावव्याप्तिः। ह्रदो न वह्निमानिति निश्चयप्रतिबध्यतायां काञ्चनमयत्वनिष्ठावच्छेदकताया अनवच्छेदकत्वेन तस्या लक्षणाघटकत्वात्। यदि निरुक्तस्थले जात्यभावव्याप्यवज्जातेः सत्प्रतिपक्षत्वमभ्युपेयते तदा विशिष्टसाध्यग्रहा-विरोधित्वनिवेशेऽपि तत्राव्याप्तेर्वारणं गीर्वाणगुरूणामप्यशक्यमिति ध्येयम्।

परे तु पर्वतो गुणीयसंयोगेन वह्निमानित्यादौ गुणीयत्वाभाववान् संयोग इति निश्चयप्रतिबध्यतायां वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छिन्नत्वस्य विरहेण गुणीयत्वाभावव्याप्यवत्संयोगात्मकसत्प्रतिपक्षेऽव्याप्तिभिया साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छिन्नत्वस्य निवेशासम्भवात्। काञ्चनमयत्वाभावव्याप्यवद्ध्रदादावतिव्याप्तिवारणाय विशिष्टपक्षसाध्य ग्रहाविरोधित्वनिवेशस्यावश्यकत्वादिति प्राहुः। सन् प्रतिपक्षो, विरोधिपरामर्शो, यस्य परामृश्यमाणस्य हेतोरिति विग्रहेण सत्प्रतिपक्षबोध्यस्य व्यवहारौपयिक-लक्षणन्तु प्रकृतानुमितिविरोध्यनुमितिजननयोग्योपस्थितिप्रतिरुद्धकार्य्यक-साध्यसिद्ध्यौपयिकपरामर्शविषयत्वे सति प्रकृतलिङ्गत्वं, बाधोपस्थितिसमर्थोप स्थितिकालीनसाध्यसिद्ध्यौपयिकपरामर्शविषयत्वे सति प्रकृतलिङ्गत्वम्वा। शब्दो नित्यः श्रावणत्वादित्यत्र शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादित्यत्र च नित्यत्वव्याप्यश्रावणत्ववान् शब्दः, अनित्यत्वव्याप्यकृतकत्वावान् शब्द इति परामर्शद्वयकाले श्रावणत्वादिहेतौ सत्प्रतिपक्षत्वव्यवहारो भवतीति बोध्यमिति संक्षेपः। विशिष्टपक्षे विशिष्टहेतुप्रकारकविशिष्टसाध्यविषयकग्रहत्वव्यापकप्रतिबध्यता निरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयताकधर्मस्वाच्छिन्ना-विषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदक प्रकृतसाध्यव्याप्यतावच्छेदकधर्मघटितान्यतरवान् सिद्धिरिति। स्वरूपासिद्धि पक्षासिद्धिसाध्यासिद्धि हेत्वसिद्धिव्याप्यत्वासिद्धि भेदात् पञ्चविधाऽसिद्धिः। काञ्चनमयह्रदः काञ्चनमयवह्निमान् काञ्चनमय नीलधूमादित्यत्र पञ्चानामुदाहरणं बोध्यम्।

विशिष्टपक्षविशिष्टहेतुग्रहत्वाव्यापकप्रकृतपक्षे प्रकृतहेतुग्रहत्व

व्यापकप्रतिवध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयिताकधर्म्मवान् स्वरूपासिद्धिः। प्रकृत[६७]स्थले, ह्रदो द्रव्यं धूमवत्वादित्यादौ च धूमाभाववद्ध्रदस्य स्वरूपासिद्धित्वाल्लक्षणसमन्वयः कार्यः। धूमाभावव्याप्यवद्ध्रदस्यापि स्वरूपासिद्धित्वान्न तत्रातिव्याप्तिशङ्केति- विशिष्टपक्षग्रहत्वव्यापक-प्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वा-वच्छिन्नविषयिताकधर्मवान् पक्षासिद्धिः। प्रकृतस्थले काञ्चनमयत्वाभाववद्ध्रद, काञ्चनमयत्वा-भावव्याप्यवद्ध्रदादौ लक्षणसमन्वयः कार्यः। विशिष्टसाध्यग्रहत्व व्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयिताकधर्मवान् साध्यासिद्धिः, प्रकृतस्थले काञ्चनमयत्वाभाववद्ध्रदस्य साध्यासिद्धित्वात् तत्र लक्षणसमन्वयः कार्यः। विशिष्टहेतुग्रहत्वव्यापकप्रतिबध्यता निरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयिताकधर्मवान् हेत्वसिद्धिः। प्रकृतस्थले काञ्चनमयत्वाभाववद्धूमादेः स्वरूपासिद्धित्वात् तत्र लक्षणसमन्वयः कार्यः। स्वसमानाधिकरणस्वावच्छिन्नाविषयकप्रतीतिविषयतावच्छेदक प्रकृतसाध्यव्याप्यतावच्छेदकधर्मघटितो धर्मो व्याप्यत्वासिद्धिः। [६८]पर्वतो वह्निमान् नीलधूमादित्यादौ नीलधूमत्वस्य विशिष्टान्तरतथाविधधूमत्वघटितत्वात् व्याप्यत्वासिद्धित्वम्। विशिष्टपक्षविशिष्टसाध्यग्रहत्वाव्यापकप्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्यावगाहि ग्रहत्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपित-प्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वावच्छिन्नविषयिताकधर्मवान् बाधः। ह्रदो वह्निमानित्यत्र, वह्न्यभाववद्ध्रद, ह्रदवृत्तिवह्न्यभाव, ह्रदावृत्तिवह्नि, ह्रदनिष्ठाभावप्रतियोगिवह्निप्रभृति, [६९]बाधादौ, लक्षणसमन्वयः कार्य इति। अथ वह्न्यभावव्याप्यवद्ध्रदादिनिश्चयस्यापि तथाविधबुद्धिविरोधित्वात् तद्विषयेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न। तथाविधग्रहत्व-व्यापकप्रतिबन्धकतानिरूपित प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वस्यैव स्वावच्छिन्नविषयितायां विवक्षितत्वात्। तदभावव्याप्यवत्तानिश्चयस्याप्रतिवध्यत्वात्। तद्विषयेऽतिव्याप्तिविरहात्। न च वह्निव्यापकाभावसाध्यकस्थले बह्निमत्पर्वतादावतिव्याप्तिः। तद्वत्ताबुद्धिं प्रति तद्व्यापकाभाववत्तानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वात्। पर्वतो वह्न्यभावव्याप्यवान् इत्यत्र वह्निमत् पर्वते चातिव्याप्तिः। तद्वत्ताबुद्धिं प्रति तदभावव्याप्यवत्तानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं तथाविधग्रहत्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वे सति तथाविधग्रहत्वव्यापकप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकत्वस्य

स्वावच्छिन्नविषयितायां निवेशात्। सत्प्रतिपक्षनिश्चये प्रतिवध्यत्वविरहेण सत्प्रतिपक्षानिश्चयप्रातिबन्धकत्वस्य पक्षधर्मिकसाध्यवत्तानिश्चये विरहान्नोक्तातिव्याप्तिः। सर्वमन्यत् सामान्यलक्षणवदत्राप्यूहनीयम्, विशेषण व्यावृत्तिरपि पूर्ववदूहनीयेति संक्षेपः।

इति नैयायिक मैथिलराजपण्डित श्रीमद्विश्वनाथशर्म्मकृत लक्षणावलीप्रकाशे अनुमानप्रकाशः समाप्तः।

तत्रोपमितिकरणमुपमानम्। तथाहि कश्चित् पुरुषः गोसदृशो गवय इति वाक्यं श्रुत्वाऽरण्यं जगाम। तत्र गवयं पश्यन्नतिदेशवाक्यार्थं स्मरति। ततश्च गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्याकारकप्रत्यक्षज्ञानं भवति। ततो गवयो गवयपदवाच्य इति बोधस्तस्य भवति। स एव बोध उपमितिः। तत्करणमुपमानम्। तच्चातिदेशवाक्यार्थस्मरणं, व्यापारश्च गोसदृशो गवयपदवाच्य-इत्याकारकप्रत्यक्षात्मको बोध इति संक्षेपः।

इतिनैयायिक-मैथिलराजपण्डितश्रीमद्विश्वनाथशवृकृत-लक्षणावलीप्रकाशे उपमानप्रकाशः समाप्तः।

आकाङ्क्षायोग्यताऽऽसत्तितात्पर्य्यज्ञानपदार्थोपस्थितिव्यापारक-पदार्थधर्म्मिकवृत्तिज्ञानजन्या मितिः शाब्दमितिः, पदज्ञानकरणिका मितिः शाब्दमितिर्वा। प्रयोगहेतुभूतार्थतत्वज्ञानजन्यः शब्दः प्रमाणं, तज्जन्या मितिः शाब्दमितिर्वा।

घटः कर्मत्वमानयनं कृतिरिति वाक्यजविसकलितपदार्थोपस्थितिमूलके मानसबोधेऽतिव्याप्तिवारणायाकाङ्क्षेति। अथवा तत्राकाङ्क्षातिरिक्त-सकलकारणसत्वेऽपि शाब्दानुत्पत्त्यान्वयव्यभिचारवारणायाकाङ्क्षेति। वह्निना सिञ्चतीति वाक्यस्थले तथाविधदोषनिरासाय योग्यतेत्यस्योपादानम्। किञ्च रूपकस्थले मुखं चन्द्र इति वाक्यात् मुखं न चन्द्र इति बोधकाले पदार्थो पस्थितिमूलकाहार्य्यमानसप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय तस्योपादानम्। बिलम्बेनोच्चरितात् घटमानयेत्यादिपदात् तद्दोषवारणायासत्तीति। सैन्धवमानयेत्यादौ, डित्थमानयेत्यादौ, चार्थविशेषप्रमितिसम्पादनाय तात्पर्य्येति। घटादिपदसमवाय-ज्ञानजन्याकाशोपस्थितिमूलकमानसबोधेऽतिव्याप्तिवारणाय वृत्तीति। अथ गामानय गौरस्तीत्यादिवाक्यतोऽपि मानस एव बोधोऽस्त्विति किं शब्दस्य

प्रमाणान्तरत्वस्वीकारेणेति चेन्न। तत्र तत्र गोकर्मकत्वेनानयनं शृणोमि, अस्तित्वेन गां शाब्दयामीत्यनुव्यवसायस्य सर्वानुभविकत्वात्। विषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षं प्रति तादात्म्येन विषयस्य हेतुतया विषयस्य शाब्दस्यातिरिक्तस्यास्वीकारे तादृशानुव्यवसायानुपपत्तिः।

केचित्तु गामानयेति वाक्यजन्यमानसबोधस्वीकारे कारणान्तरेणोपस्थितस्यापि घटदण्डादेः कर्मत्वांशे भानं स्यात्। नचेष्टापत्तिरनुभवविरोधात् घटादिकर्मकत्वेनानयनं शृणोमीत्यनुव्यवसायस्यानुदयादिति प्राहुः।

अथानुमितिरेव साऽस्तु, प्रमित्यन्तरत्वे मानाभावात्। तथाहि गौरस्तीति वाक्यश्रवणानन्तरं, गौरस्ति तावती, अस्तिपदसाकाङ्क्षपदस्मारितत्वात् चक्षुर्वदित्यनुमानादेव तत्सिद्धिरिति चेन्न, विनष्टचक्षुषि व्यभिचारात्। पक्षे स्मृतिविषयत्वाज्ञानदशायामपि शाब्दमतेरानुभविकत्वाच्च। शाब्दं प्रति पदजन्योपस्थितेरेव कारणतया तद्विषयत्वज्ञानस्यानावश्यकत्वादिति दिक्।

यत्पदं विना यस्याननुभावकत्वं भवति, तयोस्तदाकाङ्क्षा, तत्पदार्थे तद्वत्ता योग्यता। एकपदार्थेऽपरपदार्थवाधविरहरूपेति परमार्थः। वक्तुरिच्छा तात्पर्यम्। पदार्थोपस्थितिव्यापारकस्सम्वन्धो वृत्तिः। सा द्विधा, संकेतलक्षणाभेदात्। अथ व्यञ्जनावृत्तेरावश्यकत्वाद् द्विधेत्यसङ्गतिः। तथाहि

गच्छ गच्छसि चेत् कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः।
मपापि जन्मतत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान्।। इत्यत्र

तव गमने मम मरणमवश्यंभावीत्यस्य,

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्म्मृष्टरागोऽधरो
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीड़ागमे,
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।

इत्यत्र दूतीसम्भोगस्य च वाचकलक्षकपदयोरभावात्तयोर्वोधानुपपत्त्या व्यञ्जनावृत्तिः स्वीकार्य्येति चेन्न। तत्र तत्र तयोरनुमित्यात्मकस्य मानसादीच्यबोधस्य वाभ्युपगमादेवानुपपत्त्यादिदोषाणामनवकाशाद् व्यञ्जनावृत्तेरनावश्यकत्वात्।

च बोधद्वयस्वीकाराद्-गौरवमिति वाच्यम्, भवन्मतेऽपि शक्त्या जन्मादिपदात् शाब्दबोधानन्तरं व्यञ्जनावृत्तिज्ञानात् तत्तदर्थोपस्थित्या व्यङ्ग्यार्थबोधोदयेन बोध-द्वयस्वीकारस्यावश्यकत्वादिति।

ननु बोधकतैव वृत्तिरस्तु, विलक्षणसंकेतस्य लक्षणायाश्च वृत्तित्वानभ्युपगमात् द्विधेत्यसङ्गतिरिति चेन्न। गङ्गापदं न तीरवाचकमपि तु तीरसम्बन्धिनीरवाचक-मिति धीदशायां गङ्गायां घोष इति वाक्यात्, घृतपदं न घृतकर्म्मकभक्षणवाचकमिति ज्ञानदशायाञ्च आयुर्वै धृतमित्यादिवाक्याच्च, तीरनिरूपिताधेयतावान्घोष इत्यादिबोधस्य घृतकर्म्मकभक्षणमायुर्ज्जनकमिति बोधस्य चानुभविकत्वात् लक्षणायाः वृत्तित्वमावश्यकमिति। शक्तिभ्रमाद्गाछमाछगगरीत्यादि शब्दानामपभ्रंसानां वृक्षमत्स्यघटादिबोधकतया वृक्षमत्स्यघटादि वाचकत्वापत्तेर्वारणाय सङ्केतस्य वृत्तित्वमवश्यमङ्गीकार्य्यम्। नचेष्टापत्तिः अनुभवविरोधात्, असाधुत्वापत्तेश्च। न च पुण्यजनकत्वस्य तत्र तत्रासत्वान्नापत्तिरिति वाच्यम्। गङ्गापदं गङ्गावाचकमितिवत्तीरवाचकमित्यपि व्यवहारःस्यादतः सङ्केतस्य वृत्तित्वमावश्यकमिति। तत्रेदं पदममुमर्थं बोधयत्विति, अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीच्छा वा, संकेतरूपा वृत्तिः। सा द्विधा, ईश्वराधुनिकसंकेतभेदात्। तत्राधुनिकसंकेतः, परिभाषा, तया चार्थबोधकं पदं, परिभाषिकम्। यथाशास्त्रकारादिसंकेतितं, वृद्धिरादैच, अदेङ्गुणः, यूस्त्र्याख्यौ नदीत्यत्र, वृद्धिगुणाद्यादिपदं, तद्बोध्योऽर्थः परिभाष्यो गौण इत्यभिधीयते। ईश्वरसंकेतः शक्तिस्तया चार्थबोधकं पदं वाचकं, यथा गोत्वादिविशिष्टवाचकं गवादिपदं, तद्बोध्योऽर्थोगवादिर्वाच्यः। स एव मुख्यार्थ इत्यभिधीयते। वाच्यवाचकादिपदे ईश्वरेच्छायाः बोधजनकत्वेन[१] या विषयता सैव धात्वर्थः। आश्रयत्वं कर्तृप्रत्ययार्थः। विषयत्वं विषयित्वं वा द्वितीयार्थः। पदं गां वक्ति गोर्वाचकमित्यादौ गोपदार्थस्य गोर्वृत्तित्वसम्बन्धेन विषयतायामन्वयो, विषयत्वस्य निरूपकत्वसम्बन्धेन धात्वर्थैकदेशे बोधेऽन्वयः, धात्वर्थस्य निरूपितत्वसम्बन्धेनाश्रयत्वेऽन्वयस्तस्य च स्वरूपसम्बन्धेन कर्तरि पदेऽन्वयः। पदेन गौरुच्यते पदस्य गौर्वाच्य इत्यादौ वृत्तित्वं तृतीयार्थः। प्रकारता-वच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितजन्यत्वप्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता-निरूपितबोधप्रकारत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितविषयित्व सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारत्वं, कर्म्मप्रत्ययार्थः। पदस्य निरूपितत्वसम्बन्धेन तृतीयार्थेऽन्वयः, तस्य स्वरूपसम्बन्धेन निरुक्तधात्वर्थेऽन्वयः। धात्वर्थस्य

कर्म्मप्रत्ययार्थैकदेशे प्रकारत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेनान्वयः। कर्म्मप्रत्ययार्थस्य स्वरूपसम्बन्धेन प्रथमान्तार्थेऽन्वय इति। द्वितीयेच्छायाः संकेतरूपत्वे तु ईश्वरेच्छायाः जन्यतावद्बोधविषयत्वप्रकारता–निरूपितविशेष्यत्वं धात्वर्थः। सर्वमन्यत्पूर्ववत्स्वयमूह्यम्[६१]। शक्तिग्रहश्च प्रथमतो व्यवहाराद् भवति ततो व्याकरणादुपमानात्, कोषात्, आप्तवाक्यात्, वाक्यशेषात्, विवृति ततः, सिद्धपदसानिध्याच्च। अतएव

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्यात् व्यववहारतश्च।

वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः, सिद्धपदस्य वृद्धाः।।

इति पठन्ति। तथाहि गामानयेति केनचिन्निपुणेन नियुक्तः कश्चन व्युत्पन्नस्तद्वाक्यतोऽर्थं प्रतीत्यानयनं करोति, तच्चोपलभमानो बालः इदं गवानयनं स्वगोचरप्रवृत्तिजन्यं चेष्टात्वात् मदीयस्तनपानवदित्यनुमाय गवानयनगोचरा प्रवृत्तिः स्वविषयधर्म्मिककार्य्यताज्ञानजन्या प्रवृत्तित्वात् मदीयप्रवृत्तिवदिति। प्रवृत्तेर्गवानयनधर्म्मिककार्य्यताज्ञानजन्यत्वं प्रसाध्य, गवानयन–गोचरकार्य्यताज्ञानमसाधारणहेतुकं कार्य्यत्वात् घटवदित्येवमनुमिन्वानः, समुपस्थितत्वात् लाघवाच्च, श्रुतवृद्धवाक्यमेव तदसाधारणत्वेन कल्पयति। तदनन्तरं च गवादिपदानां प्रत्येकमावापोद्वापेन गवादिबुद्धौ जनकत्वमवगत्यानति–प्रसक्तये गवादिपदस्यैव तदनुकूलत्वं कल्पयति। पश्चाद्व्याकरणाच्छक्तिग्रहो, यथा कर्म्मणि द्वितीया, कर्तरि परस्मैपदमित्याद्यनुसाशनात् कर्म्मत्वादौ द्वितीयादेः शक्तिग्रहः क्वचिदुपमानाच्छक्तिग्रहो, यथा गवयादिपदशक्तिधीसाचिव्येन गोसादृश्यातिदेशवाक्याद् गवयपदवाच्यत्वबोधोत्तरं गवयत्वजात्यवच्छिन्ने गोसादृश्यग्रहात् गवयो गवयपदवाच्य इत्याकारक इति। क्वचित्कोषाच्छक्तिग्रहो, यथा।

गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति।

शीतं गुणे तद्वदर्थाः सुशीमः शिशिरो जडः।।

चूर्णे क्षोदः समुत्पिञ्जपिञ्जलौ भृशमाकुले।

इत्यादिकोषेभ्यः श्वेतादौ शुक्लादिपदस्य, क्वचिदाप्तवाक्याद्यथा श्रोतव्यो मन्तव्य इत्यादिश्रुत्या श्रुधातोः शाब्दबोधे, क्वचिद्वाक्यशेषाद्यथा यवपदस्य कङ्गु, प्रभृतौ म्लेच्छादीनां दीर्घशूकविशिष्टे च शिष्टानां व्यवहारदर्शनादेकमात्रे

शक्तेनिर्णयासम्भवात्। नानार्थत्वस्यान्याय्यत्वात्। यवमयश्चरुर्भवतीति–श्रुतौ यवपदस्य सन्देहे,

वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम्।

मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः।।

इति विध्यर्थाकाङ्क्षया प्रवर्तमानवाक्यशेपाद् दीर्घशूक एव यवपदस्य शक्तिग्रहः। यथा वा स्वाराज्यकामोऽग्निष्टोमेन यजेतेत्यादि विधिशेपीभूतेभ्यः

यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।

अभिलाषोपनीतञ्च[७२] तत्सुखं स्वःपदास्पदम्। इत्यादिवाक्येभ्यः–स्वरादिपदस्य, क्वचिद्विवरणादपि यथा पचति पाकं करोति, गामानयति गवानयनं करोतीत्यादौ तुल्यार्थकवाक्यात् कृत्यादौ तिङादेः, क्वचित्सिद्धपदसान्निध्या द्यथानीरूपस्पर्शवान् वायुः निस्पर्शमूर्तत्ववन्मन इत्यादौ रूपरहितस्पर्शवति वायुपदस्य, स्पर्शरहितमूर्तत्ववति मनः पदस्य। प्राचीनमते वायुत्वजातेः सर्वमते मनस्त्वजातेरतीन्द्रियतया स्वरूपतस्तदवच्छिन्नस्यानुपस्थित्या तत्र शक्तिग्रहायोगात्। यथा वा 'सत्कृत्यालङ्कृतां कन्यां ददानः ककुदः स्मृत' इत्यतः कन्यादात्रादिषु ककुदपदस्य शक्तिग्रह इति। यत्तु सहकारतरौ मधुरं रौति पिक इत्यतो मधुररवकर्तरि पिकपदस्य शक्तिग्रह इति तस्योदाहरणमिति। तत्तुच्छं, तिङर्थधर्म्मिणि नामार्थस्यानन्वयात्, लाघवाच्च प्रत्यक्षसिद्धकोकिलत्वजात्यवच्छिन्ने शक्तिस्वीकारात्। ननु व्यवहारादुक्तरीत्या शक्तिज्ञानेऽपि कार्य्यतावाचिपदस्य तत्साकाङ्क्षपदस्यैव वा शाब्दसमान्यं प्रति हेतुत्वमवधारितं बालैरिति कोषादितस्तेषां शाब्दानुदयात्, कथं कोषादितः शक्तिग्रह इति चेन्न प्रथमतो लिङादिपदे बोधजनकत्वस्यावधारणेऽपि पश्चात् पुत्रस्ते जातः, पुत्री ते गर्भिणी जाता, मा रुदः शतं सहस्रं वा मधुरं वा तव दास्यामीत्यादिवाक्यश्रवणादतिहर्षान्वितं पुरुषं पश्यन्त आनन्दजनकस्य शाब्दानुभवातिरिक्तस्याभावात्। लिङादिघटितवाक्यस्यापि शाब्दहेतुत्वमवधारयन्ति बालाः। न च तत्रासंसर्गाग्रहमात्रमिति वाच्यं लिङादिघटितवाक्यस्थल इव तत्रापि प्रवृत्तिदर्शनात्। कथमन्यथा प्रतीहाराय भूषणवसनादिदानं संघटत इति।

अथेश्वरसङ्केतस्य शक्तित्वे घटपदं घटविषयकबोधजनकत्व–प्रकारकभगवदिच्छावदिति ज्ञानस्य, तादृशेच्छीयविशेष्यतावदिति ज्ञानस्य,

घटपदजन्यबोधविषयत्वप्रकारतानिरूपितभगवदिच्छीयविशेष्यतावान् घट इति ज्ञानस्य वा, घटोपस्थितिद्वारा घटत्वप्रकारकशाब्दं प्रति हेतुत्वं वाच्यं, तच्च भगवद्विद्वेषिणां मीमांसकानां न सम्भवति, तैरीश्वरानभ्युपगमादिति चेन्न। कारणतावच्छेदककोटावीश्वरीयत्वस्यानुपादेयत्वात्। तादृशकारणता मीमांसकानामपि सिद्धा। न च न्यायनये ईश्वरसंकेतस्य सन्मात्रविषयकतया गाछमाछशब्दस्यापि वृक्षमत्स्यवाचकत्वं साधुत्वञ्च स्यात्। गाछादिशब्दे शक्तिभ्रमेण वृक्षादिबोधजनकत्वस्य विद्यमानतया भगवदिच्छायां तेषां तेन रूपेण विषयत्वात्। एवं गङ्गादिपदे तीरादिवाचकत्वं स्यात् तीरादिबोधजनकत्वस्य गङ्गादिपदे सत्वादिति वाच्यं तद्विषयकबोधजनकतात्वावच्छिन्नप्रकारता निरूपितभगवदिच्छाविशेष्यत्वस्य तद्वाचकत्वत्वात्। तथाच गाछपदं वृक्षं बोधयत्वित्याकारकेच्छाया विरहेणातिप्रसङ्गविरहादिति। गङ्गापदं तीरं बोधयत्वित्याकारक भगवदिच्छाविरहान्न तीरवाचकत्वस्यापत्तिः। एवं तत्पदजन्यबोधविषयतात्वावच्छिन्नप्रकारता-निरूपितभगवदिच्छाविशेष्यत्वस्य तद्वाच्यतारूपतया न तीरादौ गङ्गादिपदवाच्यत्वापत्तिरिति। वस्तुतस्तु तदर्थप्रत्यायनेच्छया भगवदुच्चरितत्वं तद्वाचकत्वं, अपभ्रंशादयो न भगवदुच्चरिता। गङ्गापदञ्च न तीरप्रत्यायनेच्छया भगवदुच्चरितमिति न तत्र तत्र तत्तद्वाचकत्वापत्तिरिति। नन्वस्मदाद्युच्चरिते गङ्गादिपदेऽव्याप्तिरिति वाच्यं तादृशभगवदुच्चरित वृत्यानुपूर्वीमत्वस्य वाचकत्वात्। न चायुर्वै घृतमित्यत्रायुः शब्दे आयुर्ज्जनकवाचकत्वापत्तिः, घृतपदे च घृतकर्म्मकभक्षणवाचकत्वापत्तिः, तयोर्वेदघटकत्वेन तादृशार्थप्रत्यायनेच्छया भगवदुच्चरितत्वादिति वाच्यं तदर्थप्रत्यायनेच्छयेत्यस्य तदर्थविषयकत्व-विशिष्टबोधजनकतात्वावच्छिन्नप्रकारताशालीच्छयेत्यर्थपरत्वात्। तत्रायुः पदं बोधजनकं भवतु, बोधश्चायुर्ज्जनकविषयको भवत्वित्याकारक-भगवदिच्छाभ्युपगमेनापत्त्यसम्भवात्। अथ तथापि आधुनिकदेवदत्तादिपदेऽव्याप्तिः, द्वादशेऽह्नि पिता नाम कुर्य्यादित्यत्र नामपदस्य देवदत्तादिपरत्वेऽपि देवदत्तेत्यादिस्वरूपाणां भगवदनुच्चरितत्वादिति चेन्न द्वादशदिवसाधिकरणक-पितृकर्तृकसङ्केतस्य पितृकर्तृकत्वेनाधुनिकत्वादाधुनिकसङ्केतस्य परिभाषात्वात्। देवदत्तादिपदं नदीवृद्ध्यादिपदवत् पारिभाषिकमेव। तथाच वाचकत्वलक्षण-स्यालक्ष्यतया तत्राव्याप्तिशङ्काया अप्यभावादिति। किञ्च

प्रवाहो नादिमानेष न विजात्येकशक्तिमान्।

तत्वे यत्नवता भाव्यमन्वयव्यतिरेकयोः।।

इत्यनेन कुसुमाञ्जलिप्रबन्धे स्वयमेव संसारप्रवाहस्यानादित्वाभिधानात्।

सादिपदस्यालीकत्वादव्याप्तिशङ्कैव नोदेतीति। अन्वयतात्पर्य-योरन्यतरानुपपत्तिपूर्विका लक्षणा भवति। तत्राद्या गङ्गायां घोष इत्यादौ, द्वितीया यष्टीः प्रवेशयेत्यादौ प्रसिद्धा। सा च जहत्स्वार्थाजहत्स्वार्थनिरूढाधुनिकगौणीलक्षित लक्षणाभेदादनेकविधा। तत्राद्या स्वशक्यतानवच्छेदकरूपेण स्वाशक्यबोधिका, गङ्गायां घोष इत्यादौ तीरत्वप्रकारेण तीरबोधिका। द्वितीया च स्वशक्यतानवच्छेदकरूपेण स्वाशक्यस्वशक्योभयबोधिका, छत्रिणो यान्तीत्यादौ छत्रधरतद्भिन्नगतहुत्वप्रकारेण छत्रधरतद्भिन्नबोधिका, अनुमितिकारणीभूताभाव-प्रतियोगियथार्थज्ञानविषयत्वमित्यत्र प्रकृतपक्षसाध्यहेतुकानुमितिनिष्ट-कार्य्यतानिरूपकसम्बन्धित्वेनानुमितितत्कारणबोधिका च। तृतीया चानादितात्पर्य्यमूलिका, नीलो घट इत्यादौ नीलप्रकारेण नीलबोधिका। चतुर्थी च पटस्तन्तुजन्य इत्यादौ पटत्वप्रकारेण पटबोधिका। पञ्चमी च सादृश्यप्रकारेण सदृशबोधिका, सिंहो माणवक इत्यादौ[73]। अपरा अरविन्दमकरन्दलुब्धो गुञ्जति द्विरेफ इत्यत्र, स्थातुं गन्तुं द्वयमपि सखेनैव शक्तो द्विरेफ इत्यादौ द्विरेफबोध्यभ्रमरबोधिकेति।

मीमांसकास्तु ज्ञाने पदानां शक्तिर्नत्वर्थे। तद्वाचकत्वं च तज्ज्ञानशक्तत्वम्, तच्च तद्विषयकत्वावच्छिन्नशाब्दधीजनकतावच्छेदकधर्म्मवत्वम्। स च धर्म्मो वह्न्यदिनिष्ठादाहानुकूलशक्तिवत्पदार्थान्तरमेव। एतावान् विशेषो, दाहानुकूलाशक्तिर्ज्ञातापि कार्य्यानुकूला, एषा ज्ञातैव कार्य्यानुकूला, लाक्षणिकञ्च नानुभावकमिति न तत्र शक्तिः। घटपदसमभिव्याहृतपदार्थनिष्ठविषयकत्वं न घटपदशक्तिजन्यतावच्छेदकम्। तस्य पदान्तरनिष्ठशक्त्यवच्छिन्नजनकता-निरूपितजन्यतावच्छेदकत्वादिति न घटादिपदे पदान्तरार्थवाचकत्वापत्तिः[74]। मितिमातृविषयकत्वमपि न घटादिपदजन्यतावच्छेदकं, तस्य ज्ञानसामग्री-प्रयोज्यत्वात्।

अथ घटविषयकत्वस्य प्रत्यक्षसाधारणत्वेनातिप्रसक्ततया जन्यतानव च्छेदकत्वात्। तदच्छिन्नकार्यत्वाप्रसिद्ध्यासंभव इति चेन्न घटादिविषयकत्व स्यातिप्रसक्तत्वेऽपि घटविषयकत्वशाब्दत्वोभयत्वोभयस्यानति-

प्रसक्तत्वात्तदुभयस्यैव कार्य्यतावच्छेदकत्वेन तदवच्छिन्नकार्य्यत्वस्य लक्षणे निवेशात्। न च घटपदजन्यकलसपदजन्यबोधयोः परस्परव्यभिचारेण कारणानन्तर्य्यस्य कार्य्यतावच्छेदककोटावश्यं प्रवेशनीयतया प्रयोजनाभावेन विषयस्य तत्रानिवेशात् तद्विषयकत्वावच्छिन्नकार्य्यत्वाप्रसिद्धिरिति वाच्यम्। घटकलसादिपदानामेकरूपेण घटविषयकशाब्दानुकूलशक्तिमत्वेनैव कारणात्वान्न व्यभिचारः। न च तथापि लक्षणाग्रहेण शक्तिभ्रमाद्वा पटपदजन्यघटादिबोधे व्यभिचार इति वाच्यम्। एतन्मते लाक्षणिकस्याननुभावकत्वादन्यथाख्यात्यनभ्युपगमाच्च।

अथ तद्विषयकशाब्दानुकूलशक्तिमत्वेन पदस्य हेतुत्वे भावीभूतपदज्ञानाच्छाब्दानुपपत्तिस्तयोः शाब्दप्रागविद्यमानत्वात्। कारणस्य कार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणसत्वनियमादिति चेन्न। एतन्मते पदानां नित्यत्वात्। न च शाब्दधाराप्रसङ्ग इति वाच्यम्। ज्ञानविषयतापन्नशक्तिमत्वेन पदस्य हेतुत्वात्। न च पुरुषान्तरीयज्ञानदशायां पुरुषान्तरस्य शाब्दप्रसङ्ग इति वाच्यम्। तत्पुरुषीयत्वस्य तत्र तत्र निवेशात्। न च शब्दस्याकाशधर्म्मत्वाच्छाब्दहेतुत्वं कथमिति वाच्यम् कालिकविशेषणतया कार्य्यकारणभावाभ्युपगमात्। कार्य्यकारणयोः सामानाधिकरण्यसम्भवात्। अस्तु वा तज्ज्ञानशक्त्या तस्य तद्वाचकत्वम्। तथाच घटविषयकशाब्दम्प्रति घटविषयकशाब्दानुकूलशक्तिमत्वेन घटपदज्ञानानां हेतुत्वात्, कार्य्यकारणयोर्म्मातृनिष्ठत्वात्, तयोर्वैयधिकण्याभावः। अथात्र तद्वाचकत्वं यदि तद्विषयकशाब्दानुकूलशक्तिमज्ज्ञानविषयत्वं, तर्हि घटविषयकशाब्दानुकूलशक्तिमद्घटमानयेति वाक्यज्ञानविषयत्वस्यामादिपदे सत्वेनामादिपदे घटवाचकत्वापत्तिः। न च तद्विषयकशाब्दानुकूलशक्तित्वव्यापकविषयितानिरूपकत्वस्य तद्वाचकत्वत्वादमादिपदविषयितायां निरुक्तव्यापकत्वाभावेनापत्तिविरहादिति वाच्यम् ज्ञानभेदेन विषयितायाः भेदपक्षे चासम्भवप्रसंगादिति चेन्न। स्वनिरूपकतावच्छेदकानुपूर्व्यवच्छिन्ननिरूपितविषयितासम्बन्धेन व्यापकत्वविवक्षणादसम्भवविरहात्। न च घटविषयकशाब्दानुकूलशक्तिमत्वस्य घटपदज्ञान इव कलसपदज्ञानेऽपि सत्वेन तत्र घटपदविषयकत्वस्य विरहेणासम्भवस्तदवस्थ एवेति वाच्यं तद्विषयकशाब्दानुकूलशक्तिर्य्यद्रूपावच्छिन्ननिरूपितविषयिताव्यापिका तद्रूपवत्वस्य तद्वाचकत्वत्वात्। न च घटपदविषयकत्वस्यानुमितावपि सत्वेन तत्र शक्त्यभावादसम्भवस्तदवस्थ एवेति वाच्यं तत्रापि तच्छक्तिस्वीकारात्। कथमन्यथा

न्यायनये भावीभूतपदज्ञानाच्छाब्दबोधः। तयोस्तत्र श्रावणप्रत्यक्षाभावात्।

वस्तुतस्तु[७५] तद्विषयकशाब्दानुकुलशक्तिव्यापकस्वावच्छिन्नविषयिताकरूपवत्वं तत्। व्यापकता च स्वरूपस्वनिरूपकपदार्थकपदनिरूपितविषयित्वान्यतरसम्बन्धेन। सम्बन्धघटकस्वपदं विषयितापरं, स्वावच्छिन्नेत्यत्र स्वपदं घटपदत्वादिपरमिति घटपदकलसपदयोरानुपूर्वीभेदेऽपि न क्षतिः। पदद्वये घटार्थकत्वस्य सत्वादिति वदन्ति। तच्चिन्त्यम्, शक्यार्थोपस्थितिद्वारा शक्तपदस्येव लक्ष्यार्थोपस्थितिद्वारा लक्षकस्याप्यनुभावकत्वात्। शक्तपदस्यानुभावकत्वं लक्षकपदस्याननुभावकत्वमित्यत्र विमगमकस्यादर्शनात्। गामानयेत्यादाविव रजतादिपरकद्रव्यपदघटितद्रव्यमानयेत्यादावपि रजतानयनादौ प्रवृत्तिदर्शनात्। नहि सामान्यधर्मावच्छिन्नवाचकपदस्य विशेषधर्मावच्छिन्ने शक्तिरपि तु लक्षणैवेति सामान्यधर्मावच्छिन्नवाचकद्रव्यपदस्य रजतत्वादिविशिष्टानुभावकतया, तत्र रजतत्वावच्छिन्नवाचकत्वापत्तिः। न च लाक्षणिकपदघटितवाक्यघटकशक्तपदस्यैव स्वार्थस्येव स्वार्थान्वितलक्ष्यार्थस्यानुभावकत्वस्वीकारात् लाक्षणिकस्योपस्थापकत्वेऽप्यननुभावकत्वापत्तिरिति वाच्यम्। तत्रैव तद्वाचकत्त्वापत्तेः। नचोपस्थापकत्वे सत्यनुभावकत्वस्य तद्वाचकत्वत्वान्नापत्तिरिति वाच्यं, शक्तपदाघटितधूमादित्यादौ, नीलविशिष्टपरनीलपदघटितान्नीलादित्यादौ च, धूमादिपदस्य धूमज्ञाने, पञ्चम्याश्च ज्ञाप्यत्वे, लाक्षणिकतया तत्र गत्यभावात्। न च लक्ष्यार्थस्य शाब्दबोधे न प्रवेशः, समभिव्याहृतपदार्थे उपस्थितस्य तस्यासंसर्गाग्रह मात्रं फलमिति वाच्यं, विनिगमकस्य दुर्लभत्वात्। तदुपरागेण शृणोमीत्यनुव्यवसायानुपपत्तेश्च। नचेष्टापत्तिः विधेयोपरागेणैव तथाप्रत्ययात्। न विधौ परः[७६] शब्दार्थ इति जैमिनिसिद्धान्तादिति वाच्यम्। मञ्चाः क्रोशन्तीत्यादौ, यष्टीःप्रवेशयेत्यादौ च, पूर्वाननुभूतस्य मञ्चस्थस्य यष्टिधरस्य च स्मरणासम्भवात्। स्मृत्यनुभवयोः समानविषयकत्वेन कार्यकारणभावात्। न चानुपस्थितस्य कथं शाब्दे भानं, कारणीभूतायाः उपस्थितेरभावादिति वाच्यम्। समानप्रकारकत्वेन कार्यकारणभावमभ्युपगच्छतां मीमांसकनां योग्यतावलेनापूर्वस्य भानमिव निरुक्तलक्ष्यार्थस्यापि समानधर्म्मप्रकारेणोपस्थितिसहकृतयोग्यतावलेन भानसंभवादिति। किञ्च निराकांक्षवाक्यजन्यशाब्दबोधवारणाय तत्तदर्थान्विततत्तदर्थविषयकशाब्दबोधं प्रति तत्तत्पदसाकांक्षतत्तत्पदत्वेन

हेतुत्वस्यावश्यं वक्तव्यतया तद्विषयकशाब्दानुकूलशक्तिमत्वेन पदस्य, तज्ज्ञानस्य वा हेतुतायां मानाभावात् गौरवप्रसंगाच्चेत्यन्यत्र विस्तरः।

संयोगासमवेतसंयोगासमवायिसमवेतवत्कर्म। तच्च पञ्चविधम् उत्क्षेपणादिभेदेन। तत्राधोदेशविभागोर्ध्वदेशसंयोगजनकं कर्म उत्क्षेपणम्। ऊर्ध्वदेशविभागाधोदेशसंयोगजनकं कर्म अपक्षेपणम्। अग्रदेशविभागमूलदेशसंयोगजनकं कर्म आकुञ्चनम्। मूलदेशविभागाग्रदेशसंयोगजनकं कर्म प्रसारणम्। उत्क्षेपणाद्याकुञ्चनञ्च प्रयत्नजमिष्टम्। न चेत् गमनस्यापि प्रसङ्गात्। अप्रयत्नजं कर्म गमनम्। ननु पञ्चैव कर्माणीति नोपपद्यते, भ्रमणादीनां सत्वादिति चेन्न भ्रमणादयो गमनविशेषा इत्युक्तं शास्त्रकृद्भिरिति।

कर्म निरूपयति **संयोगासमवेतेति** संयोगत्वं गुणत्वं सत्तां चादाय संयोगादावतिव्याप्तिवारणाय **संयोगासमवेतेति** चरमसमवेतविशेषणम्। द्रव्यत्वादिकमादायातिव्याप्तिवारणाय **संयोगासमवायिसमवेतेति**। संयोगासमवायिक्रियासमवेतक्रियात्वजातिमादाय लक्षणसमन्वयः। वस्तुतस्तु संयोगासमवेतोत्क्षेपणापक्षेपणसमवेतवत्कर्म। तेनोत्क्षेपणत्वादिकमादायानेकत्वापत्त्यादिदोषाणामनवकाशः। उत्क्षेपणत्वेऽपक्षेपणवृत्तित्वविरहात्। क्रियात्वे चोभयसमवेतत्वस्य सत्वात्, तमादायलक्षणसमन्वयः। यद्वा संयोगासमवायिसमवेतप्रत्यक्षजातिमत्वे सति संयोगभेदवत्कर्मेत्युक्तौ नोक्तदोषाणामवकाश इति। [77]क्रियात्वजातिश्च प्रत्यक्षसिद्धा, क्वचिदप्यनुपलब्धिविरहात्।

कर्म विभजते **तच्चेति**, तत् कर्म, **पञ्चविधं** पञ्चप्रकारकमित्यर्थः। आदिपदेनोत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनादीनां परिग्रहः। इदानीं प्रत्येकमुत्क्षेपणादिकं निरूपयति **तत्रेति**। तत्र तेषुमध्ये, अन्यत्स्पष्टम्। गमनभेदमुत्क्षेपणादौ दर्शयति **उत्क्षेपणाक्षेपणेति**। नन्वेतावता गमनस्य कथं वारणं, गमनस्यापि तद्रूपत्वादित्यत आह **प्रयत्नेति**। इष्टमभिप्रेतमित्यर्थः। तथाच गमनं न प्रयत्नजन्यमन्यथा रथो गच्छतीति वाक्यस्यायोग्यत्वप्रसंगात्। रथस्याचेतनत्वादिति। गमनं न प्रयत्नजन्यमुत्क्षेपणादिकन्तु प्रयत्नजन्यमिति

प्रयत्नजाप्रयत्नजभेदेन गमनभेदस्योत्क्षेपणादौ सत्वान्न गमनस्य तत्स्वरूपत्वमिति भावः। लोष्टमुत्क्षिपति देवदत्त इत्यत्राधोदेशविभागजनकोर्ध्वदेशसंयोगजनकव्यापारजनकप्रयत्नः क्षिपधात्वर्थः। लोष्टपदोत्तरद्वितीयाविभक्तेर्वृत्तित्वमर्थः। तस्य व्यापारेऽन्वयः। लोष्टस्य द्वितीयार्थवृत्तित्वेऽन्वयः। धात्वर्थस्याख्यातार्थाश्रयत्वे, आश्रयत्वस्य चैत्रेऽन्वयः। एवं चाधोदेशविभागजनकोर्ध्वदेशसंयोगजनकलोष्टनिरूपितवृत्तितावद्व्यापारजनकप्रयत्नवान् देवदत्त इति शाब्दबोधः।

कर्मणः पूर्वोक्तपञ्चविधत्वमाक्षिपति **नन्विति**। भ्रमणादीनामित्यत्रादिपदेन रेचनस्यन्दनोर्ध्वज्वलनतिर्य्यग्गमनानां परिग्रहः। तथाच दशधा भिद्यते कर्मेत्येव वक्तुमुचितं, पञ्चैवेत्यसंगतमिति भावः। समाधत्ते **भ्रमणादयो गमनविशेषा इति**। तथाच गमनमध्ये भ्रमाणादीनामन्तर्भावान्न पञ्चैवेत्यसंगतिरिति।

ननु भ्रमणादीनां विनिगमकाभावात्प्रयत्नजन्यतया गमनानन्तर्भाव इति चेन्न भ्रमति चक्रं, वायोर्भ्रमणं, भ्रमतिवायुरित्याद्यचेतने प्रयोगदर्शनात् तेषामप्रयत्नजत्वात्। अत्र प्राचीनानां सम्मतिमाह **इत्युक्तमित्यादिना**।

स्वाश्रयविभागपूर्वकोर्ध्वदेशसंयोगजनककर्मत्वमुत्क्षेपणत्वम्। अभिघातजन्यत्वे सत्यधोदेशसंयोगजनककर्मत्वमपक्षेपणत्वम्। अविनश्यद्द्रव्यान्योन्यावयवाभिमुखसंयोगजनककर्मत्वमाकुञ्चनत्वम्। अविनश्यद्द्रव्यान्योन्यावयवानभिमुखभूयोदेशाभिमुखसंयोगजनककर्मत्वम् प्रसारणत्वम्, एतच्चतुष्टयकर्मान्यकर्मत्वं गमनत्वम्। अतएव भ्रमणादीनां गमनेऽन्तर्निवेश इति भावः। वादिविनोदे[78] शंकरमिश्रास्तु नित्यावृत्तिविभुवृत्त्यवृत्तिपृथिवीमात्रवृत्त्यवृत्तिजातिः कर्मत्वं तद्योग्यं कर्म इत्याहुः।

समवेतरहितसर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणं समवेतं सामान्यम्।

सामान्यं निरूपयति **समवेतेति**। संयोगे द्वित्वादौ चातिव्याप्तिनिरासाय **रहि तान्तं** समवेतविशेषणं, विशेषेऽतिव्याप्तिवारणाय **सर्वेति**। तथाच[79] विशेषस्यैकव्यक्तिमात्रवृत्तित्वेन सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यविरहान्नातिव्याप्तिरितिभावः। समवाये, अभावे चातिव्याप्तिवारणाय **समवेतेति**। तयोरसमवेतत्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः। वस्तुतस्तु समवेतपदं,

सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यघटकवृत्तितायां समवाय-सम्बन्धावच्छिन्नत्वलाभार्थकम्। अतो न तद्वैयर्थ्यशंकावकाशः। अन्यथा समवायेनान्योन्याभावसामानाधिकरण्यस्य विशेषव्यावृत्त्यर्थमवश्यं वक्तव्यतया तेनैवाभावसमवाययोर्व्यावृत्तिसंभवात्समवेतपदस्य वैयर्थ्यप्रसङ्ग इति।

केचित्तु नित्यमनेकसमवेतं सामान्यमित्याहुः, तच्चिन्त्यम्। नित्यत्वस्य गुरुशरीरतया गौरवप्रसङ्गात्, विभुद्वयसंयोगस्वीकारे संयोगेऽतिव्याप्तेश्च। तच्च सामान्यं द्विविधं, परमपरं च। द्रव्यादित्रिकवृत्तिसत्ता परसामान्यपदेनोच्यते। सत्ताभिन्नद्रव्यत्वादिजातिरपरसामान्यशब्देनोच्यते। अयं विशेषः सत्ता परैव। घटत्वादिकमपरमेव। द्रव्यत्वादिकं तु परमपरञ्चेति। ननु परत्वापरत्वयोर्विरुद्धत्वात्तयोरेकत्र कथं समावेश इति चेन्नापेक्षिकयोर्द्वयोरविरोधित्वात्। यदपेक्षया यस्य व्यापकत्वं तदपेक्षया तस्य परत्वं, यदपेक्षया यस्य व्याप्यत्वं तदपेक्षया तस्यापरत्वम्। इत्थं च सत्तासकलजात्यपेक्षया व्यापिकेति परैव। द्रव्यत्वादिकजातिस्तु पृथिवीत्वापेक्षया व्यापिकेति पृथिवीत्वापेक्षया परा, सत्ताऽपेक्षया व्याप्येति सत्तापेक्षयाऽपरा। घटत्वादिजातिश्च न कस्याप्यपेक्षया व्यापिकेति साऽपरैवेति।

अथात्र **सौगताः** स्वलक्षणमेव परमार्थं मन्यमाना, नाकृतिसद्भावमनुमन्यन्ते। तथाहि

पृथक्त्वे व्यक्तितोजातिर्दृश्यते पृथगेव सा।
अभेदे व्यक्तिमात्रं स्याद्द्विधा चेन्न विरोधतः।।

नहि सैव ततोऽन्याऽनन्या च सम्भवति। विरुद्धत्वादभेदभेदयोः। यदि च भिन्ना जातिस्तदा सा सर्वगता व्यक्तिष्वेव वा। न तावत् सर्वगतत्वमन्यत्रानुपलब्धेः। व्यक्तौ चेद्व्यक्तावुत्पन्नायां तस्मिन्देशे प्रागसती कथं तस्यामुपलभ्यते। न च तत्रोत्पद्यते, नित्याया उत्पत्त्ययोगात्। न च व्यक्त्यन्तरादागच्छति, अमूर्तत्वात्। तस्मिंश्च व्यक्त्यन्तरेऽनुपलब्धिप्रसंगात्। नचांशेनागता, अंशेन च तत्रैव स्थितेति शक्यं वक्तुं, निरंशत्वात्। एवं व्यक्तिनाशेन च तत्रैव पश्चादवस्थितानुपलब्ध्या सापि विनशिष्यति। न चान्यत्र याति, अमूर्तत्वात्। व्यक्त्यन्तरे च पूर्वमेवावस्थिता जाति, रिति पुनःप्रवेशे द्विगुणोपलभ्येत। यथाहुः

न याति न च तत्रासीदस्तिपश्चान्न चांशवत्।

जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसनसन्ततिः।।

व्यक्तौ च वर्तमाना यद्येकस्यां व्यक्तौकार्त्स्न्येन वर्तेत, तदा व्यक्त्यन्तरेषु न स्यात्। नह्येका सती युगपदनेकत्र कार्त्स्न्येन वर्तितुं शक्नोति। न चावयवतो वर्तते, निरवयवत्वात्। कथं च नानाविधास्वतीतानागतवर्तमानासु व्यक्तिष्ववयवतो वृत्तिः संभाव्येत। व्यक्तौ च वर्तमाने इहप्रत्ययमनुभवेत्। न चेह गोत्वमिति कस्यचित् प्रतीतिरस्तीत्याहुस्तत्र जातिर्व्यक्तिभिन्नैव। उपलब्धिश्च तस्याः व्यक्तिद्वारैव। यथा रसालादिमाधुर्य्यादे रसालद्वारैवोपलब्धिर्न्न तु स्वातन्त्र्येण। तथा जातेरपि व्यक्तिद्वारा व्यक्तावेवोपलब्धिः। न च गुणगुणिनोरभेद इति वाच्यम् रसालमाधुर्य्यादेश्चाक्षुषत्वापत्तेः, रसालाभेदात्। तस्मात्तद्गतधर्मस्य तद्द्वारेणैव तत्रोपलब्धिर्न्नान्यत्रेत्यवश्यं वक्तव्यम्। वक्तव्यश्च गुणगुणिनोः क्रियाक्रियावतोः जातिव्यक्त्योश्च भेद इति। घटस्य रूपं, चैत्रस्य ज्ञानं, चैत्रस्य क्रियेतिवत्, घटत्वं घटः घटो रूपं, ज्ञानं चैत्रः, क्रिया चैत्र, इत्यादिप्रत्ययस्यासत्वात्। एवञ्च जातिर्न्नोत्पद्यते, न गच्छति, नायाति, नित्यत्वात्, अमूर्तत्वात्, विभुत्वाच्च। व्यक्तेः संस्थानस्य च जात्यभिव्यञ्जकत्वादुत्पन्नघटे घटत्वं ज्ञायत इति। अतएवाकृतिग्रहणाजातिरिति **फणिना** यदुक्तं, तदपि साधु संगच्छते। आकृतिग्रहणेत्यस्याकृतिज्ञानजन्यज्ञानविषयेत्यर्थः। किञ्चोपदेशात् घटैकज्ञाने जातेऽप्युपदेशान्तरं विना घटान्तरज्ञानं न स्यात्, व्यवहारलोपप्रसंगाच्चेति घटत्वमवश्यमभ्युपगन्तव्यम्। तथाच घटत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या निखिलघटज्ञानं प्रथमघटज्ञानानन्तरमुत्पद्यत इति न व्यवहारलोपावसरः। किञ्चायं घट इत्यादिप्रत्ययानामनुगताकारत्वं विषयस्यानुगतत्वं विना कथं संभवति। विषयानुगमं विना प्रतीतेरनुगतत्वासंभवात्। स चानुगतो विषयो, घटत्वमेवेत्यन्यत्र विस्तरः।

गगनत्वादिकन्तु न जातिर्व्यक्तेरभेदात्। तथाचोक्तमाचार्यैः

व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं संकरोऽथानवस्थितिः।
रूपहानिरसंबन्धो जातिबाधकसंग्रहः।। इति।

व्यक्तेरभेद इति, व्यक्तेराश्रयस्याभेद, एकत्वम्, तथाच वस्तुविशिष्टत्वं जातिबाधकं, वस्तुवैशिष्ट्यञ्च स्ववृत्तित्वस्वभिन्नावृत्तित्वोभयसंबन्धेन। स्वं वस्तुपरं, अथवा अभेदस्तादात्म्यं, तच्चासाधारणो धर्मः, असाधारणत्वञ्चै कमात्रवृत्तित्वं,

एकमात्रवृत्तित्वञ्च स्वप्रतियोगिवृत्तित्वस्वसामानाधिकरण्योभयसंबन्धेन भेदविशिष्टं यद्यत्तत्तद्भेदकूटवत्वं जातिबाधकमिति। तुल्यत्वं परस्परव्यापकत्वम्। तथाच घटत्वकलसत्वोभयं न जातिस्तुल्यत्वात्। संकरश्च परस्परात्यन्ताभाव समानाधिकरणत्वे सत्येकाधिकरणवृत्तित्वं, जातिविशिष्टत्वमिति फलितम्। वैशिष्ट्यञ्च स्वसामानाधिकरण्यस्वाभाववद्वृत्तित्वस्वसमानाधिकरणभेद प्रतियोगितावच्छेदकत्वैतत्त्रितयसंबन्धेन। स्वं जातिः, स्वसामानाधिकरण्यस्यानिवेशे गुणत्ववैशिष्ट्यस्य द्रव्यत्वपृथिवीत्वादौ सत्वेन तेषां जातित्वानुपपत्तिः स्यादतस्तन्निवेशः। न च तदुपादानेऽपि कालिकेन गुणत्वाधिकरणे घटादौ तेषां सत्वादुक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यं, समावायेन स्वाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात्। समवायेन घटादौ गुणत्वस्यासत्वात्। न च तथापि गुणत्वाधिकरणे जन्यगुणे कालिकेन द्रव्यत्वादेः सत्वेनोक्तदोषावारणमिति वाच्यं, समवायेन स्वाधिकरणे समवायेन वृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। द्रव्यत्वगुणत्वादौ सत्ताविशिष्टत्ववारणाय द्वितीयसंबन्धप्रवेशः। तथाच सत्ताभाववति द्रव्यत्वादेरसत्वेन सत्तावैशिष्ट्यस्य तत्रासंभवात्। न च कालिकेन सत्ताभाववति महाकालादौ द्रव्यत्वादेः सत्वादिति वाच्यम्, स्वरूपसंबन्धेन स्वाभाववत्वस्य विवक्षितत्वात्। न च संयोगेन सत्ताभावस्य केवलान्वयितया तद्वति द्रव्यत्वादेः सत्वं निराबाधमिति वाच्यम्। व्यधिकरणसंबन्धानवच्छिन्नत्वस्य प्रतियोगितायां मानाभावात्। ननु तथापि कालिकसंम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकसत्ताभावसामानाधिकरण्यस्य[८०] द्रव्यत्वे सत्वादुक्तदोषस्तदवस्थ एवेति चेन्न। समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्य स्वाभावे प्रवेशान्न दोष इति। न च समवायकालिकोभयसंबन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिताकसत्ताभाववति नित्यद्रव्ये द्रव्यत्वस्य सत्त्वेनोक्तदोषावारणमिति वाच्यम्। समवायसंसर्गमात्रावच्छिन्नत्वस्य प्रतियोगितायां विवक्षितत्वात्। अथ सत्त्वगगनोभयाभावस्यापि सत्ताप्रतियोगिकतया तद्वति घटादौ द्रव्यत्वादेः सत्वेनोक्तदोषावारणमिति चेन्न। स्वेतरावृत्तित्वस्य, स्ववृत्त्युभयावृत्ति-धर्मावच्छिन्नत्वस्य वा, प्रतियोगितायां विवक्षणान्न दोष इति। न च द्रव्यत्वाभाववत्यां क्रियायां कालिकेन घटत्वपृथिवीत्वादेः सत्वेन द्रव्यत्वनिरूपितसांकर्यस्य घटत्वादौ प्रसंग इति वाच्यम्, समवायेन स्वाभाववद्वृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। क्रियादौ समवायेन घटत्वादेरसत्वान्न दोष इति। सत्ताद्रव्यत्वादौ घटत्वादिनिरूपितसांकर्य वारणाय तृतीयसंबन्धस्य निवेशः। भेदश्च वैशिष्ट्यव्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्न

समवायमात्रावच्छिन्नावच्छेदकताकप्रतियोगिताको ग्राह्यः। तेनोभयवद्भेद-विशिष्टवद्भेदोभयसंसर्गाद्यवच्छिन्नावच्छेदकताकप्रतियोगिताकभेदमादाय न दोषावकाश इति। वस्तुतस्तु एकत्ववृत्तिसमवायत्वगतैकत्ववृत्तिप्रतियोगिताको भेदो ग्राह्यः, प्रथमवृत्तित्वं च प्रतियोगितायां स्वावच्छेदकतात्वावच्छिन्न पर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्व स्वनिरूपकानुयोगितानिरूपित निरूपकतावच्छेदकता-त्वावच्छिन्नपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वोभयसंबन्धेन। द्वितीयवृत्तित्वं च स्वनिरूपितावच्छेदकतानिरूपितसंसर्गतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नपर्याप्त्यनुयोगिता-वच्छेदकत्वसंबन्धेन। स्वं भेदीयप्रतियोगितेति। भूतत्वमूर्तत्वोभयन्न जातिः सांकर्यात्। भूतत्वाभाववति मनसि मूर्त्तत्वस्य, मूर्तत्वाभाववत्याकाशे भूतत्वस्य, पृथिव्यादौ तदुभयस्य समावेशात् सांकर्य्यम्। अथ भूतत्वादेर्जातित्वाभावेन जातिविशिष्टत्वस्य मूर्तत्वादौ विरहेण सांकर्यस्यासत्वात् कथं भूतत्वादौ सांकर्यम्। किञ्च पशुत्वं न जातिः पृथिवीत्वादिना सांकर्यादित्यप्यसंगतम्। पशुत्वस्य जातित्वाभावपक्षेऽखण्डोपाधित्वेना "समवेतत्वात्। तत्र संकरानवकाशादिति चेन्न। समवायस्वरूपान्यतरसम्बन्धेन सामानाधिकरण्यादेर्विवक्षितत्वात्। अखण्डोपाधौ स्वरूपेण सामानाधिकरण्यस्याक्षतत्वात्। जातिविशिष्टत्वमित्यनेन च जातित्वेनाभितविशिष्टत्वस्य, संयोगविभागसंख्यान्यविशिष्टत्वस्य वा विवक्षितत्वात्। भूतत्वादेरपि ग्रहणसम्भवान्न संकरानुपपत्त्यवकाशः। वैशिष्ट्यं च पूर्वोक्तत्रितयसम्बन्धेन। अन्यतरत्वेन, त्रित्वेन च, संसर्गत्वानभ्युपगमे त्वगतिरेव।

वस्तुतस्तु पृथिवीत्वनिरूपितसंकरश्च, पृथिवीत्वसामानाधिकरण्य-पृथिवीत्वाभाववद्वृत्तित्वपृथिवीवृत्तिभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वैतत्त्रितयवत्वम्। एवं तेजस्त्वभूतत्वादिनिरूपितसंकरोऽपि बोध्यः। न च सांकर्यस्य नानात्वापत्तिरिति वाच्यम् इष्टत्वात्। व्याप्त्यदेरिव सांकर्यस्य नानात्वाभ्युपगमात्। तथाच पशुत्वं न जातिः तेजस्त्वादिनिरूपितसांकर्यात्। न च वैपरीत्ये विनिगमकाभाव इति वाच्यम्, प्रमाणान्तरेण पृथिवीत्वतेजस्त्वादिजातिसिद्धौ तज्जातिनिरूपित-संकरस्याभावात्। इदं त्ववधातव्यम्। उच्चैःश्रवात्मकाश्वे तेजस उपष्टम्भस्वीकारे तत्र पार्थिवत्वेन संकरानवकाशात् पशुत्वं जातिरेवेति संक्षेपः।

सामान्यत्वं न जातिः अनवस्थानात्। अयं भावः सामान्यत्वस्य जातित्वे सामान्यत्वस्यापि सामान्यशब्दवाच्यता। तथा च सामान्यत्वात्मकसामान्ये पुनः सामान्यत्वमिति सामान्यत्वस्य कियत्पर्यन्तं स्थितिरित्यनियमः। एवं च सामान्यत्वं

यदि सामान्यं स्यात्तर्हि सामान्यवृत्ति न स्यात् सत्तावदिति सामान्यत्वे सामान्यवृत्तित्वविरहेण मूलच्छेदकरी त्वनवस्था बोध्या। अथवा आपाद्याभावेनापादकाभावसिद्धौ सामान्यत्वे सामान्यत्वस्यासत्वेन सामान्यभेदसम्पादिकाऽनवस्था बोध्येति।

विशेषत्वं न जातिः रूपहानितः। अयंभावः, तस्य जातित्वे विशेषस्य स्वतो व्यावर्त्तकत्वस्वभावहानिः स्यात्, जातेस्तद्व्यावर्तकत्वात्।

समवायो न जातिः सम्बन्धाभावात्। समवायसम्बन्धाभावात्, समवायसम्बंधेन समवायस्यासत्वादित्यर्थ इति दिक्।

समवेतवत्त्वरहिताः सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वरहिताः समवेताः विशेषाः।

विशेषं निरूपयति **समवेतवत्त्वेति**। तद्रूपतद्रसादावतिव्याप्तिवारणाय **समवेतवत्त्वरहिता** इति चरमसमवेतविशेषणम्। सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय **सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणत्वरहिता**[८२] इति। समवायाभावादावतिव्याप्तिव्युदासाय **समवेता** इति। विशेषे आनन्त्यसूचनाय बहुवचनस्योपादानम्। अथ विशेषे मानाभाव इति चेन्न, घटादीनां द्व्यणुकपर्यन्तानामवयवभेदाद्भेदः परमाणूनामवयवाभावेन परस्परभेदाऽन्यथानुपपत्त्या तत्कल्पनस्यावश्यकत्वात्। न च परमाणुभेदकस्यासत्वे क्षतिविरह इति वाच्यम्। घटारम्भकपरमाणुतः पटारम्भकपरमाणोरवैलक्षण्येन घटपटयोर्वैलक्षण्यानुपपत्तिः। कारणवैलक्षण्यं विना कार्यवैलक्षण्यादर्शनात्। न च परमाणावेव व्यावर्तकत्वमस्तु, किं विशेषकल्पनेनेति वाच्यम्। पार्थिवपरमारणुर्न्न स्वतो व्यावर्त्तको रूपवत्वात् घटवदित्यनेन, परमाणुर्न्न स्वतो व्यावर्त्तकः स्पर्शवत्वात् घटवदित्यनेन च, तद्बाधात्। परमाणुत्वं न जातिः पृथिवीत्वादिना साङ्कर्य्यात्। न च पृथिवीत्वव्याप्यं जलत्वव्याप्यं नानैव जातिरस्त्विति वाच्यमणुपरिमाणात्मकगुणेनैव तत्प्रतीत्याद्युपपत्तेर्जातिकल्पने मानाभावात्। सकलपरमाणावनुगतजातिं विना पार्थिवादिपरमाणाववान्तर-जातेरनुभवेनाविषयीकरणाच्चेति।।

नित्यसंबन्धः समवायः। समवेतत्वरहितसर्वान्योन्याभाव समानाधिकरणभावो वा।

समवायं दर्शयति **नित्येति**। संयोगादिवारणाय **नित्येति**। द्रव्यत्वादिवारणाय **सम्बन्धेति**। ननु विभुद्वयसंयोगस्वीकारे त्वगतिरित्यत आह **समवेतत्वरहितेति**। द्रव्यादिविशेषेष्वतिव्याप्तिवारणाय[८३] **समवेतत्वरहितेति**। नित्यद्रव्य-व्यावृत्तये **सर्वान्योन्याभावसमानाधिकरणेति**। अभावव्यावृत्त्यर्थं **भावेति**। ननु समवेतत्वरहितत्वं समवायघटितमित्यन्योन्याश्रय इति चेन्न। तस्य द्रव्यगुणसामान्यभिन्नार्थकत्वात्। केचित्तु सत्ताशून्यत्वे सति सामान्यभिन्नत्वम् तस्यार्थ इत्याहुः। परे तु वाकारोऽनास्थायामित्याहुः।

अथ समवाये मानाभाव इति चेन्न। गुणक्रियादिविशिष्टबुद्धिः विशेषणविशेष्यसम्बन्धविषया विशिष्टबुद्धित्वात् दण्डी पुरुष इति विशिष्टबुद्धिवदित्यनुमानेन संयोगतादात्म्यादीनां बाधात्समवायसिद्धिः। न च स्वरूपसम्बन्धमादायैवानुमानचारितार्थ्यमस्तु। तथाचार्थान्तरं सिद्धसाधनं वा स्यादिति वाच्यम्। अनेकस्वरूपाणां द्रव्याद्यनुयोगिकत्वगुणादिप्रतियोगिकत्वकल्पनापेक्षयैकस्मिन् समवाय एव तत्कल्पनस्योचिततत्वात् लाघवादिति नार्थान्तरं न वा सिद्धसाधनम्। न च समवायस्यैकत्वे वायौ रूपवत्ताधीः प्रमा स्यात् रूपसम्बन्धस्य सत्वादिति वाच्यं सम्बन्धमात्रस्य विशिष्टबुद्ध्यनियामकत्वात्। सम्बन्धिसम्बन्धोभयसत्वस्य विशिष्टबुद्धिनियामकत्वात्। वायौ रूपस्याभावेन तस्याः प्रमात्वायोगात्। परं तु विशिष्टबुद्धौ विशेषणप्रातियोगिकत्वे विशेष्यानुयोगिकत्वावच्छेद्यत्वं नियमतो भासते। तथाच समवायनिष्ठरूपप्रातियोगिकत्वे वाय्याद्यनुयोगिकत्वावच्छेद्यत्वानभ्युपगमान्निरुक्तबुद्धौ तस्य भानेन भ्रमत्वानपायादिति। इतिभावनिरूपणं विभागश्च।

नञर्थप्रत्ययविषयोऽभावः। स चतुर्धा भिद्यते प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽन्योन्याभावोऽत्यन्ताभावश्चेति। उत्तरकालावधिरभावः प्रागभावः। पूर्वकालावधिरभावः प्रध्वंसाभावः। तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रातियोगिताकाभावोऽन्योन्याभावः। उभयावधिरहितः संसर्गाभावोऽत्यन्ताभावः।

तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्।।

विद्यासन्ध्योद्रेकादविद्यारजनीक्षये।
यदुदेति नमस्तस्मै कस्मैचिद् विश्वतस्त्विषे।।

इति महामहोपाध्यायन्यायाचार्यश्रीमदुदयनविरचिता लक्षणावली समाप्ता।

अभावं निरूपयति **नञर्थेति**। नञर्थस्य प्रत्यय इत्यत्र विषयित्वं षष्ठ्यर्थः। तत्र निरूपितत्वसम्बन्धेन नञर्थान्वयः। षष्ठ्यर्थस्य स्वरूपसम्बन्धेन प्रत्ययेऽन्वयः। तथाच नञर्थानिरूपितविषयिताविशिष्टप्रत्ययनिरूपितविषयताऽऽश्रयोऽभाव इति फलितार्थः। नञर्थोऽभाव इत्येवास्तु लाघवादिति वाच्यमभावत्वेऽतिव्याप्तेस्तस्यापि नञर्थत्वात्। जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थ इति मते पदार्थतावच्छेदके पदार्थत्वदर्शनात्। ननु नञर्थप्रत्ययविषयत्वस्यापि तत्राक्षतत्वादिति चेन्न प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नाऽनुयोगित्वसम्बन्धावच्छिन्ना वा या प्रकारता, तन्निरूपित नञ्पदप्रयोज्यविशेष्यताश्रयोऽभाव इत्यस्य निष्कृष्टार्थत्वात्।

अभावं विभजते **स चेति**। **स** अभाव इत्यर्थः। प्रागभावं निरूपयति **उत्तरेति**। ध्वंसाभावं निरूपयति **पूर्वेति**। अन्योन्याभावं निरूपयति **तादात्म्येति**। नञाऽन्योन्याभावबोधने प्रतियोगिवाचकपदसमानविभक्तिकानुयोगिवाचकपद–समभिव्याहारस्य तन्त्रत्वं बोध्य[५४]म्। अत्यन्ताभावं निरूपयति **उभयेति**। उभयपदमुत्तरकालपूर्वकालोभयपरम्, प्रागभावध्वंसयोर्व्यावृत्त्यर्थमुभया–वधिरहितस्योपादानम्। भेदव्युदासाय संसर्गाभावस्योपादानं, नित्यसंसर्गाभावोऽत्यन्ताभाव, इति यावत्। संसर्गाभावत्वं च संसर्गारोपजन्यप्रतीतिविषयाभावत्वम्। संसर्गश्च तादात्म्यातिरिक्तो ग्राह्यः। तेन भेदव्युदासः। उत्तरकालसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः प्रागभावः। पूर्वकालसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको ध्वंस इति तयोः संग्रहः। ननु जन्यत्वं जनकताप्रतियोगित्वं, जनकत्वञ्च, कार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम्। पुनश्चात्राभावत्वं किमिति रीत्या चक्रकादिप्रसङ्ग इति चेन्न भेदभिन्नाभावस्य संसर्गाभावत्वात्। भेदश्च तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो यदि कथ्यते, तदा तादात्म्यं च स्ववृत्त्यसाधारणो धर्मः। असाधारणत्वञ्चैकमात्रवृत्तित्वमेकमात्रवृत्तित्वञ्च स्वसामानाधिकरण्यस्वप्रतियोगिवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन भेदविशिष्टं यद्यत्तदन्यत्वम्।

पुनश्चात्र भेदत्वं किमितिरीत्या चक्रकप्रसंग इति भेदत्वमनुयोगिताविशेषो न तु तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वमित्यदोषः।

केचित्तु प्रतियोगिविनाश्यभावत्वं प्रागभावत्वं। जन्याभावत्वं ध्वंसत्वम्। अथ प्रागभावे मानाभाव इति चेन्न, घटो भविष्यतीति प्रतीतेरेव मानत्वात्। न चोत्तरकालोत्पत्तिकघटविषयकत्वेनैव तत्प्रतीतेरुपपत्तिरिति वाच्यम्। यत्रानिष्टक्रियया पापोत्पत्तिः, कतिपयकालानन्तरं गोदानादिरूपप्रायश्चित्तात् तत्पापस्य नाशः। तत्र प्रायश्चित्तात् प्रागस्य दुःखं भविष्यतीति प्रत्ययो जायते, तस्योत्तरकालोत्पत्तिक–दुःखविषयाभावेन निर्विषयकत्वप्रसङ्गात्। किञ्च कपाले घटोत्पत्त्यनन्तरं घटान्तरोत्पादप्रसङ्गात्। कारणस्य सत्वात्। न च विद्यमानघटस्य घटान्तरोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वान्नापत्तिप्रसंग इति वाच्यम्। विद्यमानघटस्य प्रतिबन्धकत्वं, तदभावस्य प्रतिबन्धकाभावविधया कारणत्वमेतदपेक्षया प्रागभावस्वीकारपक्षस्यैव लघुत्वात्। प्रागभावविरहेणातिप्रसंगविरहादित्यन्यत्र विस्तर इति।

ध्वंसे च घटो ध्वस्तः, पटो नष्ट, इत्यादिप्रत्यक्षस्यैव प्रमाणत्वान्न कोऽपि विवाद इति।

नञा प्रातिपदिकार्थप्रतियोगिकात्यन्ताभावबोधने, अनुयोगिवाचक–पदोत्तरसप्तम्यास्तन्त्रत्व[५५]म्। आख्यातार्थप्रतियोग्यत्यन्ताभावबोधने, अनुयोगिवाचकपदस्य प्रथमान्तत्वमपेक्षितम्[५६], चैत्रो न पचतीत्यत्र चैत्रे पाककृत्यभावबोधनात्।

अथात्यन्ताभावस्य नित्यत्वे भूतले घटानयनानन्तरमपि घटो नास्तीतिप्रत्ययः प्रमा स्यात्। घटाभावस्य तत्र सत्वात्, तस्य च नित्यत्वादिति चेदत्र केचित् तत्रोत्पत्तिविनाशशाली पञ्चमोऽभावो विषयः, द्रव्ये गुणत्वं नास्ति, गुणे द्रव्यत्वं नास्ति, रूपे रसत्वं नास्ति, गुडे तिक्तत्वं नास्तीत्यादावेव नित्यात्यन्ताभावो विषय इत्याहुः। वस्तुतस्तु तत्तत्कालीनतत्तद्भूतलादीनामभावसम्बन्धतया घटकालस्य घटाभावसम्बन्धाघटकत्वात्। घटकाले घटो नास्तीति प्रत्ययस्याप्रामाणिकत्वात्। विशेषणताविशेषस्यात्यन्ताभावसंबन्धस्यानित्यत्वानेकत्व

स्वीकारात्। प्रवृते न तथा प्रत्ययप्रसङ्गः, द्रव्यादौ गुणत्वाभाव-सम्बन्धस्यैकत्वनित्यत्वाभ्युपगमात्र कोऽपि दोषः। प्राचां मते प्रतियोगिता, ध्वंसप्रागभावाधिकरणे नात्यन्ताभावः, ध्वंसप्रागभावेनापि समं तस्य विरोधात्। श्यामघटे रक्तो नास्तीति प्रत्ययो रक्तप्रागभावमवगाहते। रक्तघटे श्यामो नास्तीति प्रत्ययश्च श्यामध्वंसमवगाहते।

नव्यास्तु तत्र विरोधेमानाभावात्, श्यामदशावच्छेदेन रक्तात्यन्ताभावो, रक्ततादशावच्छेदेन श्यामात्यन्ताभावो वर्तत एव। अन्यथाऽन्तरा श्यामे रक्तरूपं नास्तीति प्रत्ययो यदि रक्तरूपध्वंसमवगाहते तदाऽन्तरा रक्ते रक्तरूपं नास्तीति प्रत्ययप्रसङ्गः स्यात्। पूर्वरक्तध्वंसस्योत्तररक्तरूपप्रागभावस्य विद्यमानत्वात्। अत्यन्ताभावाविरोधित्वपक्षे च विद्यमानरक्तस्य विरोधित्वात्। नात्यन्ताभावस्य तत्र प्रत्ययप्रसंगः। यदि च रक्तत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकध्वंस एव तत्र विषयः, श्यामतादशायां विद्यमानरक्तध्वंसे रक्तत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमभ्युपेयते। रक्ततादशायां विद्यमानरक्तध्वंसे रक्तत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं नाभ्युपेयते। तस्याव्याप्यवृत्तित्वादित्युच्यते, तदा ध्वंसीयप्रतियोगितायां सामान्यधर्मावच्छिन्नत्वे मानाभावात्। रक्तत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकध्वंसाप्रसिद्ध्या तस्य तथाविधप्रत्ययविषयत्वासंभवात्। नव्यनये च प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावा-न्यथानुपपत्त्याऽत्यन्ताभावप्रतियोगितायां सामान्यधर्म्मावच्छिन्नत्वस्यावश्यकत्वात्। अथाऽन्तराश्यामे रक्तं रूपं नास्तीति प्रत्ययो, यावन्ति रक्तरूपाणि तत्तद्व्यक्तित्वेतरधर्म्मानवच्छिन्नतत्तद्व्यक्तिनिष्ठप्रतियोगिताकाभावकूटमवगाहते[८७]। एवं सत्यन्तरा रक्ते रक्तं रूपं नास्तीति प्रत्ययस्य न प्रसङ्गावकाशः[८८]। विद्यमानरक्तरूपस्यैकस्याप्यभावस्य तदानीमसम्भवादिति प्राचीनमतेऽपि न कोऽपि दोष इति चेन्न। रक्तं रूपमस्तीति बुद्धौ रक्तं रूपन्नास्तीति निश्चयस्य प्रतिवन्धकत्वे महागौरवम्। असर्वज्ञस्य तावद्रूपाणां तत्तद्व्यक्तित्वेन ज्ञानासम्भवेन तथाविधाभावकूटज्ञानस्य चासम्भवेन ताद्रूप्येण प्रतिवन्धकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वाच्च[८९]।

अथाभावस्याधिकरणात्मकत्वमेवास्तु, किमतिरिक्ताभावकल्पनेनेति चेन्न अनेकाधिकरणेऽभावत्वकल्पनाऽपेक्षयाऽतिरिक्ताभावकल्पनस्यैवोचितत्वात्।

लाघवादत एवाधिकरणाभावयोराधाराधेयभावोऽप्युपपद्यते। अन्यथाऽऽकाशादिवृत्ति-घटत्वाभावस्याकाशस्वरूपतया तस्यावृत्तित्वेनाकाशे घटत्वाभाव इति प्रत्ययानुपपत्तिः। रसनिष्ठरूपत्वाभावस्य रसरूपतया रसे रसस्याभावेन रसे रूपत्वाभाव इत्यादिप्रत्ययानुपपत्तिश्च। एवं गन्धाभावादेरधिकरणस्वरूप तयाधिकरणस्य पुष्पादेः रूपरसादेश्च घ्राणाग्राह्यतया गन्धाद्यभावानां घ्राणग्राह्यत्वानुपपत्तिः। एतेन कालज्ञानस्वरूपत्वमभावस्येतिपक्षं सुदूरपराहतं, कालादेर्घ्राणग्राह्यत्वाद्यभावेन गन्धाभावादीनां घ्राणग्राह्यत्वाद्यनुपपत्तेरिति। अभावप्रत्यक्षे सन्निकर्षवद्योग्यानुपलब्धेरपि कारणत्वं वोध्यम्। तेन नातीन्द्रियप्रतियोगिकाभावस्य प्रत्यक्षत्वं, योग्यानुपलब्धेरभावात्। योग्यता चात्र प्रतियोगिसत्वप्रसञ्जनप्रसञ्जित-प्रतियोगिकत्वरूपा। तथाचात्र यदि घटः स्यात् तर्ह्युपलभ्येत। यतो नोपलभ्यतेऽतोऽत्र घटो नास्तीति प्रतीत्या घटाभावस्य प्रत्यक्षत्व, मेवमत्र यदि मनस्त्वं स्यादुपलभ्येत, इत्याद्यापादनासम्भवादतीन्द्रियप्रतियोगिकाभाव मप्रत्यक्षत्वमिति संक्षेपः।

आसीत् सोदरपूरमूल महियाग्रामे भवानीपति
र्यो ब्रह्मैकविचारनिर्मलमतिः ख्याताखिलैः सद्गुणैः
तत्पुत्रो मतिमद्वरोऽखिलगुणप्रख्यात तारापति।
स्तारानाथविभूषणाङ्घ्रियुगलक्षीरोत्थसत्षट्पदः।।१।।

तत्सूनुरेनं मिथिलामहीशस्याज्ञामवाप्यौदयनीप्रकाशम्।
श्री विश्वनाथःकृतवान् प्रयत्नान्मुदे वुधानां विमलप्रकाशम्।।२।।

इति मैथिलराजपण्डित नैयायिकवरोपाध्यायोपनामक श्रीमद्विश्वनाथशर्म्मकृतो लक्षणावलीप्रकाशः समाप्तः।।

□□

लक्षणावल्यां मुक्तावलीव्याख्यायाः टिप्पणी

(१) अत्रादर्शपुस्तके कतिपयपदानि पतितानीति सम्भाव्यते।

(२) तथा च स्पर्शरहितत्वस्योत्पत्तिक्षणावच्छेदेन घटादौ सत्त्वात् व्यभिचार इति भावः। स्पर्शात्यन्ताभावेति। स्पर्शात्यन्ताभावस्य निरवच्छिन्नाधिकरणताया विवक्षितत्वादित्यर्थः।

(३) तथा च धूमवान् बह्नेरित्यादौ आर्द्रेन्धनसंयोगादेः प्रभामण्डलादौ साध्याव्यापकतया अनुपाधित्वप्रसङ्गेन तत्रापि किञ्चिद्विशिष्ट-साध्यव्यापकत्वस्यावश्यं वाच्यत्वात्। एवं स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादावपीति भावः।

(४) तत्वप्रदीपिकायामेवंप्रकारेण वैयर्थ्योपाधिर्दत्तः। न हि शरीरतया विषयतया इन्द्रियतया वा मन आरब्धद्रव्यस्य भोगसाधनता सम्भावनीया। पार्थिवादिचतुर्विधशरीरानन्तर्भूतस्येन्द्रियानाश्रयस्य शरीरतया भोगसाधनतानुपपत्तेः। न च विषयतया रूपस्पर्शशून्यारब्धस्य तद्रहितत्वेन विषयत्वायोगात् नापीन्द्रियतया मनस एवेन्द्रियत्वात्। तदारब्धेन्द्रिया न्तरस्वीकारवैयर्थ्यात्। न च शरीरेन्द्रियविषयानन्तर्भूतस्य कार्यद्रव्यस्य भोगसाधनत्वं परैरङ्गीक्रियत इत्यादि।

(५) नैमित्तिकद्रवत्वादिति प्रथममूलादर्शपुस्तके पाठः।

(६) रूपात्यन्ताभावसमानाधिकरणेति मूलादर्शप्रथमपुस्तके पाठः।

(७) रहितत्वरहितत्वमित्यादर्शपुस्तके पाठः।

(८) टीकाकारमते मूलादर्शप्रथमपुस्तके च उत्पाद्येन्द्रियवृत्तिजातित्वादिति मूलपाठः। मुद्रितपुस्तके मूलादर्शद्वितीयपुस्तके च वाह्येन्द्रियवृत्तिजातित्वादिति मूलपाठो दृश्यते।

(९) शरीरान्तः प्रेरणेति मूलादर्शप्रथमपुस्तके पाठः।

(१०) एतच्चिह्नमध्यस्थः पाठो मूलादर्शप्रथमपुस्तके नास्ति।

(११) शब्दस्येति मूलादर्शप्रथमपुस्तके नास्ति।

(१२) अत्रादर्शपुस्तके कतिपयपदानि लुप्तानि परन्तु पूर्वापरपर्यालोचनया हेतौ विभागित्वविशेषणदाने ग्रन्थकर्तुरभिप्रायो गम्यते।

(१३) धर्म्यसिद्धाविति मूलपाठः सङ्गतः।

(१४) अन्यतः सिद्धाविति सम्भाव्यते।

(१५) नित्यपरत्वेत्यादर्शपुस्तके पाठः।

(१६) विशेषगुणात्यन्ताभावाधिकरणत्वे सति मूर्त्तं वा-इति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके पाठः।

(१७) संयोगसमवेतत्वरहितेत्यधिको मुद्रितपुस्तके मूलादर्शद्वितीयपुस्तके च पाठः।

(१८) नीलं स्वमात्रसमवेतवत् स्वमात्रसमवेतत्वरहितनीलान्यत्वरहितत्वादिति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके पाठः।

(१९) पाकजरूपानधिकरणत्वादिति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके पाठः।

(२०) पृथिवीवृत्तित्वरहितेति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके। पृथिवीवृत्तिपृथिवीत्व-रहितवृत्तिवृत्तित्वरहितेति मूलादर्शप्रथमपुस्तके। पृथिवीवृत्तित्वरहित-वृत्तिवृत्तित्वरहितेति तद्द्वितीयपुस्तके पाठः। परं तु टीकाकृता व्याख्यात एव पाठोऽत्रोपनिबद्धः।

(२१) द्वित्वत्वप्रमितिरिति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके मूलादर्शप्रथमद्वितीयपुस्तकयोश्च पाठः।

(२२) बहुत्वत्वेति सम्भाव्यते एवमग्रेऽपि।

(२३) विभागासमवेतत्वाभावाविरोधिसमवेतेति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके। विभागासमवेतेतराभावाविरोधिसमवेतेति मूलादर्शप्रथमपुस्तके। अक्षणिकेतरेतराभावाविरोधिसमवेतेति मूलादर्शद्वितीयपुस्तके पाठः।

(२४) सत्यनुद्वेष-इति मुद्रितलक्षणावलीपुस्तके मूलादर्शद्वितीय पुस्तके च पाठः।

(२५) द्रवत्वनिष्ठत्वेति मूलादर्शद्वितीयपुस्तके पाठः।

(२६) परत्वापरत्वात्यन्ताभावप्रतियोगिसत्तावान्तरजातीति मूलादर्शद्वितीयपुस्तके पाठः।

(२७) रसस्पर्शस्नेहसंयोगविभागविशेषव्यतिरिक्तेति नास्ति मूलादर्शद्वितीय-

मुद्रितपुस्तकयोः। पाठार्थश्चात्र चिन्तनीयः।

(२८) सङ्ग्रहादिहेतुरिति मुद्रितपुस्तके मूलादर्शद्वितीयपुस्तके च पाठः।

(२९) पृथिवीवृत्तिवृत्तित्वरहितात्मगुणावृत्तिशब्दावृत्तीति मूलादर्शप्रथमपुस्तके पाठः।

(३०) कारणपदं नास्ति त्रिषु पुस्तकेषु।

लक्षणावल्यां प्रकाशव्याख्यायाष्टिप्पणी

(१) आद्यनित्यपदं वृत्तितायां समवायसम्बन्धावच्छिन्नत्वलाभाय, तेन कालिकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितामादाय नासम्भवः। द्वितीयनित्यपदं द्व्यणुकमादायासम्भवस्य वारकं, द्रव्यकर्म्मान्यतरत्ववारणाय जातिपदोपादानमिति।

(२) यत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकगन्धात्यन्ताभावनिवेशेऽसम्भववारण सम्भवेऽपि कालिकसम्बन्धावच्छिप्रतियोगिताकगन्धाभावरहितत्वस्य जन्यजलादौ सत्वेनातिव्याप्तिरिति।

(३) घटध्वंसजन्ये घटरूपध्वंसे व्यभिचारवारणायाद्यद्रव्यपदम्। तत्वसाक्षात्कारजन्य मिथ्याज्ञानध्वंसजन्ये कायव्यूहे व्यभिचारवारणाय द्वितीयद्रव्यपदम्। मण्यभावजन्यदाहे व्यभिचारवारणायाभावसामान्यमुपेक्ष्य ध्वंसनिवेशनम्। ध्वंसत्वावच्छिन्नजनकत्वविवक्षणात्प्रतिबन्धकध्वंसस्य प्रतिबन्धकसंसर्गाभावत्वेन जनकत्वेऽपि न व्यभिचारस्तदवस्थः। उपादेयत्वञ्च साक्षात्परम्परासाधारणं बोध्यमिति न स्थूलदुग्ध्वंसजन्यदध्नि व्यभिचार इति।

(४) एकव्यक्तिमात्रवृत्तित्वादाकाशत्वन्न जातिरिति।

(५) जात्यादौ प्रतियोगितया ध्वंसवारणार्थं प्रागभावावृत्तिप्रतियोगितया ध्वंसं प्रति तादात्म्येन सत्वेन कारणतेति।

(६) कालिकसमवायोभयसम्बन्धस्य कारणतावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धत्व स्वीकारेऽपि ध्वंसानुयोगिककालिकसम्बन्धेन क्लृप्तघटत्वादेरेव कारणतावच्छेदकत्वसम्भवात् तस्यानिष्प्रामाणिकत्वादिति।

(७) गर्भवेष्टनचर्म्मपुटकं जरायुः।

(८) चेष्टात्वञ्च चेष्टते इतिप्रत्यक्षसिद्धो जातिविशेषः,

(९) प्राणाख्यवायुसम्बन्धस्य।

(१०) चर्ममनःसंयोगकारणत्वपक्षे चर्मण्यतिव्याप्तिरत आत्मभिन्नत्वं न निवेशितम्।

(११) पृथिवीत्ववारणायासमानाधिकरणान्तं, तेजस्त्ववारणाय माधुर्य्य-समानाधिकरणेति, गुड़त्ववारणाय साक्षादिति।

(१२) प्रथमलक्षणे पृथिवीत्वादिकमादायातिव्याप्तिवारणाय रसवदवृत्तीति। वायुत्वादिवारणाय द्रवत्ववद्वृत्तीति। तेजो वाय्वन्यतरत्ववारणाय जातीति। द्वितीयलक्षणे पृथिवीत्ववारणाय सत्यन्तम्, जलत्ववारणाय नैमित्तिक द्रवत्वसमानाधिकरणेति। द्रव्यत्वसत्तावारणाय द्रव्यत्वव्याप्येति। तृतीयलक्षणे जलत्वपृथिवीत्ववारणाय प्रतियोग्यन्तम् जातिविशेषणम्। गुरुत्वा समानाधिकरणस्य तदर्थत्वान्न दोषतादवस्थ्यम्। यद्वा रूपविशेषणमेव तत्। गुरुत्वसामानाधिकरण्यानवच्छेदकरूपत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्न-समानाधिकरणः समानाधिकरणान्तार्थस्तेन न पृथिवीत्वजलत्वावारणमिति। वस्तुतः गुरुत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोग्यत्यन्ताभाव प्रतियोगिपदघटित एव मूलपाठ इति, यथाश्रुत एव समीचीन इति। दहनत्वादिवारणाय साक्षादिति। तेजसस्तेजस्त्वं तेजस्त्वस्य निरुक्तजातित्वं लक्षणमित्यभिप्रायादिति।

(१३) द्वितीयलक्षणे आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानानधिकरणेति। कालादिवारणाय विशेषगुणाधिकरणेति। पृ थिव्यादिवारणाय कर्म्मानधिकरणेति। तृतीयलक्षणे आत्मवारणाय ज्ञानासमानाधिकरणेति, विशेषगुणविशेषणम्। पृथिव्या दिवारणाय मूर्त्तत्वासमानाधिकरणेति। कालादिवारणाय विशेषेति। चतुर्थस्य ज्ञानासमानाधिकरण स्पर्शासमानाधिकरण विशेषगुणवत्वमर्थः। विशेषणफलं पूर्ववद्बोध्यम्। पञ्चमे पृथिव्यादिवारणाय सत्यन्तं, कालादिवारणाय विशेष्यदलम्।

(१४) रूपप्रथमलक्षणे पृथिवीत्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय रसवदवृत्तीति जातिविशेषणम्। वायुत्वमादाय स्पर्शेऽतिव्याप्तिवारणाय रूपवद्वृत्तीति। शुक्लवद्वृत्तीति तदर्थः, तेन नात्माश्रयः। पाषाणादौ व्यभिचारेण रसपृथिवीत्वयोर्व्याप्यव्यापकभावात्। भस्मनि च पाकजरसस्यैव स्वीकारात्।

घ्राणे रसानङ्गीकार इति मते घ्राणत्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्ति वारणाय द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्येति।

परे तु यादृशरसनत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्ने रसो नोत्पन्नस्तादृशजातिमादाय रसविशेषेतिव्याप्तिरतस्तद्विशेषणमिति वदन्ति।

अपरे तु चक्षुरिन्द्रिये तेजस्त्वप्रदर्शनार्थं तदुपादानं न तु लक्षणे तस्य प्रवेशो व्यावर्त्याभावादित्याहुः।

केचित्तु तेजस्त्वलक्षणप्रदर्शनार्थमेव तत्। तत्र तदनुपादाने दीपत्वादावतिव्याप्तिरिति प्राहुः।

संयोगत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय मात्रेति। जन्यान्तस्य तादृश जातिमदिन्द्रियजन्यत्वे सति मनोभिन्नतादृशजात्यनधिकरणेन्द्रियाजन्यत्व मर्थस्तेन नासंभवः। द्वित्वेऽतिव्याप्तिवारणाय निर्विकल्पकपदम्। प्रभात्वमादायातिव्याप्तिवारणाय गुणत्वव्याप्येति। गुणवृत्तित्वनिवेशे तद्वारणेऽपि रूपत्वलक्षणे नीलत्वाहिवारणाय साक्षाद्व्याप्यार्थक व्याप्यपदोपादानस्यावश्यकत्वादित्यभिप्रायः। द्वितीयलक्षणे सत्तामादाय रसादावतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शावृत्तीति। स्पर्शत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय रसावृत्तित्वं विहाय तदनुधावनम्। रसादिवारणाय समानाधिकरणान्तं गुणविशेषणम्। संयोगादिवारणाय विशेषेति। समवायसंबन्धावच्छिन्न वृत्तितालाभाय जातिपदम्। तेन रूपरसान्तरत्वव्युदासः। तृतीयलक्षणे रसादिवारणायाद्यवृत्त्यन्ताम्। संयोगादिवारणायावृत्त्यन्तम्। उष्णत्वद्रवत्वमादायातिप्रसङ्गवारणाय विशेषेति जातिविशेषणम्। विशेषश्च स्पर्श द्रवत्वावृत्तिरूप इति न कोऽपि दोषः। सुवर्णत्ववारणाय गुणवृत्तीति।

(१५) रसप्रथमलक्षणे द्रव्यत्वमादाय रूपादावतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्। द्वित्वेऽतिव्याप्तिवारणाय निर्विकल्पकेति। द्वितीयलक्षणस्य गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिस्नेहसमानाधिकरणद्रव्यत्व साक्षाद्व्याप्यजात्यन्यतराभावसामानाधिकरण्यानवच्छेदक-जातिमद्विशेषगुणत्वमर्थः। नीलत्वादिवारणाय जातौ गुणत्व-साक्षाद्व्याप्यत्वनिवेशः। गन्धत्वस्नेहत्ववारणाय गन्धस्नेहावृत्तित्वनिवेशः। गुरुत्ववारणाय विशेषेति। जलावनिविशेषगुणवृत्ति तेजोवृत्त्यवृत्ति-

गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजाती रसत्वमित्यपि द्रष्टव्यमिति नव्याः।

(१६) प्रथमलक्षणे रूपादिवारणाय समानाधिकरणान्तम्। द्रव्यत्वमादाय रूपादावति प्रसङ्गवारणाय द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्येति। द्वित्वेऽतिप्रसङ्गवारणाय निर्विकल्पकपदम्। द्वितीये स्नेहवारणायाद्यसमानाधिकरणान्तम्। रूपवारणाय द्वितीयसमानाधिकरणान्तम्। गगनपृथिव्यन्यतरत्वमादाय शब्देऽतिव्याप्ति वारणाय जातीति। व्याप्यतावच्छेदकत्वं तदभावसामानाधिकर ण्यानवच्छेदकत्वम्। नीलत्वादिवारणाय गुणत्वसाक्षाद्व्याप्येति। तृतीये रूपादिवारणाय वृत्त्यन्तम्। नीलत्वादिवारणाय गुणत्वसाक्षाद्व्याप्येति। शब्दवारणाय मूर्तेति। संयोगादिवारणाय विशेषेति।

अवनिवृत्तिवृत्तिजलवृत्त्यवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिर्गन्धत्वमित्यपि द्रष्टव्यमिति नवीनाः।

(१७) भावनाभिन्नो यो जन्यैकत्वव्यापकतावच्छेदकस्पर्शावृत्तिधर्म्मसमवायी तदन्यत्वे सति गुरुत्वनैमित्तिद्रवत्वान्यगुणत्वं विशेषगुणत्वमिति केचित्। संस्कारत्वमादाय भावनायामव्याप्तिवारणाय भावनाभिन्नत्वविशेषणम्। रूपादावव्याप्तिवारणायावच्छेदकान्तं धर्म्मविशेषणम्। सत्तामादायोक्तदोषवारणाय स्पर्शावृत्तीति। स्पर्शत्वमादाय स्पर्शेऽव्याप्तिवारणाय रूपावृत्तित्वं विहाय स्पर्शावृत्तित्वविशेषणम्। संयोगादिवारणाय सत्यन्तम्। गुरुत्वनैमित्तिकद्रवत्ववारणायान्यान्तम्। जात्यादिवारणाय गुणत्वेति। जन्यैकत्वव्यापकतावच्छेदकत्वस्थाने लाव वाद्यायुवृत्तिवृत्तित्वस्य वा निवेश इति।

(१८) अवयवभिन्नार्थकमिति भावः।

(१९) नव्यास्तु वस्तुविशिष्टत्वन्तत्। वैशिष्ट्यञ्च स्ववृत्तित्वस्वभिन्न-वृत्तित्वोभयसम्बन्धेनेति वदन्ति।

(२०) नव्यास्तु पृथक्त्वाद्यसमवेतेति मूलपाठः। तत्रादिपदेन संयोगविभागयोः परिग्रह इति न दोष इत्याहुः।

(२१) अस्यायम्भावः अपेक्षाबुद्धेर्द्विक्षणमात्रावस्थायित्वे निर्विकल्पककाले तस्या नाशेन तदनन्तरं द्वित्वस्य नाशात्तत्प्रत्यक्षानुपपत्तिः। लौकिकप्रत्यक्षं प्रति कार्य्यसहभावेनैव विषयस्य हेतुत्वादिति।

(२२) मृदङ्गाकाशसंयोगः।

(२३) द्व्यणुकत्रित्वम्।

(२४) गगनस्यावृत्तित्वात्तत्रैव विरोधित्वं सुघटमिति भावः।

(२५) गन्धस्याव्याप्यवृत्तित्वादिति भावः।

(२६) उभयावृत्तिधर्म्मविशिष्टान्यसमवेतत्वं फलितार्थः। वैशिष्ट्यञ्च स्वाभावविरोधित्वसम्बन्धेनेति।

(२७) तत्वञ्चोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकसमवेतत्वमवच्छेदकता च सामानाधिकरण्य सम्बन्धावच्छिन्ना ज्ञेयेति।

(२८) घटचक्षुस्संयोग जन्यवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिर्ज्ञानत्वमिति नवीनाः।

(२९) सुखत्वं दुःखत्वं च प्रत्यक्षसिद्धो जातिविशेषः, विवाहविशेष्यकमदिष्टसाधनत्वप्रकारकज्ञानजन्यवृत्तिप्रवृत्त्यवृत्तिजातिमत्वमिच्छात्वम्, विषभक्षणविशेष्यकानिष्टसाधनत्वप्रकारकज्ञानजन्यवृत्तिनिवृत्त्यवृत्तिजातिर्द्वेषत्वम्, भोजनविशेष्यककृतिसाध्यत्वप्रकारकेच्छाजन्यवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः प्रयत्नत्वम्,

(३०) पृथिवीतेजोवृत्तिवृत्तिवायुवद्वृत्त्यवृत्तिरूपावृत्ति गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्वं द्रवत्वत्वमिति नव्याः।

(३१) नव्यास्तु जलावनिवृत्तिवृत्तिरसावृत्तितेजोवृत्यवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्वं, पृथिवीवृत्तिवृत्तिप्रत्यक्षविषयावृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्वं वा गुरुत्वत्वमित्याहुः।

(३२) पृथिवीवृत्यवृत्तिजलवृत्तिवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्यप्यजातिमान् स्नेह इत्यपि द्रष्टव्यम्।

(३३) विषाक्तवाणहतमृगपक्षिमांसं, शुष्कमांसं वा कलञ्जम्। तदुक्तम्,

विषाक्तेनैव वाणेन हतौ यौ मृगपक्षिणौ।
तयोर्म्मासं कलञ्जं स्याच्छुष्कमांसमथापि वेति।।

(३४) अवगोरणं हन्तुमद्यमः।

(३५) साजात्यञ्च परिमाणविभाजकरूपेण वोध्यम्।

(३६) अत्रान्यथासिद्धित्वस्यानुगतस्याभावात्, नियतपूर्ववर्त्तिवृत्तिदण्डत्वादिभेदकूटवत्वे सति, घटनियतपूर्ववर्त्तित्वं घटकारणत्वम्। एवञ्चानियतपूर्ववर्तिपटादिवारणाय विशेष्यदलम्। विशेषणकुक्षौ पटादिभेदनिवेशे च गौरवम्। नियतपूर्ववर्त्तित्वञ्च कार्य्याव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन कार्य्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म्मवत्वमिति। दण्डत्वादिवारणाय सत्यन्तमिति।

(३७) स्वाश्रयदण्डजन्यभ्रमिजन्य कपालद्वयसंयोगवत्वसम्वन्धेन।

(३८) पृथक्शब्दयोगस्यैव पञ्चमीप्रयोजकत्वं, न तु पृथत्त्वार्थकशब्दयोगस्येति नोक्तदोष इति चिन्तावीजम्।

(३९) अत्र संयोगत्वेनान्यतरकर्म्मत्वेन न कार्य्यकारणभावः किन्तु समवायेन विजातीयसंयोगत्वेन विजातीयकर्म्मत्वेन। नातः संयोगजसंयोगे व्यभिचारः। न च श्येनशैलसंयोगाधिकरणे शैले क्रियाविरहात्कथं कारणत्वमिति वाच्यं कार्य्यतावच्छेदकव्यापकसामानाधिकरण्यस्य प्रतियोगित्वस्यैव कारणत्वघटकत्वात्। एवमग्रेऽपि वोध्यम्।

ननु समवायेन घटतरुसंयोग म्प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्धेन कपालक्रियाया एव कारणत्वं न तु कपालतरुसंयोगस्येति। संयोगजसंयोगे मानाभावादिति वाच्यं यत्र कपालक्रियया कपालान्तरेण तरुणा चैकदा संयोगस्ततो घटोत्पत्तिकपालक्रियानाशौ। तत्र ततः कलशतरुसंयोगानुपपत्तेः। क्रियाया नाशादतः कपालतरुसंयोग एव कारणमिति तत्सिद्धिः। लाघवाद्वा समवायेनैव कपालतरुसंयोगस्य हेतुत्वमिति वदन्ति।

(४०) अयं भावः अग्रावच्छेदेनारम्भकसंयोगं प्रति द्वन्द्विविभागजनककर्म्मणा मूलावच्छिन्नारम्भकसंयोगं प्रति द्वन्द्विविभागोत्पत्तिः। तेन चारम्भकसंयोगनाशः, तेन कमलनाशः स्यादिति।

(४१) संयोगाभावो विभागः विभागाभावो वा संयोग इत्यत्र विनिगमकाभावादुभयोरतिरिक्तत्वमिति सारम्।

(४२) उपेक्षात्वञ्च न जातिः चाक्षुषत्वादिना साङ्कर्य्यादव्याप्यवृत्तित्वाच्च। अत उपेक्षाज्ञानानां तत्तद्व्यक्तित्वेनैव संस्कारप्रतिवन्धकत्वमिति। अतएव न

पण्डसंस्कारकल्पनमिति।

(४३) तत्संबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक तदभाववन्निष्ठविषयतानिरूपित तत्संबन्धावच्छिन्नतन्निष्ठविषयताकत्वरूपत्वे वह्निमत्वपर्वतवान्देश इति ज्ञानस्य संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाप्रतियोगिताक पर्वताभाववद्वह्निनिष्ठावच्छेदकत्वाख्यविषयतानिरूपितपर्वतप्रकारताकत्वेन भ्रमत्वं स्यादतो विशेष्यप्रकारभावनिवेशः।

तत्त्वस्याननुगतत्वात्, सावच्छिन्न-निरवच्छिन्नप्रकारताकभ्रम-साधारण्यानुरोधाच्चाह **विशेष्यतेति**। अत्र स्व निरूपकत्वानिवेशे पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानस्य स्वाश्रयावृत्तित्वसम्बन्धेन जलत्वावच्छिन्न-विशेष्यताविशिष्टप्रकारताकत्वेन भ्रमत्वं स्यादतस्तन्निवेशः। तथाच तज्ज्ञानीयवह्निप्रकारताया जलत्वावच्छिन्नविशेष्यत्वानिरूपकत्वाददोषः। स्वाश्रयावृत्तित्वानिवेशे उक्तज्ञानस्य स्वीयविशेष्यताविशेष्यता-विशिष्टप्रकारताकत्वादुक्तदोषस्तदवस्थ एवातस्तन्निवेशः। चतुष्टयसम्बन्धघटक सामानाधिकरण्यानिवेशे गुणो द्रव्यमिति ज्ञानस्यासङ्ग्रहः स्यात्। तज्ज्ञानीयनिरवच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारतायाः स्वविशिष्टनिरवच्छिन्न गुणत्वनिरूपकताकाधिकरणतासम्बन्धेन विशेष्यगुणवृत्तित्वात्। तन्निवेशे च तादृशनिरूपकतायाः तादृशप्रकारताव्याधिकरणत्वेन निरवच्छिन्नद्रव्यत्वनिरूपकताया एव धर्त्तुं शक्यत्वान्न दोषः। द्वितीयसम्बन्धानिवेशे वह्निमज्जलमिति ज्ञानस्य स्वीयसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारताविशिष्टसंयोग कालिकान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणता-सम्बन्धेन विशेष्यजलवृत्तिवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारताकत्वेनासंग्रहः स्यात्। निवेशे च संयोगसंसर्गमात्रावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्ननिरूपकताया एव धर्त्तुं शक्यत्वान्न दोषः। तृतीयसम्बन्धानिवेशे सावच्छिन्नघटत्वप्रकारताकज्ञान-विशेष्यकविषयिता-सम्बन्धावच्छिन्ननिरवच्छिन्नघटत्वप्रकारताकज्ञानासंग्रहः स्यात्। तज्ज्ञानीयप्रकारताया स्वविशिष्टसावच्छिन्नघटत्व-निष्ठनिरूपकताकाधिकरणता संवन्धेन विशेष्यवृत्तित्वात्। तन्निवेशे च निरवच्छिन्न घटत्वनिष्ठनिरूपकताया एव धर्तुं शक्यत्वान्न दोषः। अवच्छेदकत्वसंबन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक स्वाभाववद्धर्मा नवच्छिन्नत्वं

तदर्थः। तेन न घटो द्रव्यमिति ज्ञानस्य संग्रहः। चतुर्थसंबन्धानिवेशे निरवच्छिन्नघटत्वप्रकारताकज्ञानविशेष्यकविषयितासंबन्धावच्छिन्न घटत्वप्रकारताकज्ञानस्य स्वीयप्रकारताविशिष्टनिरवच्छिन्नघटत्वनिरूपकता काधिकरणतावद् विशेष्यकत्वादसंग्रहः स्यात्। तन्निवेशे च सावच्छिन्नघटत्व निरूपकताया एव धर्तुं शक्यत्वान्न दोषः। प्रमेयो नास्तीत्यत्र स्वरूपसंबन्धावच्छिन्न प्रतियोगित्वांशे प्रमेयत्वावच्छिन्नत्वज्ञानस्य भ्रमत्वोपपत्त्यर्थमाह यद्वेति। पर्वतो वह्निमान् इति ज्ञाने उदासीनविशेषणतामादायातिव्याप्तिवारणायस्वनिरूपकनिवेशः। स्वीय-विशेषणतामादाय तत्रैवातिव्याप्तिवारणाय प्रतियोगितायां यत्किञ्चिद्रूपवृत्तित्वनिवेशः। अन्यत् स्पष्टम्।

(४४) दण्डो रक्तो न वेति संशयानन्तरं रक्तदण्डवान् पुरुष इति ज्ञानानुदयादतो विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वावच्छिन्नम्प्रति विशेषण-तावच्छेदकप्रकारकनिश्चयस्य कारणत्वमभ्युपगम्यत इति।

(४५) अयंभावः, साध्याभावधर्म्मिकहेत्वभावसामानाधिकरण्य ग्रहाजन्यप्रकृतसाध्यव्याप्तिग्रहविषयहेतुत्वम् प्रकृतहेतु-साध्यककेवलान्वय्यनुमानत्वम्। प्रकृतहेतुसाध्यकान्वयव्याप्त्यवगाहि यज्ज्ञानजनकज्ञानवृत्तिविषयितात्वव्यापको व्यतिरेकसहचार-विषयिताभेदस्तज्ज्ञानविषयत्वविशिष्टप्रकृतहेतुत्वं तत्त्वमिति पर्य्यवसितम्। हेतुधर्म्मिकसाध्यसहचारज्ञानाजन्य-प्रकृतसाध्यव्याप्तिग्रहविशेष्यत्वं प्रकृतहेतुसाध्यककेवलव्यतिरेकित्वम्। हेतुधर्म्मिकसाध्यसहचार ग्रहजन्यसाध्याभावधर्म्मिकहेत्वभाव सहचारग्रहजन्यव्याप्तिग्रहविशेष्यत्वं प्रकृतहेतुसाध्यकान्वयव्यतिरेकित्वम्।

(४६) अयंभावः, तत्तदवच्छेदकताभिन्नावच्छेदकत्वानिरूपितत्वसहित साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वानिष्ठावच्छेदकता निरूपितसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपित प्रतियोगितात्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितप्रतियोगितानिष्ठावच्छेदकता निरूपिताभावत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपिताभावनिष्ठावच्छेदकता-निरूपिताश्रयनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितवृत्तितात्वनिष्ठावच्छेदकता निरूपित प्रतियोगिताकाभाववत्त्वं व्याप्तिरिति।

(४७) हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्व प्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकवृत्तित्वाभावस्य, हेतुतावच्छेदकसम्बन्धभिन्नहेतु प्रतियोगिकसम्बन्धानवच्छिन्नवृत्तित्वाभावस्य वा विवक्षितत्वात्। तेन सत्तावान् जातेरित्यत्र नाव्याप्तिः।

(४८) साध्यतावच्छेदतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकरूपवृत्तिसाध्यतानिरूपितसंसर्गतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकरूपवृत्तिप्रतियोगिताकाभावः साध्याभावपदार्थः। प्रथमवृत्तित्वञ्च स्वावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धेन। द्वितीयवृत्तित्वञ्च स्वानिरूपितसंसर्गतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धेन। तेन विषयितया महानसीयवह्निमान् तज्ज्ञानत्वादित्यत्र वह्निमहानसीयाभावमादाय, संयोगत्वसमवायत्वान्यतरवत्सम्बन्धेन वह्निमान् धूमादित्यत्र समवायेन वह्न्यभावमादाय नाव्याप्तिः।

(४९) तद्घटत्वाभाववान् तद्घटासमानकालीनपटत्वादित्यत्र लक्षणसमन्वयसम्भवान्नासम्भवः।

(५०) केचित्तु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यतावच्छेदकव्यापकप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य विवक्षितत्वान्नोक्तदोषः। व्यापकता च निरूपकतासम्बन्धेन इत्याहुः।

(५१) एतद्वृक्षत्ववान् कपिसंयोगादित्यादावित्यर्थः।

(५२) तेन तद्व्यक्तिमान्नास्तीत्यभावमादाय नोक्तदोषः।

(५३) लक्षणे स्वपदेन यदि धूमाभावो गृह्यते तदा धूमवान् तद्व्यक्तित्वादित्यत्रव्याप्तिः स्यादिति भावः।

(५४) तान्निरूपितनिरूपकतानिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकता निष्ठावच्छेदकतानिरूपितधर्म्मनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकता-निष्ठावच्छेदकतानिरूपितनिरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतावत् प्रतियोगितात्वव्यापक इति सामान्य इत्यन्तार्थः।

(५५) वृत्तित्वञ्च स्वावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धेनेति।

(५६) रमाधवः पूज्य इति प्रतिज्ञाघटकमाधवः पूज्य इति भागे इत्यर्थः।

(५७) न्यायान्तर्गतवाक्यत्वमित्यर्थः।

(५८) काञ्चनमयवह्निसाध्यकस्थले साध्यासिद्धौ लक्षणसम्भवान्नासम्भवः।

(५९) साध्यासिद्ध्यादौ लक्षणसम्भवान्नासम्भव इति।

(६०) साधारण्यं साध्याभाववद्वृत्तित्वविशिष्टहेतुः, अनुपसंहारित्वं साध्यनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वविशिष्टहेतुः।

(६१) वैशिष्ट्यञ्च स्वनिरूपितत्व स्वाधिकरणावृत्तित्वोभयसम्बन्धेन। वृत्तित्वञ्च स्वसामानाधिकरण्यस्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व स्वानवच्छेदकानवच्छिन्नत्व स्ववृत्तित्वैतच्चतुष्टयसम्बन्धेन। स्वविशिष्टनिरूपकताकाधिकरणतासंसर्गेण। स्ववृत्तित्वञ्च स्वानवच्छेदकानवच्छिन्नत्वसम्बन्धेनेति।

(६२) यदि यद्रूपावच्छिन्ननिरूपितविषयितात्वं प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकताशून्यानाहार्य्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितनिश्चयनिरूपितवृत्तितानवच्छेदकं तद्रूपावच्छिन्नत्वं दोषत्वमित्युच्यते तदा ह्रदो वह्निमानित्यादौ कपिसंयोगाभाववत्कपिसयोगवत्यतिव्याप्तिः स्यादिति।

(६३) वह्न्यभाववज्जलवदवृत्तिजलवान् ह्रदः, वह्न्यभाववज्जलवत्कालीनजलवान् ह्रदः, जलवान् वह्न्यभाववान् जलवान्ह्रद इत्यादिनिश्चयानां लाघवादेकेनैवोक्तनिश्चयविशिष्टनिश्चयत्वेन ह्रदो वह्निमानित्यनुमितिं प्रति प्रतिबन्धकत्वं स्वीक्रियत इति।

(६४) जलव्याप्यकवह्न्यभावकालीन जलवद्ध्रदादेरपि सत्प्रतिपक्षत्वापत्तेरिति।

(६५) तत्पदं मेयत्वविशिष्टव्यभिचारत्वपरम्।

(६६) प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति विषयितानिरूपकतावच्छेदकरूपवत्त्वं दोषत्वमिति भावः।

(६७) सर्वत्र प्रकृतस्थल इत्यस्य काञ्चनमयह्रदः काञ्चनमयवह्निमान् काञ्चनमयनीलधूमादित्यत्रेत्यर्थः।

(६८) घटितत्वञ्चात्र स्वावच्छिन्नविषयकप्रतीतिविषयतानवच्छेदकत्वम्।

(६९) आदिपदेन संयोगेन गुणादिसाध्यकस्थले गुणीयत्वाभाववत्संयोगादेः परिग्रहः।

(७०) प्रकारतानिरूपितत्वार्थम् तृतीयार्थः।

(७१) पदेन गौरुच्यते इत्यादौ जन्यतावद्बोधविषयत्वप्रकारतानिरूपिते श्वरेच्छीयविशेष्यत्वमर्थः। तदेकदेशे जन्यत्वे तृतीयान्तार्थ पदनिरूपितत्वस्यात्न्वयः, धात्वर्थस्य निरूपितत्वसम्बन्धेन कर्माख्यातार्थाश्रयत्वेऽन्वयः। आश्रयत्वस्य स्वरूपसंबन्धेन गोपदार्थेऽन्वयः। गोपदं गां वक्तीत्यत्र तादृशधात्वर्थैकदेशे बोधे द्वितीयान्तार्थगो-विषयकत्वस्यान्वयः। धात्वर्थस्य निरूपितत्त्वसंबन्धेन प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वावच्छिन्नविशेषयतानिरूपित निरूपितात्वसंबन्धावच्छिन्नप्रकारत्वरूपकर्त्राख्यातार्थैदेशे प्रथमप्रकारत्वेऽन्वयः, आख्यातार्थस्य स्वरूपसंबन्धेन गोपदेऽन्वय इति भावः।

(७२) दुःखासंभिन्नत्वञ्च स्वावच्छेदकशरीरावच्छिन्नत्वस्वाव्यवहितोत्तरत्वद्वय-सम्बन्धेन दुःखविशिष्टान्यत्वम्। अनन्तरदुःखाग्रस्तत्वञ्च स्वावच्छेदक-शरीरावच्छिन्नत्वस्वाव्यवहितपूर्वत्वद्वयसम्बन्धेन दुःखविशिष्टान्यत्वम्, अभिलाषोपनीतत्वञ्च कामनाप्रयोज्यत्वं, स्वर्गकामनया कृतस्य यागादेरेव स्वर्गजनकतया कामनायां तत्प्रयोजकत्वमिति।

(७३) अत्र सिंहपदस्य सिंहसदृशे लक्षणा।

(७४) तद्विषयकशाब्दधीजनकतावच्छेदकधर्म्मवत्वं तद्वाचकत्वञ्चेत्तदा कर्म्मत्वविषयकघटमानयेति वाक्यजन्यबोधनिष्ठाम् पदनिष्ठशक्त्य-वच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतामादाय घटपदस्य कर्म्मत्ववाचकत्वं स्यादतस्तद्विषयकत्वावच्छिन्नत्वस्य शाब्दनिष्ठजन्यतायां निवेश इति भावः।

(७५) वासुदेवविषयकशाब्दानुकूलशक्तेरकारघटितघटपदविषयिताव्यापकत्वेन घटपदस्य वासुदेववाचकत्वं स्यादत आह वस्तुतस्त्विति।

(७६) अत्र विधिपदं विधेयितापरं, निरूपकत्वं सप्तम्यर्थः। परः शक्यभिन्नः। तथाच शक्यभिन्नः शब्दार्थो, न विधेयितानिरूपकः, लक्ष्यार्थो न विधेयो भवतीति फलितार्थः।

(७७) गुणत्वस्य सत्वस्य चाप्रत्यक्षत्वान्न तमादायातिव्याप्तिरिति भावः।

(७८) रूपत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय नित्यावृत्तीति। संयोगत्ववारणाय विभुवृत्यवृत्तीति।

गन्धत्वातिक्तत्वनीलत्वादिवारणाय पृथिवीमात्र वृत्यवृत्तीति। पृथिवीवृत्तितावच्छेदकत्वे सति पृथिवीतरवृत्तितावच्छेदकत्वं तदर्थः। परत्वापरत्ववेगत्ववारणाय तत्तद्भिन्नत्वस्य जातौ निवेश इति भावः।

(७९) सर्वान्योन्याभावसामानाधिकरण्यञ्चोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक-भेदत्वव्यापकत्वं, व्यापकता च सामानाधिकरण्यसम्बन्धेनेति। वस्तुविशिष्टान्यत्वं तदर्थः वैशिष्ट्यञ्च स्ववृत्तित्वस्वभिन्नवृत्तित्वो भयसम्बन्धेनेति।

(८०) आकाशान्तर्भावेण सामानाधिकरण्यं वोध्यम्।

(८१) अखण्डोपाधित्वं च समवायभिन्नत्वे सति स्वरूपसम्वन्धेन वृत्तित्वे सति भावत्वम्।

(८२) वस्तुविशिष्टान्यत्वं तदर्थः। वैशिष्ट्यञ्च स्ववृत्तित्वस्वभिन्नवृत्तित्वोभय-संबन्धेनेति।

(८३) घटाद्यसंयोगादौ घटत्वादावतिव्याप्तिवारणयेत्यर्थः।

(८४) तेन घटवति भूतले घटो नेति वाक्यस्य न प्रामाण्यमिति।

(८५) तेन घटे घटो नेति वाक्यस्य न प्रामाण्यमिति।

(८६) तेन चेत्रे न पचतीति वाक्यस्य न प्रामाण्यमिति।

(८७) रक्तरूपत्वव्यापककूटत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वं तत्प्रतीतिविषयः। व्यापकता च स्वासमानाधिकरणोभयावृत्तिवैशिष्ट्यावच्छिन्ननिरूपकता निरूपकानुयोगित्वानिरूपितप्रतियोगिताविशिष्टप्रतियोगितावत्वसम्वन्धेन। प्रतियोगितावैशिष्ट्यञ्च स्वतादात्म्यस्वसमानाधिकरणधर्म्मेतरधर्म्मान वच्छिन्नत्वोभयसम्वन्धेनेति भावः।

(८८) अभेदसम्वन्धावच्छिन्नप्रकारत्वाप्रयोजकगुणवाचकशुक्लादिशब्दस्यैव पुंस्त्वमिति रक्तं रूपमित्युपपत्तिरिति।

(८९) एवमन्तरा श्यामे समवायेन रक्तरूपं नास्तीति प्रत्ययप्रमात्वानुरोधेना विरोधित्वं मन्तव्यमिति।

(९०) भवानीपतिर्भवानीदत्तनाम्ना प्रसिद्ध आसीत्।

नरोनवंशाम्बुधिपूर्णचन्द्रस्तर्कादिसिन्धौ ननु सेतुरेकः।
आसीत्प्रसिद्धो भवनाथनामा यत्कीर्त्तिरद्यापि वितिष्ठमाना।।१।।

तत्सूनुरायत्तभवोऽतिभव्यः श्रीमित्रनाथोऽनुपमप्रभावः।
तत्सूनुरीशानविचारशुद्धस्वान्तो महीनाथ इवेन्दुभूषः।।२।।

तत् सूनुरत्रौदयनीप्रकाशे श्रीलोकनाथः स्वगुरुप्रणीते।
अचीकरत्कष्टतरस्थलस्य सुविवृतिं कामहरस्यपुर्य्याम्।।३।।

शरवियत् गजचन्द्रमितेशके मधुसिते नवमी विधुवासरे।
उदयनस्य कृते विमलप्रकाशकममुं कृतवान् खलु मद्गुरुः।।४।।

इति गङ्गौलीग्रामनिवासि नैयायिकश्रोत्रियो-
पाध्यायोपनामक श्रीलोकनाथशर्म्म कृता
विषयस्थलटिप्पणी समाप्ता।।

❑❑